काव्यमय

उत्तराध्ययन सूत्र

मुनि वीरेन्द्र

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर – 334005 (राज.)

❖ पुस्तक
काव्यमय उत्तराध्ययन सूत्र

❖ काव्यकार
मुनि वीरेन्द्र

❖ **अर्थ सौजन्य :**
पीतलिया परिवार, सिरयारी (राजस्थान)
भारत बिल्डिग, काच्छीगुडा, हैदराबाद (आ.प्र.)

❖ **प्रकाशक :**
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)
दूरभाष · 0151-2544867, 0151-3092177
2203150 (Fax)

❖ **मूल्य : 80/-**

❖ **संस्करण : प्रथम संस्करण, अक्टूबर 2005**

❖ **प्रतियाँ : 2100**

❖ **आवरण सज्जा :**
नटराज इन्फॉसिस
बीकानेर

❖ **मुद्रक :**
तिलोक प्रिटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : 9351202622 (M)

समर्पण

हुक्म क्षितिज पर समतालोक ले, उद्भासित आदित्य ।
करूँ समर्पित काव्यभावामृत उत्तराध्ययन साहित्य।।

परम पुनीत
परम श्रद्धास्पद
अनन्त कृपा सिंधु
महामहिम
समता विभूति
पूज्य आचार्य देव श्री नानेश
के 25 वें युवाचार्य पदोत्सव
की सुरभित
मंगलमय पावन घड़ियों के उपलक्ष्य
में सादर सविनय
वन्दन अभिनन्दन
के साथ
अर्पित-समर्पित

चरणरज -
- मुनि वीरेन्द्र

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा सनातन काल से भव्य प्राणियों को मुक्ति का पथ प्रदर्शित करती आ रही हैं। इस परम्परा ने काल प्रभाव से कभी ह्रास के अन्तिम विन्दु को देखा है तो कभी विकास के उत्तुंग शिखर को छुआ हैं। सौभाग्य यह रहा कि इस परम्परा को समय-समय पर सुयोग्य आचार्यो की उपलब्धि होती रही। उसी आचार्य-शृंखला में क्रियोद्धारकजी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. का नाम प्रमुख रूप से उभर कर आता हैं।

आचार्य पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. ने तत्कालीन साधु सस्था में व्याप्त शिथिलाचार का उन्मूलन कर विशुद्ध साध्वाचार की प्रतिस्थापना की। उत्तरवर्ती आचार्यो ने उस क्रांतिकारी विशुद्ध परम्परा को पोषित, पल्लवित एवं पुष्पित किया और समाज के सन्मुख समय की आड़ में शिथिलाचार को सीने से लगाये रखने वाले छद्‌मवेशियों के सन्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया।

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की क्राति परम्परा का सम्प्रति आचार्य पूज्य श्री नानेश के विधिवत् पट्टधर प्रशान्तमना पूज्य आचार्य श्री रामलालजी म.सा. सम्यक्तया निर्वहन कर रहे हैं। आचार्य श्री रामेश के कुशल मार्ग दर्शन में जहॉ साधु समुदाय ने ज्ञान और क्रिया के क्षेत्र में अभिनव विकास किया हैं वहीं श्रावक समुदाय ने भी ज्ञान-क्रिया के उच्च पायदानों पर आरोहण किया है।

श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, साधना के विभिन्न आयामों को गति देने के लिए कृत सकल्पित हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में साहित्य प्रकाशन उनका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा हैं। साहित्य के क्षेत्र में संघ ने कीर्तिमान स्थापित किया है। प्रस्तुत **"काव्यमय उत्तराध्ययन सूत्र"** उसी साहित्य लड़ी में अनमोल मणिरत्न हैं।

यह उच्च कोटि का काव्य ग्रन्थ भाव, भाषा शैली आदि से समृद्ध तो है ही इसकी साहित्यिक छटा भी अद्‌भुत हैं। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत् माणकचन्दजी रामपुरिया ने **"अमृत मंथन"** लिखकर ग्रन्थ गौरव को सुस्पष्ट किया है। अतः ग्रन्थ के बारे अधिक कुछ परिचय की आवश्यकता नहीं।

ग्रन्थ के रचनाकार विद्वद्वर्य, कविरत्न श्री वीरेन्द्रमुनिजी म.सा. है। मुनिश्री भाषाविज्ञ हैं तथा संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा के अध्यापन में दक्ष है। काव्यमय सूत्रकृताङ्ग सूत्र एव निष्काम साधक (खण्ड काव्य) भी आपके पाडित्य का मुखर बखान करते हैं। आचार्य श्री नानेश-रामेश शासन की सेवा में अहर्निश संलग्न मुनिश्री द्वारा प्रदत्त रचना हेतु संघ कृतज्ञ हैं।

पं. श्री काशीनाथजी शास्त्री "आचार्य चन्द्रमौलि" के संशोधन सहयोग हेतु आभार। उत्साही युवा श्री सुशील कुमार बैद तथा श्री प्रेमराज सुराणा ने निष्ठापूर्वक प्रतिलिपि तैयार की तदर्थ भविष्य में संघ सेवा की आशा के साथ धन्यवाद।

ग्रन्थ प्रकाशन में हैदराबाद निवासी पीतलिया परिवार- हैदराबाद (सिरयारी) के उदारता पूर्वक सहयोग के लिए धन्यवाद। आशा है, श्री पीतलियाजी भविष्य में भी अपनी लक्ष्मी का इसी प्रकार संघ सेवा में सदुपयोग करते रहेंगे।

पाठकों से निवेदन हैं कि वे नित्य स्वाध्याय द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन के उद्देश्य को सफल बनायें और आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर हों।

भवदीय

शान्तिलाल सांड, संयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन,

रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)

मदीयम्

विश्वमंच पर साहित्य का अपना महत्त्व रहा है। वह लौकिक हो या लोकोत्तर मनीषियों की प्रज्ञा पुरस्सर लेखनी के उत्स ने अनेक ग्रन्थ का प्रणयन किया। पूर्व में इसे कंठाभरण किया जाता रहा सम्प्रति मतिमन्दता से कण्ठाभरण की स्थिति न्यूनतम होती जा रही है। गेय स्वरूप ग्रन्थ किसी भी स्थिति विशेष से हो, वे परम उपादेय रूप हैं।

जैनदर्शन के प्रणीत ग्रन्थ आगम के रूप में अभिसज्ञित हैं। वत्तीस आगमों में चार मूलों के अन्तर्गत उत्तराध्ययन सूत्र सर्वप्रथम रूप से कहा गया है। इसमें साध्वाचार सहित तत्त्वविशेष का विश्लेषण है। जैन मनीषियों के द्वारा इसे जैन गीता के रूप में मुखरित किया हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र का आचारांग के पश्चात् पठन होने से इसे इस रूप में कहा जाता है।

दीपमालिका के पश्चात् प्रतिवर्ष इसका वाचन किया जाता हैं। प्रसंगोपात मानस में अतिरेक जागृत हुआ क्यों न इसे काव्यात्मक रूप दिया जाय। महिमा मण्डित समताविभूति आचार्य देव नानेश व कृपा परायण धायमातृ पदालंकृत इन्द्र भगवान् के अनुग्रह वर्षण से यह उपक्रम सार्थक हुआ।

. कविकर्म सर्वथा अत्यन्त कठिन होता है हिन्दी साहित्य में हिन्दी के छन्दों का उपयोग तो अनिवार्य रूप से किया जाता हैं। संस्कृत के छन्दों का एकमात्र प्रयोग सर्वप्रथम महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने हिन्दी महाकाव्य "प्रिय प्रवास" में सफलतापूर्वक किया है। उनके बाद वह परम्परा दुरूह होने के कारण अवरुद्ध-सी जान पड़ती है। उसी परम्परा में केवल संस्कृत छन्द बसन्ततिलका में पूरी रचना करने का प्रस्तुत प्रयास किया गया है। वर्णिक छन्दों की रचना अपने में दुष्कर ही मानी गई है। उसमें हमें कितनी सफलता मिली है, यह तो साहित्य धुरन्धर महाकवियों की आलोचना का विषय हैं। जहॉ पर उस छन्द की परिधि ज्ञात नहीं हो सकी वहां पर विषयानुकूल धनाक्षरी/कवित्त का समाश्रयण लिया गया है। उत्तराध्ययन एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थ हैं। उसके विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य हैं। पुनः पुनः यही सद्भावना मानस पटल पर उद्वेलित हो रही है कि यह कृति श्री नानेश चरणों में समर्पित होकर ही अपना समुचित स्थान पावें।

१५ अक्टूबर, १६८५ —मुनि वीरेन्द्र
सेठिया कोटड़ी
बीकानेर (राज.)

प्राक्कथन

जैन आगम चार भागों में विभक्त है। १ अंग २ उपांग ३ मूल ४ छेद। अंग ११, उपांग १२, मूल ४ तथा छेद ४ हैं। उत्तराध्ययन कृति मूलविभाग से सम्बद्ध है। इस विषय में प्रसंग प्राप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। जैन आगमों में उत्तराध्ययन सूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें साधनापथ पर सद्य अग्रसर हुए साधकों से लेकर उच्चतम श्रेणी पर आरूढ़ साधकों के लिए भी साधना की सभी आवश्यक सामग्री उत्तरोत्तर मार्गदर्शन के लिए सन्निहित है। इसे यदि शाश्वत सिद्धिपद पर पहुँचने का सोपान कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसमें भगवान् महावीर के विश्व कल्याणकारी अन्तिम उपदेश हैं। जो उन्होंने निर्वाणाधिरोहण से पूर्व प्रदान किये। इसके ३६ अध्ययन हैं। यह भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है। इसका निरूपण करते-करते सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए। इसका प्रतिपाद्य विशद है। यह पद्यात्मक आगम है। इसमें १६३८ श्लोक तथा ८८ सूत्र है। उनतीसवां, दूसरा तथा सोलहवें में गद्य भाग भी। इस पर अर्थाभिव्यक्ति के लिए अनेक व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध हैं। संस्कृत भाषा में लिखी गई- "बृहद्वृत्ति" महत्त्वपूर्ण है।

इस उपदेशात्मक अध्ययनों के अनुकूल आचरण से मानव जीवन सर्वथा सफल हो सकता है। इसके कतिपय अध्ययन अतिशय हृदयस्पर्शी है। जिनके परिशीलन से अलौकिक आनन्द की सम्प्राप्ति सम्भव है। आरम्भ के विनय में विनीत अविनीत शिष्य का सशक्त चित्रण किया गया है। परिषह 'अध्ययन में जीवन को दुःखी और चंचल बनाने वाले परिषहों का दिग्दर्शन है। प्रव्रज्या अध्ययन से मोह का निरास सर्वथा सम्भव है। द्रुमपत्रक निश्चय रूप से अनुपम है। काल के सूक्ष्म भाग समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। यह निर्दिष्ट किया गया हैं जीवन और यौवन की क्षण भंगुरता का दिग्दर्शन सर्वथा हृदयस्पर्शी है। दार्शनिक दृष्टि से यह अध्ययन अपनी गरिमा, मार्मिकता तथा मौलिकता से संवलित हैं, इसी प्रकार सभी अध्ययन अपने अपने अंश में निराले और जीवन को संयम पथ पर अग्रसर करने में सक्षम हैं।

धर्म मानव जीवन की आधारशिला है। वह उसका संगीतमय निर्झर है। उससे उसका शोधन होता है। धर्म से अधिक पावन द्रव्य, इस धरा पर और क्या हो सकता है ? सम्प्रदाय धर्म का परिधान है, धर्म नहीं है। धर्म की परिभाषा जैन दर्शन से इस प्रकार से दी गई है। "वत्थुसहावो धम्मो" वस्तु का स्वकीय स्वरूप ही वस्तुत. धर्म है। इसलिए धर्म परमोपादेय मानना चाहिए तथा उसका सदा आचरण करना चाहिए।

जिस भाषा में महावीर ने अपने विश्वास, विचार, आचार का प्रकाश डाला उसे अर्धमागधी कहा जाता है। वह देववाणी भी है। जैन संस्कृति धर्म, परम्परा, विचारों-आचारों का स्त्रोत आगम वाङ्मय ही है। वहॉं धर्म, दर्शन, संस्कृति, तत्त्व, गणित, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, इतिहास तथा समाज सभी प्रकार के विषय यथा प्रसंग आ गये हैं।

उत्तराध्ययन के विषय में अनेक मनीषियों के विचार हो सकते हैं, किन्तु इसमें भाव, भाषा शैली सब कुछ महत्त्वपूर्ण है। यहाँ सरस तथा सरल पद्यों में कहीं कहीं गद्य में भी धर्म, दर्शन, अध्यात्म, योग, ध्यान का महनीय निरूपण किया गया है। इसका दिव्य सदेश इस प्रकार से हैं:- आवश्यकता से अधिक भाषण नहीं करना चाहिए। अपने आप पर भी कभी क्रोध न हो। संसार में अदीन भाव से रहना चाहिए। जीवन में शंकाओं से ग्रस्त भीत होकर न चले। कृतकर्मो का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं। प्रमत्त मनुष्य, धन के द्वारा अपनी रक्षा नहीं कर सकता न इस लोक में न परलोक में। इच्छाओं के निरोध से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। केवल अपने को जीतने से सबको जीत लिया जाता है। इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। जरा, मनुष्य की सुन्दरता को समाप्त कर देती है, जैसे वृक्ष के फल समाप्त हो जाने पर खग उसे छोड देते हैं। ससार के विषय भोग क्षणमात्र के लिए सुखदायी है किन्तु बदले में चिरन्तन दु.खदायी हैं। सदा हित मित, सत्य वचन बोलना चाहिए। जो लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान में समभाव रखता है वही वस्तुतः मुनि है। जो स्वयं अनाथ है, वह दूसरे का नाथ कैसे हो सकता है। अपनी शक्ति को यथावत् पहचान कर यथावसर यथोचित्त कर्त्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र में विचरण करना चाहिए। असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है। साधक की स्वय की प्रज्ञा ही समय पर धर्म की समीक्षा कर सकती है। ब्राह्मण वही है जो ससार में रहकर भी कामभोगों से निर्लिप्त रहता है, जैसे कमल जल में रहता हुआ भी उससे सलिप्त नहीं होता। समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि, और तपस्या से तापस कहलाता है। कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होते हैं। स्वाध्याय सभी भावों का प्रकाशक है। वस्तु स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाले जिन भगवान् ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया है।

सम्यक्त्व के अभाव में चारित्र नहीं हो सकता। ज्ञान के समग्र प्रकाश से आत्मा एकान्त सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। राग-द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म, जन्म-मरण का मूल है और वे ही वस्तुतः दु.ख है।

इस प्रकार से विवेच्य ग्रन्थ का हार्दरहस्य संक्षिप्त रूप से विवेचन किया गया। आशा व्यक्त की जाती है कि यह जन-जन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत काव्यमयी रचना विद्वद्रत्न श्री वीरेन्द्रमुनिजी म.सा. की है। जो संस्कृति के वर्णिक छन्द बसन्ततिलका को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। संस्कृत छन्दों का निर्वाह हिन्दी जगत् में सर्वथा नवीन तथा दुरूह कार्य है। इसमें मुनिवर का प्रयास अवश्य ही स्तुत्य कहा जाएगा। अपनी मौन साधना से स्वयं की प्रेरणा से इस दिशा में प्रवृत्ति कुछ वर्ष पूर्व की गई थी। जो अब जाकर परिपूर्ण हुई है।

प्राक्कथन

जैन आगम चार भागों में विभक्त है। १ अंग २ उपांग ३ मूल ४ छेद। अंग ११, उपांग १२, मूल ४ तथा छेद ४ हैं। उत्तराध्ययन कृति मूलविभाग से सम्बद्ध है। इस विषय में प्रसंग प्राप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। जैन आगमों में उत्तराध्ययन सूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें साधनापथ पर सद्य अग्रसर हुए साधकों से लेकर उच्चतम श्रेणी पर आरूढ़ साधकों के लिए भी साधना की सभी आवश्यक सामग्री उत्तरोत्तर मार्गदर्शन के लिए सन्निहित है। इसे यदि् शाश्वत सिद्धिपद पर पहुँचने का सोपान कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसमें भगवान् महावीर के विश्व कल्याणकारी अन्तिम उपदेश हैं। जो उन्होंने निर्वाणाधिरोहण से पूर्व प्रदान किये। इसके ३६ अध्ययन हैं। यह भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है। इसका निरूपण करते-करते सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए। इसका प्रतिपाद्य विशद है। यह पद्यात्मक आगम है। इसमें १६३८ श्लोक तथा ८८ सूत्र है। उनतीसवां, दूसरा तथा सोलहवें में गद्य भाग भी। इस पर अर्थाभिव्यक्ति के लिए अनेक व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध हैं। संस्कृत भाषा में लिखी गई- "बृहद्वृत्ति" महत्त्वपूर्ण है।

इस उपदेशात्मक अध्ययनों के अनुकूल आचरण से मानव जीवन सर्वथा सफल हो सकता है। इसके कतिपय अध्ययन अतिशय हृदयस्पर्शी है। जिनके परिशीलन से अलौकिक आनन्द की सम्प्राप्ति सम्भव है। आरम्भ के विनय में विनीत अविनीत शिष्य का सशक्त चित्रण किया गया है। परिषह 'अध्ययन में जीवन को दुःखी और चंचल बनाने वाले परिषहों का दिग्दर्शन है। प्रव्रज्या अध्ययन से मोह का निरास सर्वथा सम्भव है। द्रुमपत्रक निश्चय रूप से अनुपम है। काल के सूक्ष्म भाग समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। यह निर्दिष्ट किया गया हैं जीवन और यौवन की क्षण भंगुरता का दिग्दर्शन सर्वथा हृदयस्पर्शी है। दार्शनिक दृष्टि से यह अध्ययन अपनी गरिमा, मार्मिकता तथा मौलिकता से संवलित हैं, इसी प्रकार सभी अध्ययन अपने अपने अंश में निराले और जीवन को संयम पथ पर अग्रसर करने में सक्षम हैं।

धर्म मानव जीवन की आधारशिला है। वह उसका संगीतमय निर्झर है। उससे उसका शोधन होता है। धर्म से अधिक पावन द्रव्य, इस धरा पर और क्या हो सकता है ? सम्प्रदाय धर्म का परिधान है, धर्म नहीं है। धर्म की परिभाषा जैन दर्शन से इस प्रकार से दी गई है। "वत्थुसहावो धम्मो" वस्तु का स्वकीय स्वरूप ही वस्तुतः धर्म है। इसलिए धर्म परमोपादेय मानना चाहिए तथा उसका सदा आचरण करना चाहिए।

जिस भाषा में महावीर ने अपने विश्वास, विचार, आचार का प्रकाश डाला उसे अर्धमागधी कहा जाता है। वह देववाणी भी है। जैन संस्कृति धर्म, परम्परा, विचारों-आचारों का स्त्रोत आगम वाङ्मय ही है। वहॉ धर्म, दर्शन, संस्कृति, तत्त्व, गणित, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, इतिहास तथा समाज सभी प्रकार के विषय यथा प्रसंग आ गये हैं।

उत्तराध्ययन के विषय में अनेक मनीषियों के विचार हो सकते हैं, किन्तु इसमें भाव, भाषा शैली सब कुछ महत्त्वपूर्ण है। यहाँ सरस तथा सरल पद्यों में कहीं कहीं गद्य में भी धर्म, दर्शन, अध्यात्म, योग, ध्यान का महनीय निरूपण किया गया है। इसका दिव्य संदेश इस प्रकार से हैं:- आवश्यकता से अधिक भाषण नहीं करना चाहिए। अपने आप पर भी कभी क्रोध न हो। संसार में अदीन भाव से रहना चाहिए। जीवन में शंकाओं से ग्रस्त भीत होकर न चले। कृतकर्मो का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं। प्रमत्त मनुष्य, धन के द्वारा अपनी रक्षा नहीं कर सकता न इस लोक में न परलोक में। इच्छाओं के निरोध से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। केवल अपने को जीतने से सबको जीत लिया जाता है। इच्छाएॅ आकाश के समान अनन्त हैं। जरा, मनुष्य की सुन्दरता को समाप्त कर देती है, जैसे वृक्ष के फल समाप्त हो जाने पर खग उसे छोड़ देते हैं। संसार के विषय भोग क्षणमात्र के लिए सुखदायी है किन्तु बदले में चिरन्तन दुःखदायी हैं। सदा हित मित, सत्य वचन बोलना चाहिए। जो लाभ-अलाभ, सुख-दु.ख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान में समभाव रखता है वही वस्तुतः मुनि है। जो स्वयं अनाथ है, वह दूसरे का नाथ कैसे हो सकता है। अपनी शक्ति को यथावत् पहचान कर यथावसर यथोचित्त कर्त्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र में विचरण करना चाहिए। असंयत आत्मा ही स्वय का एक शत्रु है। साधक की स्वयं की प्रज्ञा ही समय पर धर्म की समीक्षा कर सकती है। ब्राह्मण वही है जो संसार में रहकर भी कामभोगों से निर्लिप्त रहता है, जैसे कमल जल में रहता हुआ भी उससे सलिप्त नहीं होता। समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि, और तपस्या से तापस कहलाता है। कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होते हैं। स्वाध्याय सभी भावों का प्रकाशक है। वस्तु स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाले जिन भगवान् ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया है।

सम्यक्त्व के अभाव में चारित्र नहीं हो सकता। ज्ञान के समग्र प्रकाश से आत्मा एकान्त सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। राग-द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म, जन्म-मरण का मूल है और वे ही वस्तुतः दु:ख है।

इस प्रकार से विवेच्य ग्रन्थ का हार्दरहस्य संक्षिप्त रूप से विवेचन किया गया। आशा व्यक्त की जाती है कि यह जन-जन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत काव्यमयी रचना विद्वद्रत्न श्री वीरेन्द्रमुनिजी म.सा. की है। जो संस्कृति के वर्णिक छन्द बसन्ततिलका को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। संस्कृत छन्दों का निर्वाह हिन्दी जगत् में सर्वथा नवीन तथा दुरूह कार्य है। इसमें मुनिवर का प्रयास अवश्य ही स्तुत्य कहा जाएगा। अपनी मौन साधना से स्वयं की प्रेरणा से इस दिशा में प्रवृत्ति कुछ वर्ष पूर्व की गई थी। जो अब जाकर परिपूर्ण हुई है।

साहित्यिक जगत् की वस्तु होने के कारण वर्णिक छन्द में इसकी आनन्दानुभूति से साहित्य मनीषि वंचित नहीं रह पायेंगे। इसी दिशा में यह एक नव्य, भव्य, उपादेय लघुप्रयास है।

समता दर्शन प्रणेता, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यान ध्याता, संघ शिरोमणि बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि श्री नानेशाचार्य की अहेतु की कृपा सुधा धारा के बिना यह सृजन का कार्य किसी प्रकार सम्पन्न नहीं हो सकता था। उन्हीं की निश्रा में पठन-पाठन, विचार-विमर्श, आगम-निगमों का आदर्श स्वरूप निरन्तर प्रवहमान है। जिसका एकमात्र श्रेय आचार्य-प्रवर को ही सम्प्राप्त है।

श्री धायमातृ पद विभूषित शासन प्रभावक शासन सचिव, सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के समाराधक इन्द्रभगवन् के कृत उपकारों की अभिव्यक्ति के लिए मेरे पास कोई उपयुक्त शव्दावली नहीं है। उनकी एकमात्र वत्सलता जीवन का संबल हैं। उन्हीं के श्री चरणों में स्थित होकर यह काव्य साधना गतिमती हुई है।

प्रस्तुत काव्य आप महानुभावों के समक्ष प्रस्तुत है, इनके गुण-दोषों के विश्लेषक तो सर्वथा पाठक ही हो सकते हैं।

-: निवेदक :-

काशीनाथ शास्त्री "आचार्य चन्द्रमौलि : नव्यव्याकरणाचार्य (वाराणसी)

स्वर्ण-पदक प्राप्त राजस्थान शासन पुरस्कृत,

भूतपूर्व प्राचार्य बीकानेर संस्कृत महाविद्यालय

अमृत मंथन

उत्तराध्ययन - सूत्र काव्यानुवाद, बसन्ततिलका व अन्य छन्द में परिवेष्टित हिन्दी भाषा का सहज श्रृंगार हैं। "कवयः किं न पश्यन्ति" कवि की दृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है, अतः अपनी पारदर्शी दृष्टि से लोकिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का समन्वय करना उनका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहता है। सूत्रकार ने शिष्य और साधक के सम्बन्ध में जिन आवश्यक तत्त्वों का सम्प्रेषण किया है अर्थात् साधना में प्रमाद का सर्वथा निषेध है। साधना और संयम ही जीवन को उदात्त एवं जागरणशील बनाने में सहायक है, अतएव साहित्य साधना एवं साहित्य सर्जना में जिन शास्त्रीय नियमों का आंकलन किया गया है तदनुकूल रचनाकार ने अपनी विशेष प्रज्ञा के द्वारा अपने भावों को परिमार्जित और संशोधित कर ३६ सर्गो में छन्दबद्ध करने का सफल प्रयास किया है। उन सर्गो के नामकरण भी दूरदर्शी कवि मनीषि ने शास्त्रसम्मत ही दिए हैं जिससे विषय का प्रतिपादन अधिक अर्थपूर्ण है।

आचार्य के मन वचोगत पूर्व भाव-
को जान के प्रथमता उसको सदा दे।
आचार आचरण की फिर भूमिका हो।
आप्त प्रणीत शुभकारि हितोपदेश।।

प्रस्तुत उद्धरण में कवि की मनोज्ञता, मनुष्यत्व, गुरु शिष्य भाव, धर्म श्रवण एवं शुभप्रद हितोपदेश का संदर्भ देकर असंख्य जनमानस को, दिव्यालोक देने का अभूतपूर्व कार्य किया है।

असंस्कृत रहकर जीवन और जगत् में अन्धकार का ही साम्राज्य फैलता हैं। नवोन्मेषकारिणी प्रतिभा का सृजन तभी होगा जब मानव सत्संस्कार को पाकर पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होगा।

संस्कारहीन अरु तुच्छ पर प्रवादी-
जो प्रेय पाश परिबन्धित काम दास।
सद्धर्मरिक्त जन है उनसे पृथक् हो
कायादि भेद तक सद्गुण को सजावे।।

कर्म ही दुःख का कारण है, जिसमें अज्ञानता का पुट रहता है, वह विशेष रूप से इस कण्टकाकीर्ण जगत् में दुःखी और चिन्तित रहता है। जीवन के लिए कृतसंकल्प होकर धर्म और साधना में संलग्न होना तत्त्वबोध का विशेष लक्षण है। धर्म साधक कृति ने इस तथ्य का भी निदर्शन किया है कि संसार सागर में निमज्जित होकर मनुष्य तभी कूल किनारा उपलब्ध कर सकता है, जब वह "जल से होकर विलग, जलज हो जल में जैसे"।। अन्यथा सुखों का भोग दूसरा ही करता है-

जैसे किये करम हैं, अनुकूल शूल।
पाता वहाँ पर गती उस रूप में हैं।।

जीव जगत् में परिवेदनाओं से प्रपीड़ित होता है, तभी उसमें अध्यात्म-भाव तीव्र रूप में उभर कर आते हैं। मोहाभिषिक्त होने पर ही भावोर्मियां तरंगित होती है-

अध्यात्म भाव मन में तब तीव्र आया-
प्राणी प्रपीड़ित सदा परिवेदना से।
संसार सागर अपार महोर्मिवाला-
मोहाभिषक्त जिसमें जन मज्जरूप।।

"समाचारी" का विश्लेषण कवि की भावनाओं एवं तत्त्व चिन्तन का एक ज्वलन्त उदाहरण हैं।

दुःखार्त मुक्त बनते परिपालना से-
निर्ग्रन्थ भाव परिशुद्ध रहे क्रिया में।।

अनादिकाल से ही सांसारिक बाधा में एवं दुःख चले आ रहे हैं, उससे जीव को मुक्ति कैसे होगी, उसका सदुपदेश भी कृतिकार ने सामंजस्य पूर्वक किया हैं-

संसार दुःख चलते चल आ रहे हैं।
सारे अनादि युग से सतत प्रहारी।।

जीवाजीव-विभाग प्रकरण में भी पद्य प्रणेता ने अपनी बहुज्ञता का परिचय देते हुए जीव-अजीव, लोक-अलोक तथा धर्मा-धर्म का भी तात्त्विक विवेचन कर सार्वकालिक एवं सार्वजनीन मंगल भावनाओं का ही विशेष उद्रेक किया है।

धर्माधर्म तत लोक सरूप जानों।
आकाश लोक व अलोक विमध्यलीन।
है काल तो मनुज लोक व अन्यदीय
होते अनादि व अनन्त व नित्य लीन।।

सारांश यह है कि **"उत्तराध्ययन सूत्र"** की भाषा काव्यानुवाद तप-श्रम-साध्य साधना की सिद्धि है, जिसमें स्वान्तः सुखाय के साथ सर्वजन हिताय और सर्व जन सुखाय के सभी उपकरण विद्यमान हैं। तत्सम भाषा, हृदय ग्राहिणी शैली-वसन्ततिलका और धनाक्षरी तथा यदा-कदा अन्योन्य छन्दों का समिश्रण भी मणि-काचन संयोग ही है।

आगम निगम तत्त्वों से परिपूर्ण यह सूत्र काव्यानुवाद जैन धर्म एवं संस्कृति का ही नहीं अपितु मानव धर्म एवं सदाचार को प्रतिफलित करने का सहज सोपान है। लव्ध प्रतिष्ठ विद्वान मुनिजी ने सर्व साधारण उपकार के लिए ही इस "ग्रन्थ" का प्रणयन किया है, ऐसा मेरा विश्वास हैं।

सार्थक शब्दो का संयोग, सुखद छन्दों का प्रयोग, विवेकपूर्ण भावों का योगायोग मानव-मात्र के लिए विशेष प्रेरणाप्रद हैं। निश्चय ही यह कृति 'युग-मांग' की पूर्ति कही जा सकती है। भाषा, भाव शैली एवं छन्द विधान सर्वथा आकर्षक है। मैं मुक्त कंठ से इस कवि कर्म की सराहना एवं तप. पूत मुनि विद्यावारिधि पूज्यपाद वीरेन्द्रमुनिजी म.सा. की सादर अभ्यर्थना करता हूँ कि उन्होंने अपने अथक अक्षीण परिश्रम के द्वारा भवसागर को क्षीरसागर में परिणत कर मुझे भी 'अमृत मंथन' का सुयोग देकर, धन्य-धन्य बनाया।

मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा एवं कृति के प्रति असीम आस्था प्रकट करता हूँ कि यह प्रणीत कृति उतरोत्तर समय, समाज, संस्कृति और साहित्य का मंगल प्रकाश स्तम्भ और संस्कृति का जलयान होगी। सत्यम-शिवम्-सुन्दरम्।

''इत्यलम्''

वशंवद

मानकचन्द रामपुरिया

महामहोपाध्याय

अनुक्रमणिका

१ अध्ययन : विनयसूत्र

अध्ययन सूत्र संकेत

- प्रस्तुत प्रथम अध्ययन का नाम चूर्णि के अनुसार 'विनयसूत्र' है।
- इस अध्ययन मे विविध पहलुओं से भिक्षाजीवी निर्ग्रन्थ नि:सग अनगार के विनय की श्रुति अथवा विनय के सूत्रो का निरूपण किया गया है।
- विनय मुक्ति का प्रथम चरण है, धर्म का मूल है तथा दूसरा आभ्यन्तर तप है। विनय रूपी मूल के बिना सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूपी पुष्प नहीं खिलते। फिर मोक्षरूप फल की प्राप्ति भी कहॉ से होगी ?
- मूलाचार के अनुसार विनय की पृष्ठभूमि मे निम्नोक्त गुण निहित है– (1) शुद्ध धर्माचरण, (2) जीतकल्प–मर्यादा, (3) आत्मगुणो का उद्दीपन, (4) आत्मिक शुद्धि, (5) निर्द्वन्द्वता, (6) ऋजुता, (7) मृदुता (नम्रता, निष्छलता, निरहंकारिता), (8) लाघव (अनासक्ति), (9) गुण–गुरुओं के प्रति भक्ति, (10) आह्लादकता, (11) कृति–वन्दनीय पुरुषो के प्रति वन्दना, (12) मैत्री, (13) अभिमान का निराकरण, (14) तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन एवं (15) गुणो का अनुमोदन।
- यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन मे विनय की परिभाषा नहीं दी है, किन्तु विनयी और अविनयी के स्वभाव और व्यवहार तथा उसके परिणामो की चर्चा विस्तार से की है, उस पर से विनय और अविनय की परिभाषा स्पष्ट हो जाती है।
- विनय का अर्थ दासता, दीनता या गुरु की गुलामी नहीं है, न स्वार्थ सिद्धि के लिए किया गया कोई दुष्ट उपाय है और न कोई औपचारिकता है। सामाजिक व्यवस्था मात्र भी नहीं है। अपितु गुणी जनो और गुरुजनो के महान् मोक्ष साधक पवित्र गुणों के प्रति सहज प्रमोदभाव है, जो गुरु और शिष्य के साथ तादात्म्य एवं आत्मीयता का काम करता है। उसी के माध्यम से गुरु प्रसन्नतापूर्वक अपनी श्रुतसम्पदा एवं

आचारसम्पदा से शिष्य को लाभान्वित करते है।

- बृहद्वृत्ति के अनुसार विनय के मुख्य दो रूप फलित होते है– लौकिक विनय एव लोकोत्तर विनय। लौकिक विनय में अर्थ विनय, काम विनय, भय विनय और लोकोपचार विनय आते है और लोकोत्तर विनय, जो यहॉ विवक्षित है और जिसे यहॉ मोक्ष विनय कहा गया है, उसके 5 भेद किये गए है– दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तपो विनय और उपचार विनय। औपपातिकसूत्र मे इसी के 7 प्रकार हैं– (1) ज्ञान विनय, (2) दर्शन विनय, (3) चारित्र विनय, (4) मन विनय, (5) वचन विनय, (6) काय विनय और (7) लोकोपचार विनय।
- विनय का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ किया गया है– अष्टविध कर्मों का जिससे विनयन–उन्मूलन किया जाए। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन में मोक्ष विनय ही अभीष्ट है।
- प्रस्तुत अध्ययन की दूसरी, अठारहवीं से 22वीं तक और तीसवीं गाथा मे लोकोपचार विनय की दृष्टि से विनीत के व्यवहार का वर्णन किया है।
- प्रस्तुत अध्ययन में विनयी और अविनयी के स्वभाव, व्यवहार और आचरण का सांगोपांग वर्णन है।
- अध्ययन के उपसंहार में 45 से 48वीं गाथा तक विनीत शिष्य की उपलब्धियों का विनय की फलश्रुति के रूप में वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर मोक्ष विनय का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

१. विनय श्रुत

संजोगा विप्पमुक्कस्स,
अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि,
आणुपुव्विं सुणेह मे।।१।।

[1]संयोगमुक्त अणगार विशेष भिक्षु-
के संप्रकाश विनयादिक का करूंगा ।
दत्तावधान सुनना क्रमतः यथार्थ
श्री वीतराग कथनादिक है मनोज्ञ ।।१।।

आणा - णिद्देसकरे,
गुरूण - मणुवाय - कारए ।
इंगियागार संपण्णे,
से विणीए-त्ति वुच्चई।।२।।

निर्देशनादि गुरु का परिपालता है
सांनिध्य ही सतत शान्त सदा सुहाता ।
संकेत भाव मन का ध्रुव जानता है
सम्यक् विनीत नत शिष्य सदा कहाता ।।२।।

आणा - ऽणिद्देसकरे,
गुरूण - मणुवाय - कारए ।
पडिणीए असंबुद्धे,
"अविणीए" त्ति वुच्चई।।३।।

आज्ञाविहीन गुरु की करता, न सेवा
है प्रत्यनीक, चरणादिक से अबुद्ध ।
सांनिध्य में न रहता, नहि तत्त्वदर्शी
है शिष्य-चेल, अविनीत सदा कहाता ।।३।।

जहा सुणी पूइ-कण्णी,
णिक्क-सिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सील-पडिणीए,
मुहरी णिक्कसिज्जइ।।४।।

जैसे शुनी घृणित गर्हित शीर्णकर्णा-
निष्कासिता, अमित है लहती अवज्ञा ।
वैसे कुशील विपरीत कदाचरी से-
सर्वत्र मान परिवर्जित, शिष्य होता ।।४।।

---
[1]बसन्ततिलका

कण-कुण्डगं चइत्ताणं,
विट्ठं भुंजइ सूयरो ।
एवं सीलं चइत्ताणं,
दुस्सीले रमई मिए।।५।।

धान्यादि भूस तज, सूकर की अभीप्सा
विष्ठा विशेष अदनादिक तीव्र होती ।
वैसे सदा चरणहीन कुशील शिष्य-
दुःशील में रमण है, करता सदैव ।।५।।

सुणिया-ऽभावं साणस्स,
सूयरस्स णरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं,
इच्छंतो हिय-मप्पणो।।६।।

संसार मध्य अपमान परम्पराप्त
कुत्ती व शूकर दशा लख भव्य शिष्य ।
आधान हेतु विनयादिक-सद्गुणों के-
आत्मार्थ जागरण-शील बने विशेष ।।६।।

तम्हा विणय-मेसेज्जा,
सीलं पडि-लभेज्जओ ।
बुद्ध-पुत्त णियागट्ठी,
ण णिक्क-सिज्जइ कण्हुई।।७।।

इत्थं करे, विनय के नित आचरादि-
शीलाप्ति हो, न नर जीवन का विनाश ।
जो बुद्धपुत्र नयनागर तत्त्वदर्शी
है मुक्ति बोध लहता, न कदापि गर्हा ।।७।।

णिसंते सियाऽमुहरी,
बुद्धाणं अंतिए सया ।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा,
णिरट्ठाणि उ वज्जए।।८।।

संबुद्ध-शिष्य गुरु पादसरोजसेवी-
वाचालहीन शमनात्मक भावना से ।
शब्दार्थ का सतत शिक्षणशील होवे,
दूरस्थ है अमितहीन परम्परा से ।।८।।

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा,
खंतिं सेविज्ज पण्डिए ।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं,
हासं कीडं च वज्जए।।९।।

आचार्यदेव अनुशासन से प्रसन्न-
न क्रोध भाव उपजे, परिशान्तचित्त ।
क्षुद्रादि संग परिवर्जनशील होवे-
क्रीडादि हास्य रुचि भी, न करे कदापि ।।९।।

मा य चण्डालियं कासी,
वहुयं मा य आलवे ।
कालेण य अहिज्जित्ता,
तओ झाइज्ज एगओ।।१०।।

आवेश से, श्वपचकार्य, करे न नीच
शुष्कादिवाद विधि से, नित दूर ही हो ।
अभ्यास के समय में, पठनादि कर्म-
ध्यानस्थ, सग तज के, नित हो तपस्वी ।।१०।।

आहच्च चण्डालियं कट्टु,
ण णिण्हविज्ज कयाइ वि ।
कडं कडेत्ति भासेज्जा,
अकडं णो कडेत्ति य।।११।।

आवेशं हेतु यदि पाप किया कदाचित्-
तो भूल के न उसको गुरु से छिपावे ।
है जो किया स्वमन से, नित मान जावे,
है ना किया तब उसे, न कदापि माने ।।११।।

मा गलियस्सेव कसं,
वयण-मिच्छे पुणो-पुणो ।
कसं व दट्ठु-माइण्णे,
पावगं परिवज्जए।।१२।।

दुष्टाश्व चाबुक सदा चल चाहता है
तादृक् विनेय उसकी न करे अपेक्षा ।
आकीर्ण अश्व सम हो, गुरु इंगितों से-
पापीयकर्म परिवर्जन को, करे ही ।।१२।।

अणासवा थूलवया कुसीला,
मिउंपि चण्डं पकरंति सीसा ।
चित्ताणुया लहु दक्खोव-वेया,
पसायए ते हु दुरासयंऽपि।।१३।।

आज्ञाविहीन अविचार कुशील शिष्य-
आमर्षयुक्त करता, मृदु भी गुरु को ।
चित्तानुकूल अरु दक्ष विनीत सेवी-
क्रुद्ध स्वभाव, गुरु को करता तितिक्षु (सहिष्णु) ।।१३।।

णापुट्ठो वागरे किंचि,
पुट्ठो वा णालियं वए ।
कोहं असच्चं कुवेज्जा,
धारेज्जा पियमप्पियं।।१४।।

पूछे बिना न वचनादिक को सुनावे-
मिथ्या कहे न, परिशान्त रहे, अरोषी ।
एकाग्रचित्त नित जीत चलेन्द्रियों को-
आचार्य शिक्षण लहे, बन के विनम्र ।।१४।।

अप्पा चेव दमेयव्वो,
अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा-दंतो सुही होइ,
अस्सिं लोए परत्थ य।।१५।।

जेता बने, सतत आत्मसमृद्धिशाली-
होता कठोरतम निग्रह भी स्वकीय-।
अध्यात्म के विजय से, पथ है प्रशस्त
सर्वत्र सौरव्य मिलता; ध्रुव अद्वितीय ।।१५।।

वरं मे अप्पादंतो,
संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहि दम्मंतो,
बंधणेहिं वहेहि य ।।१६।।

सोचे स्वयं, मुनि करे, नित ये विमर्श
संयाम और तप में, विजयी बनूं मैं ।
बन्धादि और, वध से परिताडना से
क्यों अन्य से दमित की स्थिति हो मलीन ? ।।१६।।

पडिणीयं च बुद्धाणं,
वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से,
णेव कुज्जा कयाइ वि।।१७।।

प्रत्यक्ष सर्वजन के अथवा अकेले-
चैतन्य भाव भृत या स्मृतिहीन होके ।
आचार्य के विषय में, प्रतिकूल कार्य-
वाणी स्वकर्मचय से, न करें कदापि ।।१७।।

ण पक्खओ ण पुरओ,
णेव किच्चाण पिट्ठओ ।
ण जुंजे उरुणा उरुं,
सयणे णो पडिस्सुणे।।१८।।

आचार्य के सम न आस्थित हो, न आगे
आरात पृष्ठ दिशि में, न अदूरवर्ती ।
आदेश को नित सुने, गुरु पार्श्व जाके
होके विनम्रतम, उत्तर दे, यथार्थ ।।१८।।

णेव पल्हत्थियं कुज्जा,
पक्खपिण्डं च संजए ।
पाए पसारिए वावि,
ण चिट्ठे गुरुणंतिए।।१९।।

पद्मासनस्थ गुरु के, न समक्ष होवे
हस्तद्वयादि परिवेष्टितकाय भी ना ।
पाद प्रसारण विधी, न कदापि योग्य
औचित्य का सतत पालन लाभकारी ।।१९।।

आयरिएहिं वाहिंतो,
तुसिणीओ ण कयाइवि ।
पसायपेही णियागट्ठी,
उवचिट्ठे गुरुं सया ।।२०।।

आचार्यदेव परिबोधन से सुशिष्य
तूष्णीं न हो, सतत तत्पर हो सतर्क ।
मोक्षार्थ, किन्तु कमनीय-कृपाभिलाषी
सेवादि में रत रहे, मन से विनीत ।।२०।।

आलवंते लवंते वा,
ण णिसीएज्ज कयाइ वि ।
चइऊण-मासणं धीरो,
जओ जत्तं पडिस्सुणे।।२१।।

होके विनीत गुरु सन्निधि में सहर्ष
आह्वान की अभय हो, न करे उपेक्षा ।
सन्नद्ध हो, नित सुने, निखिलानुयोग
दत्तावधान नित हो, परिपालना मे ।।२१।।

आसण गओ ण पुच्छेज्जा,
णेव सेज्जागओ कयाइ वि ।
आगम्मु-क्कुडुओ संतो,
पुच्छिज्जा पंजलीउडो।।२२।।

शय्यासनादिगत वात कभी न पूछे
जाके समीप नय से नित हो पिपृच्छा ।
नम्रात्म-भावधृत या वन के विनीत-
वद्धांजली विविध पृष्टि करे विनेय ।।२२।।

एवं विणय-जुत्तस्स,
सुत्तं अत्थं च तदुभयं ।
पुच्छमाणस्स सीसस्स,
वागरेज्ज जहा सुयं।।२३।।

वैनेयभावयुत शिष्य सहर्ष-पृष्ट-
आचार्य संभृत सदा करुणाकलाप ।
सूत्रार्थ के विषय में उपदेश देवे
शिष्यार्थ साधक यथा श्रुत रूप में ही ।।२३।।

मुसं परिहरे भिक्खू,
ण य ओहारिणिं वए ।
भासा-दोसं परिहरे,
मायं च वज्जए सया।।२४।।

भिक्षू असत्य परिहार करे सदैव-
भाषा न निश्चय सरूप कदापि बोले ।
संशीति हास्य परिवर्जन हो विशेष-
माया कषाय चय का न विधान होवे ।।२४।।

ण लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं,
ण णिरट्ठं ण मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा,
उभयस्संतरेण वा।।२५।।

संपृच्छना यदि करे अपने लिये या-
अन्यान्य के विषय में नहि पापकारी ।
भाषा निरर्थक रु मर्म विभेदकारी
संवर्जना निरत हो, मुनि सर्वदैव ।।२५।।

समरेसु अगारेसु,
संधीसु य महापहे ।
एगो एगित्थिए सद्धिं,
णेव चिट्ठे ण संलवे।।२६।।

लोहार के सदन में गृह वीथिका में
एकान्त राजपथ में मुनि का अकेला-।
योषा खड़ी यदि रहे, नहि संग वार्ता-
स्वच्छन्द वृत्ति, नहि कल्प कहा मुनी का ।।२६।।

जं मे बुद्धाणु सासंति,
सीएण फरुसेण वा ।
मम लाभोत्ति पेहाए,
पयओ तं पडिस्सुणे।।२७।।

आचार्य का कथन तीव्र, मनोज्ञ या हो
सम्यक् हितार्थ मम सर्व विमर्श संग ।
है लाभ का विषय सोच सुयत्नपूर्व-
स्वीकार ले, समनुशासन धीर शिष्य ।।२७।।

अणु - सासण - मोवायं,
दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं तं मण्णए पण्णो,
वेसं होइ असाहुणो।।२८।।

आचार्य का उचित कोमल या कठोर-
सर्वोपदेश दुरितारि-निवारकारी ।
सच्छिष्य कान उसको करता सहर्ष-
विद्वेषपूर्ण बनता वह अन्य को है ।।२८।।

हियं विगय-भया बुद्धा,
फरुसंपि अणुसासणं ।
वेसं तं होइ मूढाणं,
खंति सोहिकरं पयं।।२६।।

मेधावि बुद्ध भयमुक्त, विनेय वृन्द-
माने कठोर अनुशासन को हितार्थ-।
वैशिष्ट्यपूर्ण अरु शान्त विशुद्ध वाक्य
अप्राज्ञ शिष्य समझे निज वैर बीज ।।२६।।

आसणे उवचिट्ठेज्जा,
अणुच्चे अकुए थिरे ।
अप्पुट्ठाई णिरुट्ठाई,
णिसीएज्जऽप्पकुक्कुए।।३०।।

वैसा न आसन कभी, नत शिष्य का हो
जैसा सदाहित सदा, गुरु का लगा हो ।
चांचल्य शून्य नित नम्र रवादिमुक्त
ध्यानस्थ हो, सतत तत्र समाधिनिष्ठ ।।३०।।

कालेण णिक्खमे भिक्खू,
कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जित्ता,
काले कालं समायरे।।३१।।

भिक्षार्थ के समय भिक्षु सदैव जावे
है लौटना, समय से, यह कल्प पाले ।
ध्यावे अकाल, विपरीत न कार्य कोई-
होवे सदा नियत, काल सभी क्रिया का ।।३१।।

परिवाडीए ण चिट्ठेज्जा,
भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिरूवेण एसित्ता,
मियं कालेण भक्खए।।३२।।

भोज्यार्थ पंक्ति उपविष्ट मनुष्य मध्य-
होवे न संस्थित कदापि मुनी गवेषी ।
स्वीकार ले, सतत फासुक गोचरी को-
शास्त्रोक्त-काल मिल भुक्ति करे तपस्वी ।।३२।।

णाइदूर - मणासण्णे,
णऽण्णेसिं चक्खु-फासओ ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा,
लंघित्ता तं णाऽइक्कमे।।३३।।

हैं पूर्व से यदि खड़े गृह में भिखारी-
तो नाति दूर अति सन्निधि में विराजे ।
दाता गृहस्थ नयनादिक के न पास-
एकान्त संस्थित अतिक्रमणादिहीन ।।३३।।

णाइ-उच्चे व ण णीए वा,
णासण्णे णाइ-दूरओ ।
फासुयं परकडं पिण्डं,
पडिगाहेज्ज संजए।।३४।।

संयाम में रत अचित्त व अन्य हेतु-
आहार को ग्रहण नित्य करे तपस्वी-।
ऊँचे व निम्न थल से अति दूर पास-
लेवे न, कल्प विधि को नितपूर्ण पाले ।।३४।।

अप्प-पाणेऽप्प-बीयम्मि,
पडिच्छण्णंम्मि संवुडे ।
समयं संजए भुंजे,
जयं अपरिसाडियं।।३५।।

संयामशील मुनि जीव व बीजमुक्त-
आच्छन्न शान्त मन से यतना समेत-।
दीवार संवृत निवासन में सधर्मी-
के संग में सुविधि से अशनादि लेवे ।।३५।।

सु-कडित्ति सु-पक्कित्ति,
सुच्छिण्णे सु-हडे मडे ।
सु-णिट्ठिए सु-लट्ठित्ति,
सावज्जं वज्जए मुणी।।३६।।

आहार के समय भोज्य पदार्थ हेतु
अच्छा किया सु परिपाक सु छेदनादि ।
हैं ये कषाय परिमुक्त रसादियुक्त
सावद्य शब्द मुनिवर्य कहे न कोई ।।३६।।

रमए पंडिए सासं,
हयं भद्दं व वाहए ।
बालं सम्मइ सासंतो,
गलियस्सं व वाहए।।३७।।

मेधावि शिष्य हित शिक्षण से गणीश-
होते प्रसन्न दुइ वाहक के समान ।
आचार्य खिन्न नित गर्हित शिष्य हेतु-
जैसे कदश्व परिवाहक अश्व बार ।।३७।।

खड्डुया मे चवेडा मे,
अक्कोसा य वहाय मे ।
कल्लाण - मणुसासंतो,
पाव-दिट्ठित्ति मण्णई।।३८।।

कल्याणपूर्ण अनुशासन पापदृष्टि-
वाले कुशिष्य, अपने मन मानते हैं ।
चाँटा व ठोकर समान कुशब्ददाता-
तीव्र प्रहार सम वाक्य कठोर रूप ।।३८।।

पुत्तो मे भाय-णाइत्ति,
साहू कल्लाण-मण्णई ।
पाव-दिट्ठि उ अप्पाणं,
सासं दासित्ति मण्णई।।३९।।

भाई व पुत्र सुजनादिक भावना से-
देते सदैव हित शिक्षण हैं गणीश ।
कल्याण-सा समझता नत शिष्य रत्न-
दासनुदासमय भाव कुशिष्य माने ।।३९।।

ण कोवए आयरियं,
अप्पाणंपि ण कोवए ।
बुद्धो-वघाई ण सिया,
ण सिया तोत्त-गवेसए।।४०।।

आचार्य हों कुपित भृत्य करें न वृत्ति
होवे स्वयं न अनुशासन के विरुद्ध ।
आचार्य की न [illegible] भावना हो
एवं न छिद्र [illegible] [illegible] देखना हो ।।४०।।

आयरियं कुवियं णच्चा, पत्तिएण पसायए । विज्झवेज्ज पंजलिउडो, वएज्ज ण पुणोत्ति य।।४१।।	होवे किसी अशुभ आचरणादिकों से- जो अप्रसन्न गुरु तो शुभ भावना से-। माधुर्यपूर्ण वचनादिक से विनीत- बोले ! अकार्य फिर से, न करूँ कदापि ।।४१।।
धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहिं आयरियं सया । तमायरंतो ववहारं, गरहं णाभिगच्छई।।४२।।	धर्मादि अर्जित सदा व्यवहार पूर्ण शान्त प्रबुद्ध गुरु से सुतरा विधेय । पूर्वोक्त का अनुसरी रहता सतर्क- होता न निन्दित कभी मुनि साधनार्थी ।।४२।।
मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽयरियस्स उ । तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए।।४३।।	आचार्य के मन वचोगत पूर्व भाव- को जान के प्रथमता, उसको सदा दे । आचार आचरण-की फिर भूमिका हो आप्त-प्रणीत शुभकारि हितोपदेश ।।४३।।
वित्ते अचोइए णिच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए । जहोव-इट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वइ सया।।४४।।	संप्रेरणा रहित उद्यमशील शाली- सम्पन्न कार्य करता विनयी सुशिष्य । होते प्रयोज्य नित कार्य करे विशिष्ट कर्त्तव्य शिष्यजन का श्रुतवृन्द वेद्य ।।४४।।
णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए । हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा।।४५।।	नम्र स्वभाव भृत शान्त बना विशिष्ट सद्यः सुलोकगत कीर्ति सदैव पाता । सारे चराचर जगन्मय जीव का भी आधारभूत बनता, गुण-शील शिष्य ।।४५।।
पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वसंथुआ । पसण्णा लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं ।।४६।।	शिक्षादि के समय पूर्व विनीत शिष्य- के नम्र भाव गुण जान सुबुद्ध पूज्य । आचार्यवर्य उससे रहते प्रसन्न शब्दार्थ का विपुल बोध सदा कराते ।।४६।।

स पुज्ज सत्थे सुविणिय-संसए,
मणोरुई चिट्ठइ कम्म-संपया ।
तवो-समायारी-समाहि-संवुडे,
महज्जुई पंच वयाइं पालिया।।४७।।

है शिष्य पूज्य गुण से बहुमान पाता
शंका विवर्जित गुरु प्रिय कर्मकारी ।
होता समाधि तप सुव्रत पालना है
तेजस्विता बहु लहे, गुणयुक्त साधु ।।४७।।

स देव-गंधव्व-मणुस्स पूइए,
चइत्तु देहं मल-पंक-पुव्वयं ।
सिद्धे वा हवइ सासए,
देवे वा अप्परए महिड्डिए।।४८।।

गन्धर्व देव नर पूज्य विनीत शिष्य
पंकादि पृक्त नर काय विहीन होके ।
होता सुसिद्ध गति शाश्वत सिद्धि युक्त-
या अल्प कर्म गुण-युक्त सुदेव होता ।।४८।।

२ अध्ययन : परीषह–प्रविभक्ति

अध्ययन सूत्र संकेत

- प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन का नाम परीषह–प्रविभक्ति है।
- संयम के कठोर मार्ग पर चलने वाले साधक के जीवन में परीषहो का आना स्वाभाविक है।
- सच्चे साधक के लिए परीषह बाधक नही, अपितु कर्मक्षय करने मे साधक एव उपकारक होते हैं।
- परीषह का शब्दशः अर्थ होता है–जिन्हे (समभावपूर्वक आर्त्तध्यान के परिणामो के बिना) सहा जाता है, उन्हें परीषह कहते हैं। यहाँ कष्ट सहने का अर्थ अज्ञानपूर्वक, अनिच्छा से, दबाव से, भय से या किसी प्रलोभन से मन, इन्द्रिय और शरीर को पीड़ित करना नहीं है। समभावपूर्वक कष्ट सहने के पीछे दो प्रयोजन होते है–(1) मार्गाच्यवन और (2) निर्जरा अर्थात् जिनोपदिष्ट स्वीकृत मोक्षमार्ग से च्युत न होने के लिए और निर्जरा–समभावपूर्वक सह कर कर्मों को क्षीण करने के लिए। यही परीषह का लक्षण है।
- परीषह–सहन या परीषह–विजय का अर्थ जानबूझ कर कष्टों को बुलाकर शरीर, इन्द्रियों या मन को पीड़ा देना नही है और न आए हुए कष्टों को लाचारी से सहन करना है। परीषह–विजय का अर्थ है–दुःख और कष्ट आने पर भी संक्लेशमय परिणामों का न होना या अत्यन्त भयानक क्षुधादि वेदनाओं को सम्यग्ज्ञानपूर्वक समभाव से शान्तिपूर्वक सहन करना अथवा क्षुधादि वेदना उपस्थित होने पर निजात्म भावना से उत्पन्न निर्विकार नित्यानन्द रूप सुखामृत अनुभव से विचलित न होना परीषहजय है।
- अनगार धर्मामृत में बताया गया है कि जो संयमी साधु दुःखो का अनुभव किये विना ही मोक्षमार्ग को ग्रहण करता है, वह दुःखों के उपस्थित होते ही भ्रष्ट हो सकता है। इसलिए परीषहजय का फलितार्थ हुआ कि प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति को साधना

के सहायक होने के क्षणों तक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना, न तो मर्यादा तोडकर उसका प्रतीकार करना है और न इधर–उधर भागना है, न उससे बचने का कोई गलत मार्ग खोजना है। परीषह आने पर जो साधक उससे न घबरा कर मन की आदतो का या सुविधाओ का शिकार नहीं बनता, वातावरण मे बह नही जाता, वरन् उक्त परीषह को दुःख या कष्ट न मानकर ज्ञाता–दृष्टा बन कर स्वेच्छा से सीना तानकर निर्भय एवं निर्द्वन्द्व होकर सयम की परीक्षा देने के लिए खडा हो जाता है, वही परीषह–विजयी है। वस्तुतः साधक का सम्यग्ज्ञान ही आन्तरिक अनाकुलता एवं सुख का कारण बनकर उसे परीषह–विजयी बनाता है।

- परीषह और कायक्लेश में अन्तर है। कायक्लेश एक बाह्य तप है, जो उदीरणा करके, कष्ट सह कर कर्मक्षय करने के उद्देश्य से स्वेच्छा से झेला जाता है। वह ग्रीष्मऋतु में आतापना लेने, शीतऋतु में अपावृत स्थान मे सोने, वर्षाऋतु मे तरुमूल में निवास करने, अनेक विध प्रतिमाओ को स्वीकार करने, शरीर विभूषा न करने एव नाना आसन करने आदि अर्थों में स्वीकृत है। जबकि परीषह मोक्षमार्ग पर चलते समय इच्छा के बिना प्राप्त होने वाले कष्टो को मार्गच्युत न होने और निर्जरा करने के उद्देश्य से सहा जाता है।
- प्रस्तुत अध्ययन मे कर्मप्रवाद पूर्व के 17वे प्राभृत से उद्धृत करके संयमी के लिए सहन करने योग्य 22 परीषहों का स्वरूप तथा उन्हें सहकर उन पर विजय पाने का निर्देश है। इनमे से बीस परीषह प्रतिकूल है, दो परीषह (स्त्री और सत्कार) अनुकूल है, जिन्हें आचारांग में उष्ण और शीत कहा है।
- इन परीषहो मे प्रज्ञा और अज्ञान की उत्पत्ति का कारण ज्ञानावरणीय कर्म है, अलाभ का अन्तराय कर्म है, अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश, सत्कार–पुरस्कार की उत्पत्ति का कारण चारित्र मोहनीय, 'दर्शन' का दर्शनमोहनीय और शेष 11 परीषहो की उत्पत्ति का कारण वेदनीयकर्म है।
- प्रस्तुत अध्ययन मे परीषहो के विवेचन रूप मे संयमी की चर्या का सांगोपांग निरूपण है।

२. परीषह-प्रविभक्ति

छन्द धनाक्षरी
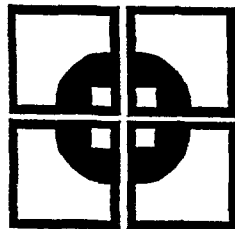
सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया । जे भिक्खू सोच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा ।

आयुष्मान ! हितबोध बाईस परीषहों को।
भगवान् महावीर प्रभु ने बताया है ।।
अणगार जीवन में, जाने भली भाँति इन्हें ।
सुने माने अभ्यास से, परिचय पाया है ।।
पराजित कर भिक्षाचर्या में प्रयत्न करे-
होता नहीं परिशान्त सुपथ सुहाया है ।।
भिक्षाचरी विकट विहारादि में जयशील ।
समाक्रांति काल माँही कम्पित न काया है ।।१।। सूत्र

छन्द-बसन्ततिलका

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा ?

है कौन-सा वह परीषह काश्यपोक्त ।
भिक्षादि पर्यटन में नहि कष्ट कारी ।।
आक्रान्त भी न चलचित्त बने कदापि ।
ऐसा प्रवेदित महेश जिनेन्द्र से है ।।२।। सूत्र

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा तंजहा- ।।३।।

बाईस ये वर परीषह को जिनेन्द्र-
द्वारा प्रणीत परिवेदित जान सूक्त ।।
अभ्यास से नहि पराजित हो विशेष-
भिक्षादि पर्यटन से, चलचित्तता न ।।३।। सूत्र

दिगिंछा-परीसहे[१] पिवासा-परीसहे[२] सीयपरीसहे[३] उसिण-परीसहे[४] दंस-मसय-परीसहे[५] अचेल-परीसहे[६] अरइ - परीसहे[७] इत्थी- परीसहे[८] चरिया - परीसहे[९] णिसीहिया-परीसहे[१०] सेज्जा- परीसहे[११] अक्कोस-परीसहे[१२] वह-परीसहे[१३] जायणा-परीसहे[१४] अलाभ-परीसहे[१५] रोग-परीसहे[१६] तणफास - परीसहे[१७] जल्ल- परीसहे[१८] सक्कार-पुरक्कार- परीसहे[१९] पण्णा - परीसहे[२०] अण्णाण परीसहे[२१] दंसण-परीसहे[२२] ।।४।।

छन्द-धनाक्षरी

क्षुधा संपिपासा शीत उष्ण दंशमशकादि-
अचेल अरति योषित् चयन गिनाया है ।।
निषद्या आक्रोश शय्यावध अरु याचनादि-
अलाभ व रोग तृण जल्ल मान पाया है ।।
प्रज्ञा और है अज्ञान, दर्शन ये बाईस को-
सही वीर तीर्थंकर प्रभु ने बताया है ।।
काश्यप गोत्रीय भगवान महावीरदिष्ट ।
परीषह भेद रूप अनुक्रम छाया है ।।४।।१ सूत्र

परीसहाणं पविभत्ति,
कासवेणं पवेइया ।
तं भे उदाहरिस्सामि,
आणुपुव्विं सुणेह मे ।।१।।

छन्द-बसन्ततिलका

दिगिंछा-परिगए देहे,
तवस्सी भिक्खू थामवं ।
ण छिंदे ण छिंदावए,
ण पए ण पयावए।।२।।

पूरा मनोबल रहे न बुभुक्षयार्त-
छेदे फलादि न कभी, पर से छिदावे ।
पाकादिकर्म निज से, न करे कदापि
अन्यादि से, बन नियोजक ना करावे ।।२।।

काली-पव्वंग-संकासे,
किसे धमणि-संतए ।
मायण्णे असण-पाणस्स,
अदीण-मणसो चरे।।३।।

दीर्घ-क्षुधावलित देह तृणादि तुल्य
दौर्बल्य-पूर्ण कृश कान्ति विभा विहीन ।
तो भी विभोज्य-जल पान-विशेष बुद्ध-
संयाम में मुनि चरे, गतदीन-भाव ।।३।।

तओ पुट्ठो पिवासाए,
दोगुंछी लज्ज-संजए ।

संयामहीन पथ से रुचि-रिक्त साधु
लज्जा प्रधान, परिपीड़ित हो पिपासा-।

सीओदगं ण सेविज्जा,
वियडस्सेसणं चरे।।४।।

से भी सचित्त जल सेवन तो करे न ।
अन्वेषणा नित करे पय जो अचित्त ।।४।।

छिण्णा-वाएसु पंथेसु,
आउरे सुपिवासिए ।
परिसुक्क मुहाऽदीणे,
तं तितिक्खे परीसहं।।५।।

एकान्त शान्त गमनागम-शून्य-मार्ग-
में भी न आतुर पिपासित हो विशेष-।
होवे व्यथा व्यथित नैव, अदीन भाव-
से कष्ट को नित सहे, परिशुष्क कण्ठ ।।५।।

चरंतं विरयं लूहं,
सीयं फुसइ एगया ।
णाइवेलं मुणी गच्छे,
सोच्चाणं जिण-सासणं।।६।।

आसक्तिहीन सुविरक्त पथानुगामी
संशीत जन्य-बहु-कष्ट सहे सदैव-।
आप्तप्रणीत जिनशासन पंथ-यायी
स्वाध्याय काल नहि लंघन से विराधे ।।६।।

ण मे णिवारणं अत्थि,
छवित्ताणं ण विज्जइ ।
अहं तु अग्गिं सेवामि,
इइ भिक्खू ण चिंतए।।७।।

शीतत्व में मुनि न सोच करे कदापि-
मेरे न पास कुछ शीत निवारणार्थ ।
है ना मकान अरु साधन अन्य कोई-
त्राणार्थ वस्त्र नहि, तो अनलादि सेवूँ ।।७।।

उसिणं परियावेणं,
परिदाहेण तज्जिए ।
घिंसु वा परियावेणं,
सायं णो परिदेवए।।८।।

हो उष्ण भूमि व शिला ध्रुव धूप जाल-
के ताप से बहु पिपासित तिग्म सूर्य-।
सन्तप्त तीव्र परिपीडित हो सदैव-
क्या सौख्य हेतु परिदेवित हो तपस्वी ? ।।८।।

उण्हाहि-तत्तो मेहावी,
सिणाणं णोऽवि पत्थए ।
गायं णो परिसिंचेज्जा,
ण वीएज्जा य अप्पयं।।९।।

उष्णादि से न, परिपीडित हो कदापि-
स्नानादि भाव मन में, न करे मनस्वी ।
ना गात्र सिंचित करे, जल से तपस्वी
वात प्रयोग न करे, व्यजनादिकों से ।।९।।

पुट्ठो य दंस-मसएहिं, समरेव महामुणी । णागो संगाम-सीसे वा, सूरो अभिहणे परं।।१०।।	हो मत्कुणादि कटु-कीट उपद्रवी तो- होवे सहिष्णु करिराज समान शान्त । पूरा परीषह सहे, दृढ़-भावना से रागादिभाव-विजयी विनिवृत्तकाम ।।१०।।
ण संतसे ण वारेज्जा, मणंऽपि ण पओसए । उवेहे ण हणे पाणे, भुंजंते मंस-सोणियं।।११।।	संत्रस्त दंशमशकादि परीषहों से- होवे न जान करके, न उसे हटावे । संसक्त शोणित पिये तब भी सुसाधु- मारे, न तीव्रतमभाव बने, न दीन ।।११।।
परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामित्ति अचेलए । अदुवा सचेले होक्खामि, इइ भिक्खू ण चिंतए।।१२।।	वस्त्रादि जीर्ण पर भाव करे न ऐसे नग्नत्व की स्थिति कहीं, न मिले विरूप-। वस्त्रादि लाभ मन में न कभी विचारे मध्यस्थ भाव नद में तिरता अजस्र ।।१२।।
एगयाऽचेलए होइ, सचेले यावि एगया । एयं धम्मं-हियं णच्चा, णाणी णो परिदेवए !।।१३।।	होते सचेल व अचेल परिस्थिती से संयाम धर्म हित में युगल प्रवृत्ति । दोनों दशा हितकरी समयानुकूल ये सोच खेद मन में, न करे मनस्वी ।।१३।।
गामाणुगामं रीयंतं, अणगारं अकिंचणं । अरई अणुप्पवे-सेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं।।१४।।	वासानुवास गति से विहर प्रवृत्ति- में जो बने विरति भाव विदीनता से । तो शान्त चित्त धृति पूर्व सदानगार- पूरा परीषह सहे, कुशली समग्र ।।१४।।
अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आय-रक्खिए । धम्मारामे णिरारम्भे, उवसंते मुणी चरे।।१५।।	संसार से विरत-आत्म-समाधिलीन सम्यक्-सरूप-हित-साधन में प्रवृत्त । धर्मादि में रमणशील अनन्य वृत्ति आरम्भ हीन, उपशान्त बने तपस्वी ।।१५।।

संगो एस मणुस्साणं,
जाओ लोगम्मि इत्थिओ ।
जस्स एया परिण्णाया,
सुकडं तस्स सामण्णं।।१६।।

योषादि लोकगत बन्धन रूप पूर्ण-
ऐसा स्वरूप जिसने पहचान पाया ।
श्रामण्य की सफलता मिलती उसे है
होता जिनागम महासुपथानुगामी ।।१६।।

एवमादाय मेहावी,
पंकभूया उ इत्थिओ ।
णो ताहिं विणिहण्णेज्जा
चरेज्जऽत्तगवेसए।।१७।।

है पंक भूत दल के सम योषिताएँ
मेधा-प्रपूर्ण इनको समझे यथार्थ ।
संयाम का न विनिपात करे कदापि
आत्मानुशोधक बने मुनिवर्य तूर्य ।।१७।।

एग एव चरे लाढे,
अभिभूय परीसहे ।
गामे वा णगरे वावि,
णिगमे वा रायहाणीए।।१८।।

चर्या प्रधान अनुशासित हो अकेला
जेता सदा बन विशाल परीषहों का ।
वासानुवास निगमादिक राजधानी-
में संचरे सुयति कल्प विधानुसारी ।।१८।।

असमाणो चरे भिक्खू,
णेव कुज्जा परिग्गहं ।
असंसत्तो गिहत्थेहिं,
अणिएओ परिव्वए।।१९।।

श्रामण्य धर्म युत भूत दयानुकम्पी
शुभ्रव्रती विगत संग्रह भाव साधु ।
निर्लिप्त-सा जगत में गृहता विमुक्त
सम्यक् चरे विगतनेह सदा मनस्वी ।।१९।।

सुसाणे सुण्णगारे वा,
रुक्ख-मूले व एगओ ।
अकुक्कुओ णिसीएज्जा,
ण य वित्तासए परं।।२०।।

शून्य प्रशान्त गृह में शमशान में या-
वृक्षादि के तल विशेष मुनी अकेला-।
चांचल्यभाव विनिमुक्त सुधीर धैर्य-
ना कष्टदायक बने, लघुजीव का भी ।।२०।।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स,
उवसग्गाभि धारए ।
संका-भीओ ण गच्छेज्जा,
उट्ठित्ता अण्ण मासणं।।२१।।

कष्टादि में यदि कभी उपसर्ग आये-
तो साम्यभाव रख के सहले तपस्वी ।
आत्मादि की क्षति नहीं मन में विचारे
एवं अनिष्ट परिशंकित दूर ना हो ।।२१।।

उच्चावयाहिं सेज्जाहिं,
तवस्सी भिक्खु थामवं ।
णाइवेलं विहण्णेज्जा,
पाव-दिट्ठी विहण्णई।।२२।।

अच्छी बुरी शयन कारण से तपस्वी
संयामशील अवहेलन भी करे, ना ।
हर्षादि शोक अभिभूत बने कुदृष्टि
उल्लंघनादि करता, परिहीन साधु ।।२२।।

पइरिक्कुवस्सयं लद्धुं,
कल्लाणं अदुव पावयं ।
किमेग राइं करिस्सइ,
एवं तत्थ-ऽहियासए।।२३।।

स्त्री आदि से रहित शान्त उपाश्रयों को-
पाके भला अरु बुरा न कहे मुनीश ।
सम्यक्तया वर विचार करे मनस्वी
संवास रात्रि भर का, कर का सकेगा ? ।।२३।।

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं,
ण तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं,
तम्हा भिक्खू ण संजले।।२४।।

गाली प्रयोग यदि कोइ करे मनुष्य-
तो क्रोधभाव उसपै, न करे तपस्वी ।
है क्रोध पूर्ण नर अज्ञ समान सत्य
आक्रोश से ज्वलित हो; न कदापि साधु ।।२४।।

सोच्चाणं फरुसा भासा,
दारुणा गाम-कंटगा ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा,
ण ताओ मणसीकरे।।२५।।

दारुण्य कण्टक समान कठोर भाषा-
को भी सुने, न मन में, मुनि भाव लावे ।
हो मौनपूर्ण समुपेक्षित भावना से-
संसाधना निरत हो, न विराधना हो ।।२५।।

हओ ण संजले भिक्खू,
मणंऽपि ण पओसए ।
तितिक्खं परमं णच्चा,
भिक्खू धम्मं समायरे।।२६।।

घात प्रघात पर भी मुनि के विचारों-
में क्रोध भाव उपजे, नहि कल्मषादि ।
दुर्भावना नहि उठे, यति हो तितिक्षु
संसाधना निरत हो, निज धर्म सेवी ।।२६।।

समणं संजयं दंतं,
हणिज्जा कोइ कत्थइ ।
णत्थि जीवस्स णासुत्ति,
एवं पेहेज्ज संजए।।२७।।

संयाम इन्द्रियजयी श्रमणादिकों के-
घात प्रघात पर चिन्तन को झरे यूं ।
आत्मादि का न परिनाश कभी हुआ है-
ये सोच के वध परीषह को सहे ही ।।२७।।

दुक्करं खलु भो! णिच्चं,
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वं से जाइयं होइ,
णत्थि किंचि अजाइयं।।२८।।

सर्वत्र दुष्कर कहा परियाचना को-
आहार आदि मिलते नित मांगने पै-।
मांगे बिना, न मिलती हर वस्तुएँ भी-
याचे बिना, न बनता, यति काम कोई ।।२८।।

गोयरग्ग-पविट्ठस्स,
पाणी णो सुप्पसारए ।
सेओ अगार-वासुत्ति,
इइ भिक्खू ण चिंतए।।२९।।

भिक्षार्थ यात गृहमध्य, कर प्रसार-
यांचार्थ भिक्षु नहि, भूल करे कदापि-।
श्रामण्य में नियत याचनता समग्र
है श्रेष्ठपूर्ण गृहवास, करे न चिन्ता ।।२९।।

परेसु घासमेसेज्जा,
भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा,
णाणु तप्पेज्ज पंडिए।।३०।।

भोज्यादि सिद्धि समनन्तर गोचरी हो-
आहार लब्धि हित तत्पर हो, तपस्वी-।
थोड़ा मिले, न मिलने पर भी, कभी भी-
संतापपूर्ण नद में नहि खिन्न होवे ?।।३०।।

अज्जेवाहं ण लब्भामि,
अवि लाभो सुए सिया ।
जो एवं पडिसंचिक्खे,
अलाभो तं ण तज्जए।।३१।।

है आज संभव नहीं, कल तो मिलेगा-
जो सोचता इस विधी विनिवृत्तकाम-।
कष्टादि को सहन है करता सदैव-
संत्रस्त वो नहि, अलाभ विषण्ण होता ।।३१।।

णच्चा उप्पइयं दुक्खं,
वेयणाए दुहट्टिए ।
अदीणो ठावए पण्णं,
पुट्ठो तत्थ-ऽहियासए।।३२।।

कर्मादि के उदय से सब रोग होते-
ऐसा विचार कर निर्भर पीड़ना से-।
होवे न दीन मन से स्थिर बुद्धिशाली-
संप्राप्त वेदन सहे समभावपूर्ण ।।३२।।

तेगिच्छं णाभिणंदेज्जा,
संचिक्ख-ऽत्तगवेसए ।
एवं खु तस्स सामण्णं,
जं ण कुज्जा ण कारवे।।३३।।

आत्मा गवेषक सुसाधक संचिकित्सा-
का नाभिनन्दन करे, सुसमाधिवन्त-।
श्रामण्य पालन करे प्ररुजाभिभूत-
रोगोपचार न करे, न कभी कराए ।।३३।।

अचेलगस्स लूहस्स,
संजयस्स तवस्सिणो ।
तणेसु सय-माणस्स,
हुज्जा गाय-विराहणा।।
आयवस्स णिवाएणं,
अउला हवइ वेयणा ।
एवं णच्चा ण सेवंति,
तंतुजं तण तज्जिया।।३४-३५।।

रुक्षांग और गतचेलकपूर्ण साधु-
का घास पै शयन कष्ट विशिष्टकारी-।
सन्नद्ध हो, सहन नित्य परीषहों का-
है कल्प संयत उदार, मुनीश्वरों का ।।३४-३५।।

किलिण्ण-गाए मेहावी,
पंकेण वा रएण वा ।
घिंसु वा परितावेणं,
सायं णो परिदेवए।।३६।।

ग्रीष्मर्तु में सरज मैल सुतापलिप्त-
होता शरीर उससे, अति ही मलीन-।
मेधावि ! सन्त निज सात विशेष हेतु-
संताप ताप तप में, न तपे तपस्वी ।।३६।।

वेएज्ज णिज्जरा-पेही,
आरियं धम्म-ऽणुत्तरं ।
जाव सरीर-भेउत्ति,
जल्लं काएण धारए।।३७।।

जो आर्य-धर्म अनुरञ्जित-निर्जरार्थी-
धृत्यादि से वदन पै रख जल्ल मैल-।
संसाम्य भावपन से, सहता सदैव-
वो वीतराग पथ का परिपान्थ होता ।।३७।।

अभिवायण-मब्भुट्ठाणं,
सामी कुज्जा णिमंतणं ।
जे ताइं पडिसेवंति,
ण तेसिं पीहए मुणी।।३८।।

राजादि शासक समूह सभाजनाक्त-
सम्मान संग अभिवाद निमन्त्रणादि-।
स्वीकारते अपर भिक्षु जिसे सहर्ष-
संयामशील उसकी, न करे अभीप्सा ।।३८।।

अणु-क्कसाई अप्पिच्छे,
अण्णाएसी अलोलुए ।
रसेसु णाणुगिज्झेज्जा,
णाणुतप्पेज्ज पण्णवं।।३९।।

होवे अहंकृतिविहीन विशेष साधु
हो अल्प इच्छित सदैव विरक्तभाव ।
अज्ञात वंश परियाचक गृद्धिमुक्त-
सम्मान देख पर का न तपे प्रबुद्ध ।।३९।।

से णूणं मए पुव्वं,
कम्मा-ऽणाण-फला कडा ।
जेणाहं णाभिजाणामि,
पुट्ठो केणइ कण्हुइ।।४०।।

मैंने प्रदुष्य अपकर्म किये प्रभूत-
अज्ञान रूप फल लब्ध, मुझे हुए हैं ।
प्रश्नोत्तरादि असमर्थ बना हुआ हूँ-
है कर्म का फलविपाक अवश्यभावी ।।४०।।

अह पच्छा उइज्जंति,
कम्मा-ऽणाण-फला कडा ।
एवमस्सासि अप्पाणं,
णच्चा कम्म-विवागयं।।४१।।

अज्ञान-रूप फलदायक-पूर्वकर्म-
के ही प्रभावपन का मिलता उदै है ।
ये भाव जान करके मुनिवर्य नैज-
आश्वस्त हो, सतत संयम में तपस्वी ।।४१।।

णिरट्ठ-गम्मि विरओ,
मेहुणाओ सुसंवुडो ।
जो सक्खं णाभिजाणामि,
धम्मं कल्लाण-पावगं।।४२।।

संसार-सौख्य परिहान वृथा किया है
चित्तेन्द्रियादि दमनादिक योग्य भी न-।
धर्मादि के विषय में कुछ भी न दीखे-
संशीति साधु मन में, न करे कदापि ।।४२।।

तवोवहाण-मादाय,
पडिमं पडिवज्जओ ।
एवं वि विहरओ मे,
छउमं ण णियट्टइ।।४३।।

स्वीकारता सतत सार तपोपधान
संपालना नित करूँ प्रतिमादिकों की ।
कर्मा-वृत्ती न मिटती फिर भी अनल्प- ?
ऐसा विचार मुनि का, न बने कदापि ।।४३।।

णत्थि णूणं परे लोए,
इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ-मित्ति,
इइ भिक्खू ण चिंतए।।४४।।

आता न दृष्टिपथ में परलोक कोई-
एवम् तपादिकृत ऋद्धि नहीं यती में ।
मैं तो प्रवंचित हुआ, जिन धर्म हेतु-
ऐसा न चिन्तन करे, मन में मनस्वी ।।४४।।

अभू-जिणा अत्थि-जिणा,
अदुवा वि भविस्सइ ।
मुसं ते एव-माहंसु,
इइ भिक्खू ण चिंतए।।४५।।

थे पूर्व में जिन व वर्तन काल में हैं
होगें भविष्यगत ये परिकल्पना है ।
मिथ्यानिरूपण किया प्रतिकूलता से-
ऐसा न चिन्तन करे, मन में तपस्वी ।।४५।।

एए परीसहा सव्वे,
कासवेणं पवेइया ।
जे भिक्खू ण विहम्मेज्जा,
पुट्ठो केणइ कण्हुई।।४६।।

ऐसी जिनेन्द्र कृत मुक्ति विवेचना है
और परीषह कहे प्रभु ने यथार्थ-।
संबोध से मुनि पराजित हो कभी न-
संयाम में विहरता, मुनि धर्म धीर ।।४६।।
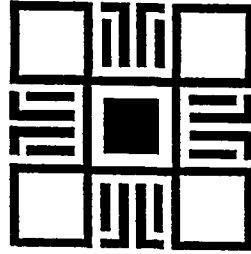
३ अध्ययन : चतुरंगीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम चतुरंगीय है।
- प्रस्तुत अध्ययन में – (1) मनुष्यत्व, (2) सद्धर्म–श्रवण, (3) सद्धर्म में श्रद्धा और (4) संयम में पराक्रम–इन चारों अंगों की दुर्लभता का क्रमशः प्रतिपादन है।
- सर्वप्रथम इस अध्ययन में मनुष्यजन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन किया गया है। यह तो सभी धर्मों और दर्शनों ने माना है कि मनुष्यशरीर प्राप्त हुए बिना मोक्ष–जन्ममरण से, कर्मों से, रागद्वेषादि से मुक्ति–नहीं हो सकती। इसी देह से इतनी उच्च साधना हो सकती है और आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है।
- तत्पश्चात् द्वितीय दुर्लभ अंग है–धर्मश्रवण। धर्मश्रवण की रुचि प्रत्येक मनुष्य मे नही होती। जो महारम्भी एवं महापरिग्रही है, उन्हें तो सद्धर्मश्रवण की रुचि ही नही होती। अधिकांश लोग दुर्लभतम मनुष्यत्व को पा कर भी धर्मश्रवण का लाभ नही ले पाते। सद्धर्मश्रवण न होने पर मनुष्य हेयोपादेय, श्रेय–अश्रेय, हिताहित, कार्याकार्य का विवेक नही कर सकता। इसीलिए मनुष्यता के बाद सद्धर्मश्रवण को परम दुर्लभ बताया है।
- श्रवण के बाद तीसरा दुर्लभ अंग है–श्रद्धा–यथार्थ दृष्टि, धर्मनिष्ठा, तत्त्वो के प्रति रुचि और प्रतीति। जिसकी दृष्टि मिथ्या होती है, वह सद्धर्म, सच्छास्त्र एवं सत्तत्त्व की बात जान–सुन कर भी उस पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि नही करता। कदाचित् सम्यक् दृष्टिकोण के कारण श्रद्धा भी कर ले, तो भी उसकी ऋजुप्रकृति के कारण सद्गुरु एवं सत्संग के अभाव में या कुदृष्टियों एवं अज्ञानियो के संग से असत्तत्त्व एवं कुधर्म के प्रति भी श्रद्धा का झुकाव हो सकता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि सच्ची श्रद्धा–धर्मनिष्ठा परम दुर्लभ है।

- अन्तिम दुर्लभ परम अग है—संयम में पराक्रम—पुरुषार्थ। बहुत से लोग धर्मश्रवण करके, तत्त्व समझ कर श्रद्धा करने के बाद भी उसी दिशा में तदनुरूप पुरुषार्थ करने से हिचकिचाते है। अतः जानना—सुनना और श्रद्धा करना एक बात है और उसे क्रियान्वित करना दूसरी।
- अध्ययन के अन्त में दुर्लभ चतुरंगीय प्राप्ति के अनन्तर धर्म की सांगोपांग आराधना करने की साक्षात् और परस्पर फलश्रुति दी गई है, जो मोक्ष प्राप्ति है।
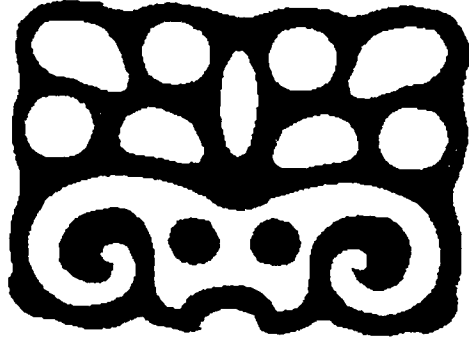
३. चतुरंगीय

चत्तारि परमंगाणि,
दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा,
संजमम्मि य वीरियं।।१।।

ये चार अंग चय मध्यम लोक मध्य
दुर्लब्ध है मनुजता, श्रुति, सत्य धर्म ।
श्रद्धा जिनेन्द्र वच में अरु संयमादि-
में पौरुषत्व, जिन आगम में निदिष्ट ।।१।।

समावण्णाण संसारे,
णाणा गोत्तासु जाइसु ।
कम्मा णाणाविहा कट्टु,
पुढो विस्संभिया पया।।२।।

नाना प्रकार गत कर्म, करे सदैव-
पाता, अनेक विध योनि समुद्भवी-हो-।
होते पृथक् विविध रूप समस्त लोक-
सर्वत्र जन्म गहना अनिवार्य होता ।।२।।

एगया देवलोएसु,
णरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं,
अहाकम्मेहिं गच्छई।।
एगया खत्तिओ होइ,
तओ चण्डाल बुक्कसो ।
तओ कीड-पयंगो य,
तओ कुंथु-पिवीलिया।।३-४।।

कर्मानुसार सब जीव सुरादिकों में-
होते कभी नरक में, असुरादिकों में-।
होता कदापि वह छत्रप भी श्वपाक-
सांकर्यपूर्ण अरु कुन्थुपिपीलिका भी ।।३-४।।

एवमावट्ट - जोणीसु,
पाणिणो कम्म-किव्विसा ।

राजन्यवृन्द करके चिरकाल भोग-
निर्वेद भाव लहते, न कभी विशुद्ध-।

ण णिविज्जंति संसारे,
सव्वट्ठेसु व खत्तिया।।५।।

वैसे विचार युत जीव अनादिकाल-
में भी न मुक्ति पथ पै गतिमान होते ।।५।।

कम्म-संगेहिं सम्मूढा,
दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु,
विणिहम्मंति पाणिणो।।६।।

कर्मादि संग अति मूढ व दुःखयुक्त
अत्यन्त वेदन परायण हो विशेष-।
मानुष्यहीन गति में बहु जन्म पाता-
है बार बार विनिघातमयी अवस्था ।।६।।

कम्माणं तु पहाणाए,
आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहि-मणुप्पत्ता,
आययंति मणुस्सयं।।७।।

होता मनुष्य गतिरोधक, कर्मनाश-
काल क्रमात्त तब जीव विशुद्धि पाता-।
सम्भाव्य है फल सरूप कभी-कभी ही-
मानुष्य लाभ हित कारक मुक्ति-यायी ।।७।।

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं,
सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति,
तवं खंति-महिंसयं।।८।।

मानुष्य जन्म मिलने पर भी नितान्त-
धर्म श्रुती कठिन है जग में विशेष-।
पाता सदैव जिससे तप शान्त्यहिंसा-
संसार चक्र विनिवर्तित दान्तजीव ।।८।।

आहच्च सवणं लद्धुं,
सद्धा परम दुल्लहा ।
सोच्चा णेआउयं मग्गं,
बहवे परिभस्सई।।९।।

होता कभी श्रवण धर्म कलाप का भी-
श्रद्धा सु पूर्ण उनपै नहि दीखती है ।
होते प्रभूत जन भी सुन मोक्ष मार्ग-
आस्था नहीं, विचल भी पल मध्य होते ।।९।।

सुइं च लद्धुं सद्धं च,
वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि,
णो एणं पडिवज्जए।।१०।।

शास्त्रादि के श्रवण संग विशुद्धि पाके
श्रद्धा न संयम सुधा विनिमग्न होते-।
संयाम में रुचि विशेष रहे तथापि
सम्यक्त्व रूप उसको नहि मानते हैं ।।१०।।

माणुसत्तम्मि आयाओ,
जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं,
संवुडे णिद्धुणे रयं।।११।।

मानुष्य लब्ध करके सुनता श्रुतादि
श्रद्धा विशेष करता तप सन्निविष्ट।
होती वही पुरुषपूर्ण अनाश्रवी भी-
कर्मादि धूलि नित दूर करे सदैव ।।११।।

सोही उज्जुय भूयस्स,
धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
णिव्वाणं परमं जाइ,
घयसित्तव्व पावए।।१२।।

सारल्य से विमल शुद्धि मिले समग्र
संशुद्ध-धर्म लहता जिन दिष्ट रूप ।
संसिक्त सर्पिचय से हुतभुक् समान
धर्मी विशुद्ध निज दीप्ति सरूप पाता ।।१२।।

विगिंच कम्मुणो हेउं,
जसं संचिणु खंतिए ।
सरीरं पाढवं हिच्चा,
उड्ढं पक्कमई दिसं।।१३।।

कर्मादि हेतु गण को कर दूर सारे-
होके क्षमा, सुयश से बहु साधनाभृत् ।
वो छोड़ पार्थिव शरीर सहर्ष उर्ध्व-
लोकाग्र की दिशि गती अपनी बढ़ाता ।।१३।।

विसालिसेहिं सीलेहिं,
जक्खा उत्तर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पंता,
मण्णंता अपुण-च्चवं।।१४।।

शीलादि के विविध पालन से सुदेव-
औ उत्तरोत्तर समृद्धि सुदीप्ति शाली-।
होता न पात दिवि से तब मध्य लोक-
में मानता, नियत बोध सदैव योगी ।।१४।।

अप्पिया देवकामाणं,
काम - रूव - विउव्विणो ।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति,
पुव्वा वाससया बहू।।१५।।

वे दिव्य भोग हित अर्पित इष्टकारी-
होते समर्थ निज रूप विनिर्मिती से-।
वे उर्ध्वकल्प शत पूर्व वहाँ निवासे-
है देवलोक जनि की सविधान चर्चा ।।१५।।

तत्थ ठिच्चा जहा-ठाणं,
जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेंति माणुसं जोणिं,
से दसंगे-ऽभिजायई।।१६।।

वे देवलोक पद में थित आयुहीन-
है छोड़ते, निज शरीर मनुष्य योनि-।
में प्राप्त होकर दशांग दशा समेत
आनन्द सागर निमज्जित भोगयुक्त ।।१६।।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च,
पसवो दास-पोरुसं ।
चत्तारि काम-खंधाणि,
तत्थ से उववज्जई।।१७।।

क्षेत्रादि वस्तु गृह हेम पशु तदैव-
हो दास पौरुष समेत समृद्धिकारी ।
ये चार काम परिखन्द मिले जहाँ पै-
होते वहाँ समुतपन्न, विशेष रूप ।।१७।।

मित्तवं णायवं होइ,
उच्चगोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महा-पण्णे,
अभिजाए जसोबले।।१८।।

सन्मित्रयुक्त कुल जाति विशेष रूप-
उच्चाप्त गोत्र वर वर्ण निरोग कान्त-।
प्रज्ञा परीत्त अभिजात महाबलिष्ठ-
होते सतर्क नित वे रुचिभृद् यशस्वी ।।१८।।

भोच्चा माणुस्सए भोए,
अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्विं विसुद्ध-सद्धम्मे,
केवलं बोहि बुज्झिया।।१९।।

वे मानवीय परिभोग विशेष भोगी-
हो पूर्व काल गत धर्म विशिष्ट शोभी-।
नैर्मल्य बोधि जन लब्ध सुधर्मता से-
वैशिष्टपूर्ण बनते, जग में तपस्वी ।।१९।।

चउरंगं दुल्लहं णच्चा,
संजमं पडिवज्जिया
तवसा धुयकम्मंसे,
सिद्धे हवइ सासए।।२०।।

पूर्वोक्त तुर्य धन दुर्लभ जात साधु-
स्वीकारते यम विशेष, महातपस्वी-।
होते तपश्चरण से धुतकर्मजाल-
पाते, समग्र नित शाश्वत सिद्धि शर्म ।।२०।।
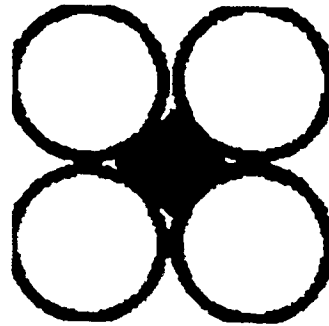
४ अध्ययन : असंस्कृत

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत चतुर्थ अध्ययन का नाम 'असंस्कृत' है।
- इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है–प्रमाद से बचना और जीवन के अन्त तक अप्रमाद–पूर्वक मानसिक–वाचिक–कायिक प्रवृत्ति करना।
- प्रस्तुत अध्ययन में भगवान् महावीर ने प्रमाद के कुछ कारण ऐसे बताए है, जिनका मुख्य स्रोत जीवन के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण का अभाव है और प्रमाद में पडकर वास्तविक (मोक्ष) पुरुषार्थ से भटक जाता है। उस युग में जीवन के प्रति कुछ भ्रान्त धारणाएँ या मिथ्या लोकमान्यताएँ ये थीं, जिन्हे प्रस्तुत अध्ययन में प्रमादस्रोत मानकर उनका खण्डन किया गया है।
- 1. 'जीवन संस्कृत है, अथवा किया जा सकता है,' ऐसा तथाकथित सस्कृतवादी मानते थे। परपदार्थों की अधिकाधिक वृद्धि एवं आसक्ति में एवं मंत्र–तंत्रों, देवो या अवतारो की सहायता या कृपा से टूटे या टूटते हुए जीवन को पुनः साधने (संस्कृत) को ही संस्कृत जीवन मानते थे।
- 2. 'धर्म बुढापे मे करना चाहिए, पहले नहीं,' इसका निराकरण भगवान् ने किया–'धर्म करने के लिए सभी काल उपयुक्त है, बुढापा आएगा या नहीं, यह भी निश्चित नही है, फिर बुढापा आने पर भी कोई शरणदाता या असंस्कृत जीवन को सांधने रक्षा करने वाला नही रहेगा।'
- 3. कुछ मतवादी अर्थपुरुषार्थ पर जोर देते थे, इस कारण धन को असंस्कृत जीवन का त्राण (रक्षक) मानते थे।
- 4. कई लोग यह मानते थे कि कृत कर्मो का फल अगले जन्म में मिलता है तथा कई मानते थे–कर्मो का फल है ही नहीं, होगा तो भी अवतार या भगवान् को प्रसन्न करके या क्षमायाचना कर उस फल से छूट जाएँगे।

❁ 5. यह भी भ्रान्त धारणा थी कि यदि एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों के लिए कोई शुभाशुभ कर्म करता है, तो उसका फल वे सब भुगतते है।

❁ 6. ऐसी भी मान्यता थी कि साधना के लिए संघ या गुरु आदि का आश्रय विघ्नकारक है, व्यक्ति को स्वयं एकाकी साधना करनी चाहिए।

❁ 7 कुछ लोग यह मानते थे कि अभी तो हम जैसे–तैसे चल लें, पिछले जीवन में अप्रमत्त हो जाएँगे।

❁ 8. कुछ लोगो की मान्यता थी कि 'हम जीवन के अन्तिम भाग में आत्मविवेक (भेदविज्ञान) कर लेगें, शरीर पर मोह न रख कर आत्मा की रक्षा कर लेगे।

❁ इसी प्रकार बीच–बीच में प्रमाद के भयस्थलो से बचने का भी निर्देश किया गया है– मोहनिद्रा में सुप्त व्यक्तियों में भी भारण्डपक्षीवत् जागृत होकर रहो, समय शीघ्रता से आयु को नष्ट कर रहा है, शरीर दुर्बल व विनाशी है, इसलिए प्रमाद में जरा भी विश्वास न करो, जरा–से भी प्रमाद (मन–वचन–काया की अजागृति) को बन्धनकारक समझो, विविध अनुकूल–प्रतिकूल विषयों पर राग–द्वेष न करो, कषायो का परित्याग भी अप्रमादी के लिए आवश्यक है, प्रतिक्षण अप्रमत्त रह कर अन्तिम सांस तक रत्नत्रयादिगुणों की आराधना मे तत्पर रहो।

❁ ये ही अप्रमाद के मूलमंत्र इस अध्ययन में भलीभांति प्रतिपादित किये गए है।
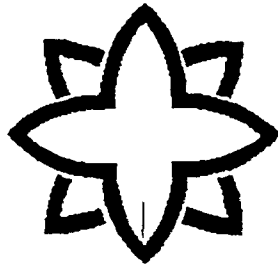
४. असंस्कृत

असंखयं जीविय मा पमायए,
जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते,
किण्णु-विहिंसा अजया गहिंति।।१।।

विच्छिन्न जीवन कभी जुड़ता नही है
तो है प्रमाद किस हेतु अनर्थकारी ।
वार्धक्य भाव फिर आश्रय हीन जानो
हिंसा, असंयम, विसाद न थान पाते ।।१।।

जे पाव-कम्मेहिं धणं मणूसा,
समाययंति अमइं गहाय ।
पहाय ते पास-पयट्टिए णरे,
वेराणुबद्धा णरयं उवेंति।।२।।

अज्ञान से मनुज जो, कर पापवृत्ति
पूरा उपार्जित करें, धन को विशेष ।
वे वासना समभिभूत सुबद्ध बैर
कर्माभिबद्ध गति नारक नित्य पाते ।।२।।

तेणे जहा संधिमुहे गहीए,
सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोए,
कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि।।३।।

है सेंध सन्धि मुख पै पकड़े हुए को-
होती सजा, कृतक कर्म निदान जन्म ।
वैसे स्वकर्म कृत भी इस लोक बीच-
भोगें बिना न, विरती, निज कर्म से है ।।३।।

संसार-मावण्ण परस्स अट्ठा,
साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले,
ण बंधवा बंधवयं उवेंति।।४।।

संसार में निरत नैज व अन्य हेतु-
साधारणादि बहुकर्म करें अवश्य ।
कोई सहायक नहीं, उस भोग में है
ये सोच हो, विरत संसृति से सदैव ।।४।।

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते,	जो है प्रमत्त नर लोक अलोक में भी
इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।	होता न रक्षण धनादिक से कदापि ।
दीव-प्पणट्ठेव अणंत-मोहे,	मोहादि से नहि लहे शुभ मोक्ष मार्ग
णेयाउयं दट्ठु-मदट्ठुमेव।।५।।	पाते न, वस्तु जन दीप बिना तमों में ।।५।।
सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध-जीवी,	संषुप्ति में विबुध बोध सदैव जागे
ण वीससे पंडिए आसुपण्णे ।	विश्वास एक पल आलस का करे न ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,	होता भयंकर समै कृशकाय भी है-
भारंड-पक्खीव चरेऽप्पमत्ते।।६।।	भारण्ड पक्षि सम अप्रमदी सदा हो ।।६।।
चरे पयाइं परिसंकमाणो,	संभावना सतत दोष कलाप की है
जं किंचि पासं इह मण्णमाणो ।	संसाधु का प्रथम लक्ष्य, अदोष ही है।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता,	हो सावधान लघु दोष, सुपाश जाने-
पच्छा परिण्णाय-मलावधंसी।।७।।	बोधाद्यभाव थिति में तनु छोड़ देवे ।।७।।
छंदं-णिरोहेण उवेइ मोक्खं,	शिक्षा प्रधान अरु वर्म धराश्व युद्ध-
आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी ।	में पारलब्ध बनता सृति में तथैव ।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो,	स्वच्छन्दता परिनिरोधक साधना से
तम्हा मुणी खिप्प-मुवेइ मोक्खं।।८।।	हो अप्रमत्त यति भी पद मोक्ष पाता ।।८।।
स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा,	जो अप्रमत्त पन से नहि पूर्व में था
एसोवमा सासय वाइयाणं ।	वो बाद में किस विधी फिर जागरी हो ।
विसीयई सिढिले आउयम्मि,	पश्चात् प्रबोध उपलब्ध नितान्त होगा
कालोवणीए सरीरस्स भेए।।९।।	मिथ्या प्रकल्प यह शाश्वतवादियों का ।।९।।
खिप्पं ण सक्केइ विवेगमेउं,	तत्काल ही नहि विवेक विशेष आता-
तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।	इच्छा निरोध पथ पै चलते महर्षि-।
समिच्च लोयं समया महेसी,	सम्यक्तया समझ के जगती सरूप
अप्पाण रक्खी चरमप्पमत्तो।।१०।।	हो अप्रमत्त, विचरे ममता विहीन ।।१०।।

मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयंतं,
अणेग-रूवा समणं चरंतं ।
फासा फुसंति असमंजसं च,
ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से।।११।।

संसिद्धि हेतु यतमान बने तपस्वी
बाधा विशेष करते विषयादि रूप ।
रागादि शत्रु जयनैक-दृढ़व्रती हो-
विद्वेष भाव मन में, न करे कदापि ।।११।।

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा,
तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा ।
रक्खिज्ज कोहं विणएज्ज माणं,
मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं।।१२।।

माया सदैव मन को परिमोहती है
होवे सतर्क-उससे बहुदूर साधु ।
क्रोधादि मान परिचिन्तन है सदोष
माया विलोभ परिवर्जित हो मुनीश ।।१२।।

जेऽसंखया तच्छ परप्पवाई,
ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा ।
एए अहम्मे त्ति दुगुंछमाणो,
कंखे गुणे जाव सरीरभेए।।१३।।

संस्कारहीन अरु तुच्छ परप्रवादी-
जो प्रेय पाश परिबन्धित काम-दास ।
सद्धर्मरिक्त जन है, उनसे पृथक् हो-
कायादि भेद तक सद्गुण को सजावे ।।१३।।

५ अध्ययन : अकाममरणीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन का नाम 'अकाममरणीय' है।
- ससारी जीव की जीवनयात्रा के दो पडाव है–जन्म और मरण। जन्म भी अनन्त–अनन्त बार होता है और मरण भी। परन्तु जिसे जीवन और मृत्यु का यथार्थ दृष्टिकोण, यथार्थ स्वरूप समझ में नही आता, वह जीवित भी मृतवत् है, परन्तु जो जीवन और मृत्यु के रहस्य और यथार्थ दृष्टिकोण को सम्यक्तया समझ लेता है और उसी प्रकार जीवन जीता है, उसे न जीने का मोह होता है और न ही मृत्यु का गम। वह हॅसते–हॅसते मृत्यु का वरण करता है। मृत्यु को एक महोत्सव की तरह मानता है और इस नाशवान् शरीर को त्याग देता है। वह भविष्य में अपने जन्म–मरण की संख्या को घटा देता है, अथवा जन्म–मरण की गति को सदा के लिए अवरुद्ध कर देता है।
- इन दोनो कोटि के व्यक्तियो मे से एक के मरण को बालमरण और दूसरे के मरण को पण्डितमरण कहा गया है। पहली कोटि का व्यक्ति मृत्यु को अत्यन्त भयंकर मान कर उससे घबराता है, उस व्यक्ति की मृत्यु को 'अकाममरण' कहा है। जबकि दूसरा व्यक्ति मृत्यु के स्वरूप एवं रहस्य को भलीभांति समझ लेता है, मृत्यु को परमसखा मान कर वह उसका वरण करता है, इसलिए उसकी मृत्यु को 'सकाममरण' कहा गया है।
- प्रस्तुत अध्ययन का मूल स्वर है–साधक को अकाममरण से बच कर सकाममरण की अपेक्षा करनी चाहिए।

- प्रस्तुत अध्ययन मे निरूपित बालमरण और पण्डितमरण में इन सबको गतार्थ करके, पण्डितमरण का ही प्रयत्न साधक को करना चाहिए, यही प्रेरणा यहॉ निहित है।
- अकाम और सकाम मरण का विस्तार में आशय समझने के लिये अध्याय का विशेष रूप में अध्ययन करना चाहिये।

५. अकाममरणीय

अण्णवंसि महोहंसि,
एगे तिण्णे दुरुत्तरे ।
तत्थ एगे महापण्णे,
इमं पञ्ह-मुदाहरे।।१।।

संसार में जलधि तुल्य गभीर रूप-
तीव्र प्रवाह तरना अतिकष्ट साध्य-।
संतीर्ण हैं, कर चुके कुछ भव्य आत्मा-
तीर्थंकरादि उनकी सुविवेचना है ।।१।।

संतिमे य दुवे ठाणा,
अक्खाया मारणंतिया ।
अकाम-मरणं चेव,
सकाम-मरणं तहा।।
बालाणं तु अकामं तु,
मरणं असइं भवे ।
पंडियाणं सकामं तु,
उक्कोसेण सइं भवे।।२-३।।

हैं भेद दो, मरण के करते अकाम-
एवं सकाम मरणादिक की विवक्षा-।
अज्ञ प्रधान मरणादि अकाम रूप-
संबुद्ध की मृति सकाम सकृत् कही हैं ।।२-३।।

तत्थिमं पढमं ठाणं,
महावीरेण देसियं ।
काम-गिद्धे जहा बाले,
भिसं कूराइं कुव्वइ।।४।।

स्थान द्वय प्रथम में प्रभु ने कहा यूँ-
जो कामभोग युत अज्ञ करे कुकर्म-।
तो कामसक्त रहता, वह कूट कर्मा-
वो वाल जीव पचता सृति कुंड में ही ।।४।।

जे गिद्धे काम-भोगेसु,
एगे कूडाय गच्छइ ।

जो काम-भोगगतसक्ति मनुष्य होता-
हिंसा असत्य परिभाषण-सक्त मानो-।

ण मे दिट्ठे परे-लोए,
चक्खुदिट्ठा इमा रई।।५।।

है मानता अपर लोक, न देख पाया-
संसार सौख्य सच है नित सामने जो ।।५।।

हत्थागया इमे कामा,
कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए,
अत्थि वा णत्थि वा पुणो।।६।।

तत्काल हस्तगत काम सुखादि पाये-
संदिग्ध रूप वह आगत काल का है-।
जो जानता कि परलोक रहा हुआ है-
या है नहीं, यह सभी जग कल्पना है ।।६।।

जणेण सद्धिं होक्खामि,
इइ बाले पगब्भई ।
काम-भोगाणुराएणं,
केसं संपडिवज्जई।।७।।

संसार साथ रहना, मन में समाया-
जो संस्थिती पर विशेष तथैव मेरी-।
वो अज्ञ नष्ट बनता, गिरता अवश्य-
भोगादिजन्य परिणाम समग्र पाता ।।७।।

तओ से दंडं समारम्भइ,
तसेसु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए,
भूयगामं विहिंसइ।।
हिंसे बाले मुसावाई,
माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं,
सेय-मे यंति मण्णइ।।८-९।।

होता प्रयुक्त तस थावर दण्डपूर्ण-
होती अहेतु अरु हेतुक जीव हिंसा-।
माया असत्य छलना चुगली अबोध-
मद्यादि मांस परिसेवन इष्ट माने ।।८-९।।

कायसा वयसा मत्ते,
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ,
सिसुणागोव्व मट्टियं।।१०।।

जो काय वाग् विषय में बहुमत्त होता-
वो वित्तकाम-विनिमज्जित भोगसक्त-।
रागादि वैर बढ़ता मल कर्मकारी-
होता प्रमत्त शिशु नाग समान वद्ध ।।१०।।

तओ पुट्ठो आयंकेणं,
गिलाणो परितप्पइ ।
पभीओ पर-लोगस्स,
कम्माणुप्पेहि अप्पणो।।११।।

भोग प्रसक्त मतिहीन सुबाल जीव-
आतंक-रोग-परिभूत मलिन होके-।
संतापताप बन के, कृतकर्म हेतु-
संविग्न हो निरय से भयभीत होता ।।११।।

सुया मे णरए ठाणा,
असीलाणं च जा गई ।
बालाणं कूर-कम्माणं,
पगाढा जत्थ वेयणा।।१२।।

है सोचता नरक की गति दुःखदायी-
शीलादिहीन परिबोध विहीन जीव-।
का भी, कुकर्मवृत ही उस ठौर जाते-
पाते अपार दुःख हैं, परिवेदना से ।।१२।।

तत्थोव-वाइयं ठाणं,
जहा-मेय मणुस्सुयं ।
आहाकम्मेहिं गच्छंतो,
सो पच्छा परितप्पइ।।१३।।

है औपपातिक थिती निरयादि में भी-
कुम्भादि में जनमता वह जीव जाके ।
आयुष्य नाश पर नैज कुकर्मता से-
पाता, सदैव परिताप वहाँ विशेष ।।१३।।

जहा सागडिओ जाणं,
समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्ग-मोइण्णो,
अक्खे भग्गम्मि सोयइ।।१४।।

जैसे कभी शकट को सम से हटाके
वैषम्य मार्ग पर है, उसको चलाता ।
धूरी प्रणष्ट पर शोक करे प्रभारी
वैसा सुतप्त बनता असमीक्ष्यकारी ।।१४।।

एवं धम्मं विउक्कम्म,
अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते,
अक्खे भग्गे व सोयइ।।१५।।

धर्मादि को तज, अधर्म विमार्ग गामी-
है बाल मृत्यु मुख में परिशोक पाता ।
विच्छिन्न धैर्य पर शोकमयी अवस्था-
होती यथा शकट-वाहक की नितान्त ।।१५।।

तओ से मरणंतम्मि,
बाले संतस्सइ भया ।
अकाम-मरणं मरइ,
धुत्तेव कलिणा जिए।।१६।।

संमृत्यु के समय अज्ञ विशेष रूप
लोकादि का भय सदा रहता उसे है ।
वो धूर्त के सम सुदाव समग्र हारे
पूरा अकाम मरणादिक शोक पाता ।।१६।।

एयं अकाम-मरणं,
बालाणं तु पवेइयं ।
इत्तो सकाम-मरणं,
पंडियाणं सुणेह मे।।१७।।

द्वैविध्य है मरण एक सकाम रूप-
दूजा अकाम, जिन आगम में कहा है ।
अज्ञानि-जीव मरता नित है अकाम-
आगे सकाम निधनादिक का निदेश- ।।१७।।

मरणंपि स-पुण्णाणं,
जहा-मेयऽमणुस्सुयं ।
विप्पसण्ण-मणाघायं,
संजयाणं वुसीमओ।।१८।।

पांडित्य पूर्ण मरना श्रुत आगमों में-
वो है सकाम निधनार्चित रूपशाली ।
आघातहीन नित आकुलता विहीन
पूरा जितेन्द्रिय भवी लहता जिसे है ।।१८।।

ण इमं सव्वेसु भिक्खूसु,
ण इमं सव्वेसु-ऽगारिसु ।
णाणा-सीला अगारत्था,
विसम-सीला य भिक्खुणो।।१६।।

ना ये सकाम मरणादिक सर्वभिक्षु-
पाते, नहीं अपर और सभी गृहस्थ-।
होता अनेक गुणशील गृहस्थ लोक-
औ भिक्षु भी विषमशील कहाँ नहीं हैं ?।।१६।।

संति एगेहिं भिक्खूहिं,
गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं,
साहवो संजमुत्तरा।।
चीराजिणं णगिणिणं,
जडी संघाडि मुंडिणं।
एयाणि वि ण तायंति,
दुस्सीलं परियागयं।।२०-२१।।

होते गृहस्थ नर संयम शील भी तो-
सद्भिक्षु के निकट किन्तु विशुद्धचारी ।
सारे गृहस्थ जन से यति वृन्द होता
धर्माभिराधन सुखी, यतना-विशिष्ट ।।२०-२१।।

पिंडोलएव दुस्सीले,
णरगाओ ण मुच्चइ ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा,
सुव्वए कम्मई दिवं।।२२।।

भिक्षादिवृत्ति कृत जीवन-धारणार्थी-
दुःशील भिक्षु नरकाप्ति लहे अवश्य ।
होवे सुभिक्षु रु गृहस्थ सुसंयमी तो-
स्वर्गस्थ हो निवसते, इसमें न शंका ।।२२।।

अगारि सामा-इयंगाइं,
सड्ढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं,
एगरायं ण हावए।।२३।।

सामायिकादि विधि सेवन गेहवासी-
पूर्णांश में नित करे यमनिष्ठ होके ।
सम्पूर्णमास नित पौषध को अराधे-
त्यागे नहीं व्रत, कभी परिबोधशाली ।।२३।।

एवं सिक्खा-समावण्णे,
गिहि-वासे वि सुव्वए ।
मुच्चइ छवि-पव्वाओ,
गच्छे जक्खस्स-लोगयं।।२४।।

धर्मादि-शिक्षण-समाहित-सुव्रती भी-
गार्हस्थ्य में निरत हो, निज मानवीय-।
औदारिकादि तन को तज, देवलोक-
में जन्म को ग्रहण है करता यशस्वी ।।२४।।

अह जे संवुडे भिक्खू,
दोण्ह-मण्णयरे सिया ।
सव्व-दुक्ख-प्पहीणे वा,
देवे वावि महिड्ढिए।।२५।।

दोनों दशा कथित संवृत साधकों की-
या एक ही स्थिति वहाँ पर लब्ध होती ।
सर्वत्र दुःख परिहीन, बने विमुक्त-
या ऋद्धिपूर्ण शुभ देव सरूप पाता ।।२५।।

उत्तराइं, विमोहाइं,
जुई-मंताऽणु पुव्वसो ।
समाइण्णाइं जक्खेहिं,
आवासाइं जसंसिणो।।२६।।

सर्व-प्रकृष्ट-भवनादि अनुक्रमोर्ध्व-
व्यामोहशून्य शुभ शुभ्र तु देवयुक्त-।
वे देव भी सुयशपूर्ण रहें वहाँ पै-
पूरा सुवेष्टित-महाद्युति संप्रधारी ।।२६।।

दीहाउया इड्ढिमंता,
समिद्धा काम-रूविणो ।
अहुणोव-वण्ण-संकासा,
भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा।।२७।।

दीर्घायु, ऋद्धि युत, दीप्ति कदम्बपूर्ण,-
इच्छा प्रधान धर रूप सुदेव सोहे।
पर्याप्त शोभन सु कान्ति समग्र सूर्य-
तेजस्विता झलकती जिनमें सदैव ।।२७।।

ताणि ठाणाणि गच्छंति,
सिक्खित्ता संजमं तवं ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा,
जे संति परिणिव्वुडा।।२८।।

हिंसा निवृत्त यति हो अथवा गृहस्थ,
आचार और तप की, कर साधना को-।
होके पवित्र जनिलाभ अलभ्य पाने-
पूर्वोक्त देव गति को लहते-विशिष्ट ।।२८।।

तेसिं सोच्चा सपुज्जाणं,
संजयाणं-वुसीमओ ।
ण संत-संति मरणंते,
सीलवंता बहुस्सुया।।२६।।

सत्पूरुषादि - परिपूजित - संयमाप्त-
आत्मार्थ साधक जितेन्द्रिय वृत्तवृन्द-।
श्रावी, सदा श्रुत विबोध-धनादियुक्त-
होते न भीत, मरणादिक काल में भी ।।२६।।

तुलिया विसेस-मादाय,
दया-धम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीएज्ज मेहावी,
तहाभूएण अप्पणा।।३०।।

साधार बाल अरु पंडित को तपस्वी-
तोले-विशेष निज बौद्धिक भावना से-।
वैशिष्ट्यपूर्ण मरणादि सकाम पाले
होवे दयार्द्र सहशील पवित्र रूप- ।।३०।।

तओ काले अभिप्पेए,
सड्ढी तालिस मंतिए ।
विणएज्ज लोमहरिसं,
भेयं देहस्स कंखए।।३१।।

आवे समै मरण का जिस भावना से
स्वीकार संयम किया अनुरूपता से ।
साधू समीप गुरु के स्थित, पीडना से-
होके अभीत, तनु-भेद करे सहर्ष ।।३१।।

अह कालम्मि संपत्ते,
आघायाय समुस्सयं ।
सकाम-मरणं मरइ,
तिण्ह-मण्णयरं मुणी।।३२।।

देहावसान छण की स्थिति में तपस्वी-
स्वीकार अन्यतम का, कर सद्गती को ।
होके समाधि परिपूर्ण सकाम मृत्यु-
से देह के पतन को, करता मनस्वी ।।३२।।
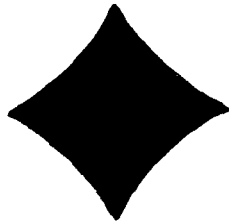
६ अध्ययन : क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय

अध्ययन—सूत्र संकेत

* प्रस्तुत छठे अध्ययन का नाम 'क्षुल्लक—निर्ग्रन्थीय' है। क्षुल्लक अर्थात् साधु के, निर्ग्रन्थत्व का प्रतिपादन जिस अध्ययन मे हो, वह क्षुल्लक—निर्ग्रन्थीय अध्ययन है।
* 'निर्ग्रन्थ' शब्द जैन आगमों मे यत्र—तत्र बहुत प्रयुक्त हुआ है। यह जैनधर्म का प्राचीन और प्रचलित शब्द है।
* स्थूल और सूक्ष्म अथवा बाह्म और आभ्यन्तर दोनो प्रकार के ग्रन्थों (परिग्रहवृत्ति रूप गांठो) का परित्याग करके क्षुल्लक अर्थात् साधु, निर्ग्रन्थ होता है। स्थूलग्रन्थ है—आवश्यकता से अतिरिक्त वस्तुओ को जोडकर या संग्रह करके रखना अथवा उन पदार्थों को बिना दिये लेना, अथवा स्वयं उन पदार्थों को तैयार करना या कराना। सूक्ष्मग्रन्थ है—अविद्या (तत्त्वज्ञान का अभाव), भ्रान्त मान्यताएँ, सांसारिक सम्बन्धों के प्रति आसक्ति, मोह, माया, कषाय, रागयुक्त परिचय (सम्पर्क) आदि, 'निर्ग्रन्थता' के लिए बाह्म और आभ्यन्तर दोनो प्रकार की ग्रन्थियों का त्याग करना आवश्यक है।
* प्रस्तुत अध्ययन मे यह बताया गया है कि निर्ग्रन्थत्व अगीकार करने पर भी, निर्ग्रन्थ—योग्य महाव्रतो एव यावज्जीव सामायिक की प्रतिज्ञा ग्रहण कर लेने पर भी किस—किस रूप में, कहॉ—कहॉ से, किस प्रकार से ये ग्रन्थियॉ—गाठें पुन. उभर सकती है और इनसे बचना साधु के लिए क्यो आवश्यक है ?
* इसीलिए इस अध्ययन मे सर्वप्रथम अविद्या को 'ग्रन्थ' का मूल स्रोत मान कर उसको समस्त दु खो एवं पापो की जड़ बताया है। अविद्याजनित मिथ्यामान्यताओ से बचने का निर्देश किया गया।
* तत्पश्चात् सत्यदृष्टि से आत्मौपम्य एवं मैत्रीभाव से समस्त प्राणियों को देखकर हिसा, अदत्तादान, परिग्रह आदि ग्रन्थों से दूर रहने का निर्देश किया गया है।

६. क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय

जावंत-ऽविज्जा पुरिसा,
सव्वे ते दुक्ख संभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा,
संसारम्मि अणंतए।।१।।

जो अज्ञ हैं, पुरुष वे दुख दैन्यकारी-
कर्त्तव्य मूढ़तर अन्त विहीन रूप-।
उद्विग्न कान्ति लहते न, कदापि तीव्र-
संसार सागर निमज्जित नित्य होते ।।१।

समिक्ख पंडिए तम्हा,
पास-जाइपहे बहू ।
अप्पणा सच्च-मेसेज्जा,
मित्तिं भूएसु कप्पए।।२।।

कर्त्तव्य है-विबुध का विधि से समग्र-
मोहादि कामचय को तज दें अवश्य-।
पूरा समीक्षण करे, शुभ-सत्य खोजे-
सम्पूर्ण जीव-पर शाश्वत मित्रता हो ।।२।

माया पिया ण्हुसा भाया,
भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
णालं ते मम ताणाए,
लुप्पन्तस्स सकम्मुणा।।३।।

क्या हैं समर्थ ? कृतकर्म-विलुप्तता में
माता, पिता, सतत पुत्र-वधू व भाई-।
ना आत्मजादि परिरक्षणशील होते-
ये सोच के विरत हो, सृति से तपस्वी ।।३।

एयमट्ठं सपेहाए,
पासे समिय-दंसणे ।
छिंदे गेहिं सिणेहं च,
ण कंखे पुव्व-संथव्वं।।४।।

जो हैं यथार्थ परिदर्शनशील-साधु-
स्वातन्त्र्य-बुद्धि बल से जग वस्तु धर्म-।
देखें, प्रसक्ति अरु नेह करे विछिन्न-
जो पूर्व-संस्तुति रही, वह भी न चाहे ।।४।

गवासं मणि-कुण्डलं, पसवो दास-पोरुसं । सव्वमेयं चइत्ताणं, काम-रूवी भविस्ससि।।५।।	गौ और बैल अरु अश्वमणी व दास- दासी, सदा पशु तु कुण्डल पौरुषादि-। का त्यागशील परिसाधक अन्य लोक- में काम रूप बनता विबुधाकृती हो ।।५।।
थावरं जंगमं चेव, धणं-धन्नं उवक्खरं । पच्चमाणस्स कम्मेहिं, णालं दुक्खाउ मोयणे।।६।।	कर्मादि से, दुख विलीन विशेष साधु- को स्थावरादिजग जंगम रूप माया-। एवम् धनादिक सुधान्य उपस्करादि- भी दुःख से न परिमोचन में समर्थ ? ।।६।।
अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए । ण हणे पाणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए।।७।।	अध्यात्मपूर्ण सब जीव रहे यहाँ पै जीवादि को प्रिय लगे निज-जीवनादि । ये जान के भयद-बैर विमुक्त साधु- होवे न हिंसक, अकार्य कहीं कदापि ।।७।।
आयाणं णरयं दिस्स, णायएज्ज तणामवि । दोगुंछी अप्पणो पाए, दिण्णं भुंजेज्ज भोयणं।।८।।	जाने अदत्त नरकादिक के समान- लेवे न वस्तु तिनका बिन याचनादि-। संयाम से विरति के प्रति है जुगुप्सा- ले, पात्र में मुनि गृहस्थ दिये हुए को ।।८।।
इहमेगे उ मण्णंति, अप्पच्चक्खाय पावग ं। आयरियं विदित्ताणं, सव्व-दुक्खा विमुच्चइ।।९।।	संसार में कुछ मनुष्य य मानते हैं पापादि के त्यजन कार्य किये बिना ही-। तत्त्वार्थ बोध अथवा चरितादिकों के- प्रज्ञान मात्र लव से दुख मुक्तजीव ।।९।।
भणंता अकरेंता य, बंध-मोक्ख-पइण्णिणो । वाया-विरिय-मित्तेण, समासासेंति अप्पयं।।१०।।	जो बंध के अरु विमोचन के विचारों- की स्थापना नित करे, पर भिन्न-दृष्टि । सर्वत्र संयम विहीन सुबोधवादी- वागूवीर्य से निजक को करते विसासी ।।१०।।

ण चित्ता तायए भासा,
कुओ विज्जाणुसासणं ।
विसण्णा-पाव-कम्मेहिं,
बाला पंडिय-माणिणो।।११।।

भाषा अनेक विध रक्षक भी न होती-
विद्यानुशासन कहाँ करता सुरक्षा ?
मिथ्या प्रगल्भ जन की परिकल्पना है
वे लोक-मज्जित निमज्जित-पापकर्म ।।११।।

जे केइ सरीरे सत्ता,
वण्णे रूवे य सव्वसो ।
मणसा काय-वक्केणं,
सव्वे ते दुक्ख-सम्भवा।।१२।।

जो काय वाग् मनस से सब भाँतिरक्त-
कायादि वर्ण अरु रूप सदा प्रसक्त-।
मिथ्या प्रयत्न करते तमसाभिभूत-
निर्बोध नित्य अपने हित दुःखकारी ।।१२।।

आवण्णा दीह-मद्धाणं,
संसारम्मि अणंतए ।
तम्हा सव्व-दिसं पस्सं,
अप्पमत्तो परिव्वए।।१३।।

सीमा विहीन सृति में चरणादिकों को-
सोचे बिना, न धरना, हित मार्ग में हैं।
सर्वत्र सौम्य निज दृष्टि करे प्रसार-
औ अप्रमत्तपन से विचरे धरा पै ।।१३।।

बहिया उड्ढ-मादाय,
णावकंखे कयाइवि ।
पुव्व-कम्म-क्खयट्ठाए,
इमं देहं समुद्धरे।।१४।।

उर्ध्वत्व साधक करे निज लक्ष्य भव्य-
ना बाह्य वस्तु विषयों पर हो, अभीप्सा-।
पूर्व प्रकाम कृतकर्म विशेष नाश-
हेतुस्वकीय तनु धारणमान्यता हो ।।१४।।

विविच्च कम्मुणो हेउं,
कालकंखी परिव्वए ।
मायं पिंडस्स पाणस्स,
कडं लद्धूण भक्खए।।१५।।

कालज्ञ साधक सदा कृत कर्म हेतु-
मिथ्यात्व को तज, चरे जग में तपस्वी ।
निर्वाह हेतु अपने गृहवास से ही-
आहार का ग्रहण हो उचितानुरूप ।।१५।।

सण्णिहिं च ण कुविज्जा,
लेव-मायाए संजए ।
पक्खी-पत्तं समादाय,
णिरवेक्खो परिव्वए।।१६।।

संसाधु लेश भर संग्रह भी करे न
हो पक्षि के सम असंग्रहशील नित्य-।
पात्रादि लेकर चरे, विहरे तथैव-
निर्वाह हेतु परिसंग्रहहीन वृत्ति- ।।१६।।

एसणा-समिओ लज्जू,
गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं,
पिण्ड-वायं गवेसए।।१७।।

आत्मैषणा-समिति युक्त सदैव साधे
लज्जा-प्रधान विहरे, जनवास देश ।
हो अप्रमत्त निज भोजन हेतु-साधु
पिण्डादि की नित करे, सुख से गवेषा ।।१७।।

एवं से उदाहु अणुत्तर-णाणी,
अणुत्तर-दंसी अणुत्तर-णाणं दंसण-धर।
अरहा णायपुत्ते भगवं
वेसालिए वियाहिए।।१८।।

ऐसा अनुत्तर सुबोध तथैव दर्शी
धर्ता विबोध कृत चारु चरित्रशाली ।
तत्त्वज्ञ ने वर निरूपण को किया है
वैशालि धीर विभु वीर महाप्रभू ने ।।१८।।
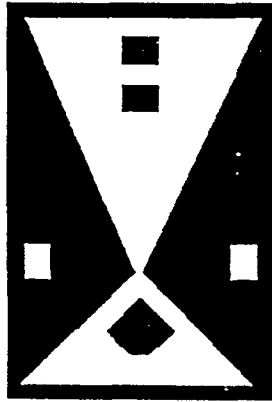
७ अध्ययन : उरभ्रीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन के प्रारम्भ में कथित 'उरभ्र' (मेंढे) के दृष्टान्त के आधार से प्रस्तुत अध्ययन का नाम उरभ्रीय है।
- श्रमणसंस्कृति का मूलधार कामभोगो के प्रति अनासक्ति है। जो व्यक्ति पीछे परिणाम में छिपे हुए महादु:खों का विचार नहीं करता, केवल वर्तमानदर्शी बन कर मनुष्यजन्म को खो देता है, वह मनुष्यभवरूपी मूलधन को तो गंवाता ही है, उससे पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप हो सकने वाले लाभ से भी हाथ धो बैठता है; प्रत्युत अज्ञान एवं मोह के वश विषयसुखो में तल्लीन एवं हिंसादि पापकर्मों मे रत होकर मूलधन के नाश से नरक और तिर्यञ्च गति का मेहमान बनता है। इसके विपरीत जो दूरदर्शी बन कर क्षणिक विषयभोगो की आसक्ति में नही फसता, अणुव्रतो या महाव्रतों का पालन करता है, संयम, नियम, तप में रत और परीषहादिसहिष्णु है, वह देवगति को प्राप्त करता है। अत: गहन तत्त्वों को समझाने के लिए इस अध्ययन में पांच दृष्टान्त प्रस्तुत किये गए है।
- जो व्यक्ति मनोज्ञ विषयसुखों में आसक्त होकर हिंसा, झूठ, चोरी, लूटपाट, ठगी, स्त्री और अन्य विषयों में गृद्धि, महारम्भ, महापरिग्रह, सुरा–मांससेवन, परदमन करता है, अपने शरीर को ही मोटाताजा बनाने में लगा रहता है, उसकी कामभोगसक्ति अन्तिम समय में पश्चात्तापकारिणी और घोर कर्मबन्ध के कारण नरक में ले जाने वाली होती है।
- दिव्य कामभोगों के समक्ष मानवीय कामभोग तुच्छ और अल्पकालिक हैं। दिव्य कामभोग समुद्र के अपरिमेय जल के समान हैं, जबकि मानवीय कामभोग कुश की नोक पर टिके हुए जलबिन्दु के समान अल्प एवं क्षणिक हैं।
- अन्तिम गाथाओं में कामभोगो से अनिवृत्ति ओर निवृत्ति का परिणाम तथा वालभाव को छोडकर पण्डितभाव को अपनाने का निर्देश किया गया है।

हिंसे बाले मुसावाई,
अद्धाणंमि विलोवए ।
अण्ण-दत्तहरे तेणे,
माई कण्णु हरे सढे।।५।।

अज्ञान हिंसक मृषा वचनाभिभाषी-
लुण्ठाक चोर परवस्तु सदाभिलाषी-।
माया-प्रपंच रचना पटु धूर्त्त नीच-
द्रव्यापहार विषयांचित काम-कामी ।।५।।

इत्थी-विसय-गिद्धे य,
महारंभ - परिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं,
परिवूढे परं-दमे।।६।।

स्त्री काम सक्त, सततं विषयाभिलाषी-,
आरम्भ में रत, परिग्रह-पूर्णधारी-।
मांसादिमस्त, मदिरा, ममता विशिष्ट-
शक्ति प्रपूर्ण जन लोक परापकारी ।।६।।

अय-कक्कर भोई य,
तुंदिल्ले चिय-लोहिए ।
आउयं णरए कंखे,
जहा एसं व एलए।।७।।

जैसे अजादि धन की अतिथेय-गेही
आतिथ्य हेतु करता मन में समीहा-।
मांसादि भक्षक महा उदरंभरी भी-
प्राणी तथैव करता नरक प्रतीक्षा ।।७।।

आसणं सयणं जाणं,
वित्तं कामे य भुंजिया ।
दुस्साहडं धणं हिच्चा,
बहुं संचिणिया रयं।।८।।

शय्या सुआसन तथा धन वाहनादि-
कामादि भोगकर दुःख सहे विशिष्ट-।
देके तिलांजलि उपार्जित वित्त को भी-
कर्म प्रवृत्त नित शोक लहे मुमुर्षु ।।८।।

तओ कम्मगुरू जंतू,
पच्चुप्पण्ण-परायणे ।
अयव्व आगया-एसे,
मरणंतम्मि सोयइ।।९।।

वे विद्यमान परिदर्शन में विलीन-
कर्मादि गौरव-विशिष्ट भवप्रपीन-।
सोचे शरीर, परिहान समै समग्र-
आतिथ्य हेतु अज जो लहता अवस्था ।।९।।

तओ आउ-परिक्खीणे,
चुया देहा विहिंसगा ।
आसुरीयं दिसं बाला,
गच्छंति अवसा तमं।।१०।।

नाना प्रकार नित हिसक अज्ञजीव-
आयुष्य नाश पर छोड़ शरीर नैज-।
कर्मादि से विवश हो तिमिराभिभूत-
गन्तव्य नर्क-गति में, पड़ता अवश्य ।।१०।।

जहा कागिणिए हेउं,
सहस्सं हारए णरो ।
अपत्थं अम्बगं भोच्चा,
राया रज्जं तु हारए।।११।।

अल्पाल्प लाभ हित मूढ मनुष्य जैसे-
कार्षापणादिक गँवा कर दुःख पाता-।
राजा अपथ्य फल आम्र विभोजना से-
है हारता, सुखद सुन्दर राज्य को भी ।।११।।

एवं माणुस्सगा कामा,
देव कामाण अंतिए ।
सहस्स-गुणिया भुज्जो,
आउं कामा य दिव्विया।।१२।।

पूरे मनुष्य तुलनाधिक काम-भोग-
देवत्व के परम भव्य कहे गये हैं।
होती मनुष्यगत आयु गुणाधिकों से-
देवत्व कृत्य अरु आयु विशिष्ट रूप ।।१२।।

अणेग-वासा-ण उया,
जा सा पण्णवओ ठिई ।
जाइं जीयंति दुम्मेहा,
ऊणे-वास-सयाउए।।१३।।

प्रज्ञा-प्रधान परिसाधक की द्युलोक-
में भी अनन्त युत वर्ष थिती कही है ।
संबुद्ध हो नर विमूढ़ शतायु में भी-
देवाप्त सौख्य अपना करता विलुप्त ।।१३।।

जहा य तिण्णि वाणिया,
मूलं घेत्तूण णिग्गया ।
एगोऽत्थ लहइ लाभं,
एगो मूलेण आगओ।।१४।।

वाणिज्य हेतु जन तीन चले समूल-
ले वित्त, तो प्रथम ने अति लाभ पाया ।
आया द्वितीय, निज मूल तथैव लेके-
आया, तृतीय जन मूलविहीन होके ।।१४।।

एगो मूलं वि हारित्ता,
आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा,
एवं धम्मे वियाणह।।१५।।

धर्मादि के विषय में इस भाँति जाने
औपम्य-भाव परिबोधक है यहाँ का ।
सम्यक् विबोध चय से व्यवहारकारी
पाता, सुलाभ यह निश्चय लोक में है ।।१५।।

माणुसत्तं भवे मूलं,
लाभो देवगई भवे ।
मूल-च्छेएण जीवाणं,
णरग-तिरिक्खत्तणं धुवं।।१६।।

मानुष्य मूल-धन, देव गती सुलाभ-
नारत्व ही भव निधान पुनः समान ।
उच्छेद मूल पर नारक और अन्य-
तिर्यंच की गति उसे मिलती अवश्य ।।१६।।

दुहओ गई बालस्स,
आवइ वह-मूलिया ।
देवत्तं माणुसत्तं च,
जं जिए लोलयासढे।।१७।।

है अज्ञ जीव गति दो, विधि से निदिष्ट
आद्या सुनारक परा तिरयंच रूप ।
होता वहाँ विविध घातक मूल कष्ट
देवत्व और मनुजत्व विनष्टपूर्व ।।१७।।

तओ जिए सइं होइ,
दुविहं दुग्गइं गए ।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा,
अद्धाए सुचिरायवि।।१८।।

देवादि की मनुज की गति हारते हैं
वे दुर्गती नरक की पशु योनि-पाते ।
प्राणी नहीं निकलते उन योनियों-से-
पाते न, मानव सुदेव गती विशिष्ट ।।१८।।

एवं जियं संपेहाए,
तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पवेसंति,
माणुस्सं जोणि-मेंति जे।।१९।।

हारे हुए सकल चित्त सुबाल जीव-
वो देख के उभयथा करके समीक्षा-।
आते मनुष्य गति में यदि मूल गाही
प्रत्यागमी धन समृद्ध वणिक् समान ।।१९।।

वेमायाहिं सिक्खाहिं,
जे णरा गिहि-सुव्वया ।
उवेंति माणुसं जोणिं,
कम्म ·सच्चा हु पाणिणो।।२०।।

जो सुव्रती विविध शिक्षण से गृहस्थ-
पाता, मनुष्य गति को इसमें न शंका ।
प्राणी सदा करम सत्य कहा हुआ है
पाता अवश्य कृत कर्म फलादिकों को ।।२०।।

जेसिं तु विउला सिक्खा,
मूलियं ते अइच्छिया ।
सीलवंता सवीसेसा,
अद्दीणा जंति देवयं।।२१।।

शिक्षा समग्र परिमाण विशिष्ट रूप-
शीलादियुक्त गुण से, रहता मनस्वी-।
दीनादिमुक्त वह मूल धनादिशाली
देवत्व में, जनमता मनुजत्व धारी ।।२१।।

एव-मद्दीणवं भिक्खू,
अगारिं च वियाणिया ।
कहण्णु जिच्च-मेलिक्खं,
जिच्चा माणो ण संविदे।।२२।।

जो दैन्यरिक्त सु-पराक्रम-शील साधु-
एवम् गृहस्थ जन लाभ विशेष पाके-।
कैसे विवेक रत उक्त सुलाभ हारे ?
हारे कमी, विविध ताप सुतप्त होता ।।२२।।

जहा कुसग्गे उदगं,
समुद्देण समं-मिणे ।
एवं माणुसग्गा कामा,
देव-कामाण अंतिए।।२३।।

है काम तुच्छ, मनुजादिक का अनल्प
देवादि काम परिभोग विशिष्ट रूप ।
जैसे समुद्र जल ओघ विराजमान-
होता न तुल्य उसके कुशवारि बिन्दु ।।२३।।

कुसग्गमेत्ता इमे कामा,
सण्णिरुद्धम्मि आउए ।
कस्स हेउं पुरा-काउं,
जोग-क्खेमं ण संविदे।।२४।।

अत्यल्प आयु, अरु काम कुशाग्र बिन्दु
अज्ञानि जीव किस कारण जानते भी-।
है भोग लिप्त भव पंक निमग्न पूर्ण
जाने नहीं, सुखद योग सुछेम को भी ।।२४।।

इह कामाणियट्टस्स,
अत्तट्ठे अवरज्झइ ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं,
जं भुज्जो परिभस्सई।।२५।।

कामादि सक्त नर के भव में सदैव
आत्मार्थ लाभ परिनष्ट समग्र होता ।
सन्मार्ग बोध सुनके तजता अवश्य
होता अशेष परिवंचित मोक्ष से भी ।।२५।।

इह काम-णियट्टस्स,
अत्तट्ठे णावरज्झइ ।
पूइदेह-णिरोहेणं,
भवे देवेत्ति मे सुयं।।२६।।

जो भी करे प्रखर काम सदा निवृत्ति
होता न आत्म हित है परिनष्ट किंचित् ।
औदारिकादि निज देह विलीन होता-
देवत्व लाभ लहता जिनदिष्ट भव्य ।।२६।।

इड्ढी जुई जसो वण्णो,
आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु,
तत्थ से उववज्जई।।२७।।

देवत्व छोड़ वह जीव, विशेष ऋद्धि-
एवम् प्रकाश यश, वर्ण, तथैव आयु-।
पाता सुखादि धन धान्य विशिष्ट लाभ-
उत्पन्न मानव महाकुल में सुहाता ।।२७।।

बालस्स पस्स बालत्तं,
अहम्मं पडिवज्जिया ।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे,
णरए उववज्जई।।२८।।

अज्ञान बालजन का सुविशेष देखो-
धारे, अधर्म अरु धर्म सदैव छोड़े ।
तद्धेतु से नरक का बनता पुजारी
कामादि से नरक की स्थिति लब्ध होती ।।२८।।

दुहओ गई बालस्स,
आवइ वह-मूलिया ।
देवत्तं माणुसत्तं च,
जं जिए लोलयासढे।।१७।।

है अज्ञ जीव गति दो, विधि से निदिष्ट
आद्या सुनारक परा तिरयंच रूप ।
होता वहाँ विविध घातक मूल कष्ट
देवत्व और मनुजत्व विनष्टपूर्व ।।१७।।

तओ जिए सइं होइ,
दुविहं दुग्गइं गए ।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा,
अद्धाए सुचिरायवि।।१८।।

देवादि की मनुज की गति हारते हैं
वे दुर्गती नरक की पशु योनि-पाते ।
प्राणी नहीं निकलते उन योनियों-से-
पाते न, मानव सुदेव गती विशिष्ट ।।१८।।

एवं जियं संपेहाए,
तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पवेसंति,
माणुस्सं जोणि-मेंति जे।।१९।।

हारे हुए सकल चित्त सुबाल जीव-
वो देख के उभयथा करके समीक्षा-।
आते मनुष्य गति में यदि मूल गाही
प्रत्यागमी धन समृद्ध वणिक् समान ।।१९।।

वेमायाहिं सिक्खाहिं,
जे णरा गिहि-सुव्वया ।
उवेंति माणुसं जोणिं,
कम्म सच्चा हु पाणिणो।।२०।।

जो सुव्रती विविध शिक्षण से गृहस्थ-
पाता, मनुष्य गति को इसमें न शंका ।
प्राणी सदा करम सत्य कहा हुआ है
पाता अवश्य कृत कर्म फलादिकों को ।।२०।।

जेसिं तु विउला सिक्खा,
मूलियं ते अइच्छिया ।
सीलवंता सवीसेसा,
अद्दीणा जंति देवयं।।२१।।

शिक्षा समग्र परिमाण विशिष्ट रूप-
शीलादियुक्त गुण से, रहता मनस्वी-।
दीनादिमुक्त वह मूल धनादिशाली
देवत्व में, जनमता मनुजत्व धारी ।।२१।।

एव-मद्दीणवं भिक्खू,
अगारिं च वियाणिया ।
कहण्णु जिच्च-मेलिक्खं,
जिच्चा माणो ण संविदे।।२२।।

जो दैन्यरिक्त सु-पराक्रम-शील साधु-
एवम् गृहस्थ जन लाभ विशेष पाके-।
कैसे विवेक रत उक्त सुलाभ हारे ?
हारे कमी, विविध ताप सुतप्त होता ।।२२।।

जहा कुसग्गे उदगं,
समुद्देण समं-मिणे ।
एवं माणुसग्गा कामा,
देव-कामाण अंतिए।।२३।।

है काम तुच्छ, मनुजादिक का अनल्प
देवादि काम परिभोग विशिष्ट रूप ।
जैसे समुद्र जल ओघ विराजमान-
होता न तुल्य उसके कुशवारि बिन्दु ।।२३।।

कुसग्गमेत्ता इमे कामा,
सण्णिरुद्धम्मि आउए ।
कस्स हेउं पुरा-काउं,
जोग-क्खेमं ण संविदे।।२४।।

अत्यल्प आयु, अरु काम कुशाग्र बिन्दु
अज्ञानि जीव किस कारण जानते भी-।
है भोग लिप्त भव पंक निमग्न पूर्ण
जाने नहीं, सुखद योग सुछेम को भी ।।२४।।

इह कामाणियट्टस्स,
अत्तट्ठे अवरज्झइ ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं,
जं भुज्जो परिभस्सई।।२५।।

कामादि सक्त नर के भव में सदैव
आत्मार्थ लाभ परिनष्ट समग्र होता ।
सन्मार्ग बोध सुनके तजता अवश्य
होता अशेष परिवंचित मोक्ष से भी ।।२५।।

इह काम-णियट्टस्स,
अत्तट्ठे णावरज्झइ ।
पूइदेह-णिरोहेणं,
भवे देवेत्ति मे सुयं।।२६।।

जो भी करे प्रखर काम सदा निवृत्ति
होता न आत्म हित है परिनष्ट किंचित् ।
औदारिकादि निज देह विलीन होता-
देवत्व लाभ लहता जिनदिष्ट भव्य ।।२६।।

इड्ढी जुई जसो वण्णो,
आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु,
तत्थ से उववज्जई।।२७।।

देवत्व छोड़ वह जीव, विशेष ऋद्धि-
एवम् प्रकाश यश, वर्ण, तथैव आयु-।
पाता सुखादि धन धान्य विशिष्ट लाभ-
उत्पन्न मानव महाकुल में सुहाता ।।२७।।

बालस्स पस्स बालत्तं,
अहम्मं पडिवज्जिया ।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे,
णरए उववज्जई।।२८।।

अज्ञान बालजन का सुविशेष देखो-
धारे, अधर्म अरु धर्म सदैव छोड़े ।
तद्धेतु से नरक का बनता पुजारी
कामादि से नरक की स्थिति लब्ध होती ।।२८।।

धीरस्स पस्स धीरत्तं,
सव्व-धम्माणु-वत्तिणो ।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे,
देवेसु उववज्जई।।२६।।

सम्पूर्ण-धर्म-अनुवर्त्तनशील-धीर-
द्रष्टव्य धैर्य परिलक्षित है विशेष ।
छोड़े अधर्म, अरु धर्म सरूप पा के-
उत्पत्ति देव-गण में, वह जीव पाता ।।२६।।

तुलियाण बालभावं,
अबालं चेव पंडिए ।
चइऊण बालभावं,
अबालं सेवए मुणी।।३०।।

पांडित्य पूर्ण मुनि बाल अबाल-भाव-
के सर्व दोष गुण की करके-समीक्षा ।
वो बाल भाव तज के, लहता अबाल-
लब्धव्य लब्ध करता, ध्रुव साधनार्थी ।।३०।।

८ अध्ययन : कापिलीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'कापिलीय' है। बृहद्वृत्ति के अनुसार–मुनि कपिल के द्वारा यह अध्ययन गाया गया था, इसलिए इसे 'कापिलीय' कहा जाता है।
- अनुश्रुति ऐसी है कि एक बार कपिल मुनि श्रावस्ती से विहार करके जा रहे थे। मार्ग मे महारण्य मे उन्हे बलभद्र आदि चोरो ने घेर लिया। चोरो के अधिपति ने इन्हे श्रमण समझ कर कहा–'श्रमण' । कुछ गाओ।' कपिल मुनि ने उन्हें सुलभबोधि समझ कर गायन प्रारम्भ किया–'अधुवे असासयमि. ....।' यह ध्रुवपद था। प्रस्तुत समग्र अध्ययन मे प्रथम जिज्ञासा का उत्थान एवं तत्पश्चात् कपिल मुनि का ही उपदेश है।
- प्रसंगवश इस अध्ययन मे पूर्वसम्बन्धों के प्रति आसक्तित्याग, ग्रन्थी, कलह, कामभोग, जीवहिंसा, रसलोलुपता के त्याग का, एषणाशुद्ध प्राप्त आहारसेवन का तथा लक्षणादि शास्त्र–प्रयोग, लोभवृत्ति एवं स्त्री–आसक्ति के त्याग का तथैव संसार की असारता का विशद उपदेश दिया गया है। लोभवृत्ति के विषय में तो कपिल मुनि ने संक्षेप में स्वानुभव प्रकाशित किया है जो कथा रूप मे उल्लिखित है। कथा शिक्षाप्रद और रोचक है, कथा का अंतिम सारांश इस प्रकार है।
- एक बार श्रावस्ती मे विशाल जनमहोत्सव होने वाला था। दासी की प्रबल इच्छा थी उसमें जाने की। परन्तु कपिल के पास महोत्सव–योग्य कुछ भी धन या साधन नही था। दासी ने उसे बताया कि अधीर मत बनो! इस नगरी का धनसेठ प्रातःकाल सर्वप्रथम बधाई देने वाले को दो माशा सोना देता है। कपिल सबसे पहले पहुचने के इरादे से मध्यरात्रि मे ही घर मे चल पडा। नगररक्षको ने उसे चोर समझकर पकड लिया और प्रसेनजित राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा ने उससे रात्रि में अकेले घूमने का कारण पूछा तो उसने स्पष्ट बता दिया। राजा ने कपिल की

सरलता और स्पष्टवादिता पर प्रसन्न हो कर उसे मनचाहा मांगने के लिए कहा। कपिल विचार करने के लिए कुछ समय लेकर निकटवर्ती अशोकवाटिका में चला गया। कपिल का चिन्तन–प्रवाह दो माशा सोने से क्रमशः आगे बढते–बढते करोडो स्वर्णमुद्राओं तक पहुंच गया। फिर भी सन्तोष नहीं था। वह कुछ निश्चित नही कर पा रहा था। अन्त में उसकी चिन्तनधारा ने नया मोड़ लिया। लोभ की पराकाष्ठा सन्तोष में परिणत हो गई। जातिस्मरणज्ञान पाकर वह स्वयंबुद्ध हो गया। मुख पर त्याग का तेज लिए वह राजा के पास पहुंचा और बोला–'राजन्! अब आपसे कुछ भी लेने की आकांक्षा नहीं रही। जो पाना था, मैने पा लिया; संतोष, त्याग और अनाकांक्षा ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया।' राजा के सान्निध्य से निर्ग्रन्थ होकर वह दूर वन में चला गया। साधना चलती रही। 6 मास तक वे मुनि छद्मस्थ अवस्था में रहे।

- कपिल मुनि का चोरों को दिया गया गेय उपदेश ही इस अध्ययन में सकलित है।

८. कापिलीय

अधुवे असासयम्मि,
संसारम्मि दुक्ख पउराए ।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं,
जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा?।।१।।

अध्रौव्य शाश्वत विहीन दुःखादि रूप
संसार में सफल कर्म किसे कहा है ।
होवे न दुर्गति, मिले, शुभ धर्म बीज-
ऐसे सुधर्म धन की, उचिता समीहा ।।१।।

विजहित्तु पुव्व संजोगं,
ण सिणेहं कहिं वि कुव्वेज्जा ।
असिणेह-सिणेह-करेहिं,
दोस पओसेहिं मुच्चए भिक्खू।।२।।

सम्बन्ध सर्व परिहान करे तपस्वी
स्नेहानुषक्त जन से अति दूर होवे ।
दोष प्रदोष सबसे परिमुक्त होता-
तो आत्मशुद्ध सुख साधन युक्तता से ।।२।।

तो णाण-दंसण-समग्गो,
हिय-णिस्सेसाय सव्व-जीवाणं ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए,
भासइ मुणिवरो विगय-मोहो।।३।।

पूर्णज्ञ सर्व परिदर्शन युक्त, मोह-
मुक्त, प्रमुक्त, कपिलाख्य मुनी विशेष-।
ने सर्व जीव हित साधन के लिये ही-
संसार-मुक्ति-पथ में घृति से कहा था ।।३।।

सव्वं गन्थं कलहं च,
विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ।
सव्वेसु काम-जाएसु,
पासमाणो ण लिप्पई ताई।।४।।

कर्मादि बन्धन निमित्त परिग्रहों को-
त्यागे सदा, कलह के विष बीज को भी ।
है काम भोग भव का ध्रुव सर्व हेतु-
होवे, न लिप्त उसमें मुनि आत्म बोधी ।।४।।

सरलता और स्पष्टवादिता पर प्रसन्न हो कर उसे मनचाहा मागने के लिए कहा। कपिल विचार करने के लिए कुछ समय लेकर निकटवर्ती अशोकवाटिका मे चला गया। कपिल का चिन्तन–प्रवाह दो माशा सोने से क्रमशः आगे बढ़ते–बढते करोडो स्वर्णमुद्राओं तक पहुंच गया। फिर भी सन्तोष नहीं था। वह कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा था। अन्त में उसकी चिन्तनधारा ने नया मोड़ लिया। लोभ की पराकाष्ठा सन्तोष में परिणत हो गई। जातिस्मरणज्ञान पाकर वह स्वयंबुद्ध हो गया। मुख पर त्याग का तेज लिए वह राजा के पास पहुंचा और बोला–'राजन्! अब आपसे कुछ भी लेने की आकांक्षा नहीं रही। जो पाना था, मैंने पा लिया; संतोष, त्याग और अनाकांक्षा ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया।' राजा के सान्निध्य से निर्ग्रन्थ होकर वह दूर वन में चला गया। साधना चलती रही। 6 मास तक वे मुनि छद्मस्थ अवस्था में रहे।

- कपिल मुनि का चोरों को दिया गया गेय उपदेश ही इस अध्ययन में संकलित है।

८. कापिलीय

अधुवे असासयम्मि,
संसारम्मि दुक्ख पउराए ।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं,
जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा?।।१।।

अध्रौव्य शाश्वत विहीन दुःखादि रूप
संसार में सफल कर्म किसे कहा है ।
होवे न दुर्गति, मिले, शुभ धर्म बीज-
ऐसे सुधर्म धन की, उचिता समीहा ।।१।।

विजहित्तु पुव्व संजोगं,
ण सिणेहं कहिं वि कुव्वेज्जा ।
असिणेह-सिणेह-करेहिं,
दोस पओसेहिं मुच्चए भिक्खू।।२।।

सम्बन्ध सर्व परिहान करे तपस्वी
स्नेहानुषक्त जन से अति दूर होवे ।
दोष प्रदोष सबसे परिमुक्त होता-
तो आत्मशुद्ध सुख साधन युक्तता से ।।

तो णाण-दंसण-समग्गो,
हिय-णिस्सेसाय सव्व-जीवाणं ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए,
भासइ मुणिवरो विगय-मोहो।।३।।

पूर्णज्ञ सर्व परिदर्शन युक्त, मोह-
मुक्त, प्रमुक्त, कपिलाख्य मुनी विशेष- ।।१४।।
ने सर्व जीव हित साधन के लिये ही-
संसार-मुक्ति-पथ में धृति से कहा [illegible] से-
[illegible] मीं ।

सव्वं गन्थं कलहं च,
विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ।
सव्वेसु काम-जाएसु,
पासमाणो ण लिप्पई ताई।।४।।

कर्मादि बन्धन निमित्त परिग्रहों [illegible]ता से-
त्यागे सदा, कलह के विष बीज [illegible]
है काम भोग भव का ध्रुव [illegible]
होवे, न लिप्त उसमें मुनि विशेषपूर्ण-

भोगा-मिस-दोस-विसण्णे,
हिय-णिस्सेयसबुद्धि-वोच्चत्थे ।
बाले य मंदिए मूढे,
बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि।।५।।

आसक्तिपूर्ण अरु आमिष रूप भोग-
में मग्न, आत्महित मोक्ष विरुद्ध बुद्धि ।
पूर्णाज्ञ मन्द अरु मूढ कुकर्मबद्ध-
जैसे बधे नित सलेष्म विपन्न माखी ।।५।।

दु-प्परिच्चया इमे कामा,
णो सुजहा अधीर-पुरिसेहिं ।
अह संति सुव्वया साहू,
जे तरंति अतरं वणिया व।।६।।

है काम दुष्कर अपार निजात हेतु-
ना छोड़ना सरल, किन्तु तरे तपस्वी ।
अध्यात्म साधक सुदुस्तर काम-भोग-
जैसे तिरे, वणिक पोत भयानकाब्धि ।।६।।

समणा मु एगे वयमाणा,
पाणवहं मिया अयाणंता ।
मंदा णरयं गच्छंति,
बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं।।७।।

आपाततः स्वयम को मुनि मानते हैं
अज्ञान युक्त पशु से विनिपातनादि-।
को है नहीं समझते पर मन्द बुद्धि-
होता सदा निरयपात अवश्यमेव ।।७।।

ण हु पाणवहं अणुजाणे,
मुच्चेज्ज कयाइ सव्व-दुक्खाणं ।
एव-मायरिएहिं अक्खायं,
जेहिं इमो साहु-धम्मो पण्णत्तो।।८।।

साधुत्व धर्म विनिदेशक आर्य पुत्रो-
ने है कहा, नित वधाद्यनुमोदना से-।
दुःखादि ताप विनिवृत्ति कभी न होती
संसार सागर निमज्जन सर्वथा है ।।८।।

पाणे य णाइवाएज्जा,
से समिइ त्ति वुच्चइ ताई ।
तओ से पावयं कम्मं,
णिज्जाइ उदगं व थलाओ।।९।।

जो जीव हिंस न, अकार्य करे कभी न-
सम्यक्-प्रवृत्ति युत साधक है कहाता ।
पापादिकर्म उसके सब दूर होते-
जैसे कि उच्च थल से, जल दूर जाता ।।९।।

जग-णिस्सिएहिं भूएहिं,
तस-णामेहिं थावरेहिं च ।
णो तेसि-मारंभे दंडं,
मणसा वयसा कायसा चेव।।१०।।

संसार में त्रस व थावर नाम जीव-
होते सदैव, मन वाचन काय रूप-।
से दण्ड का नहिं करे, इन पै प्रयोग-
होता अहिंसक वही, तपसाभिभूत ।।१०।।

सुद्धेसणाओ णच्चाणं,
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए घासमेसेज्जा,
रस-गिद्धे ण सिया भिक्खाए।।११।।

शुद्धैषणा समझ के अनुरूप होके-
संस्थापना नित करे, परिपूर्णता से-।
भिक्षार्थि संयमन के हित भोजनादि-
की एषणा नित लहे, रस गृद्ध हो, न ।।११।।

पंताणि चेव सेवेज्जा,
सीय पिंडं पुराण-कुम्मासं ।
अदु बुक्कसं पुलागं वा,
जवणट्ठाए णिसेवए मंथुं।।१२।।

भिक्षु स्वजीवन सुयापन के लिये ही-
प्रायः लहे सुरसहीन व शीत रुक्ष-।
कल्पास बुक्कस पुलाक व मन्थु बेर-
के चूर्ण को ग्रहण ही करता तपस्वी ।।१२।।

जे लक्खणं च सुविणं च,
अंग विज्जं च जे पउंजंति ।
ण हु ते समणा वुच्चंति,
एवं आयरिएहिं अक्खायं।।१३।।

जो लोक लक्षण समुद्र व अंग विद्या-
का संप्रयोग करता वह साधु है न ।
संसारचक्र पतनोन्मुख है यथार्थ
आचार्यवृन्द परिदिष्ट किया गया है ।।१३।।

इह जीवियं अणियमेत्ता,
पब्भट्ठा समाहि-जोएहिं ।
ते काम-भोग-रस-गिद्धा,
उववज्जंति आसुरे काए।।१४।।

तत्काल जीवन नियन्त्रणहीन होके-
जो साधनागत महापथ से गिरे हैं ।
वे काम भोग रससक्त बने हुए हैं
उत्पत्ति से असुर काय अवश्य भावी ।।१४।।

तत्तोऽवि य उव्वट्टित्ता,
संसारं बहुं अणुपरियडंति ।
बहु-कम्म-लेव-लित्ताणं,
बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं।।१५।।

भोगाद्यनन्तर विनिर्गत हो वहाँ से-
संसारचक्र लहते बहु कालकर्मी ।
स्नेहाक्त कर्म परिलिप्त सहेतुता से-
संबोधि धर्म अति दुर्लभ नित्य होता ।।१५।।

कसिणं वि जो इमं लोयं,
पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से,
इइ दुप्पूरए इमे आया।।१६।।

होवे धनादि अरु धान्य विशेषपूर्ण-
देवे समग्र यदि विश्व किसी गृही को-।
सन्तुष्टि को न लहता, वह जीव सत्य
दूष्पूर है, यह यहाँ परिलोभ भाव ।।१६।।

भोगा-मिस-दोस-विसण्णे,
हिय-णिस्सेयसबुद्धि-वोच्चत्थे ।
बाले य मंदिए मूढे,
बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि।।५।।

आसक्तिपूर्ण अरु आमिष रूप भोग-
में मग्न, आत्महित मोक्ष विरुद्ध बुद्धि ।
पूर्णाज्ञ मन्द अरु मूढ कुकर्मबद्ध-
जैसे बधे नित सलेष्म विपन्न माखी ।।५

दु-प्परिच्चया इमे कामा,
णो सुजहा अधीर-पुरिसेहिं ।
अह संति सुव्वया साहू,
जे तरंति अतरं वणिया व।।६।।

है काम दुष्कर अपार निजात हेतु-
ना छोड़ना सरल, किन्तु तरे तपस्वी ।
अध्यात्म साधक सुदुस्तर काम-भोग-
जैसे तिरे, वणिक पोत भयानकाब्धि ।।६।

समणा मु एगे वयमाणा,
पाणवहं मिया अयाणंता ।
मंदा नरयं गच्छंति,
बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं।।७।।

आपाततः स्वयम को मुनि मानते हैं
अज्ञान युक्त पशु से विनिपातनादि-।
को है नहीं समझते पर मन्द बुद्धि-
होता सदा निरयपात अवश्यमेव ।।७।

ण हु पाणवहं अणुजाणे,
मुच्चेज्ज कयाइ सव्व-दुक्खाणं ।
एव-मायरिएहिं अक्खायं,
जेहिं इमो साहु-धम्मो पण्णत्तो।।८।।

साधुत्व धर्म विनिदेशक आर्य पुत्रो-
ने है कहा, नित वधाद्यनुमोदना से-।
दुःखादि ताप विनिवृत्ति कभी न होती
संसार सागर निमज्जन सर्वथा है ।।८।।

पाणे य णाइवाएज्जा,
से समिइ त्ति वुच्चइ ताई ।
तओ से पावयं कम्मं,
णिज्जाइ उदगं व थलाओ।।९।।

जो जीव हिंस न, अकार्य करे कभी न-
सम्यक्-प्रवृत्ति युत साधक है कहाता ।
पापादिकर्म उसके सब दूर होते-
जैसे कि उच्च थल से, जल दूर जाता ।।९।।

जग-णिस्सिएहिं भूएहिं,
तस-णामेहिं थावरेहिं च ।
णो तेसि-मारंभे दंडं,
मणसा वयसा कायसा चेव।।१०।।

संसार में त्रस व थावर नाम जीव-
होते सदैव, मन वाचन काय रूप-।
से दण्ड का नहिं करे, इन पे प्रयोग-
होता अहिंसक वही, तपसाभिभूत ।।१०।।

सुद्धेसणाओ णच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं । जायाए घासमेसेज्जा, रस-गिद्धे ण सिया भिक्खाए।।११।।	शुद्धैषणा समझ के अनुरूप होके- संस्थापना नित करे, परिपूर्णता से-। भिक्षार्थि संयमन के हित भोजनादि- की एषणा नित लहे, रस गृद्ध हो, न ।।११।।
पंताणि चेव सेवेज्जा, सीय पिंडं पुराण-कुम्मासं । अदु बुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथुं।।१२।।	भिक्षु स्वजीवन सुयापन के लिये ही- प्रायः लहे सुरसहीन व शीत रुक्ष-। कल्पास बुक्कस पुलाक व मन्थु बेर- के चूर्ण को ग्रहण ही करता तपस्वी ।।१२।।
जे लक्खणं च सुविणं च, अंग विज्जं च जे पउंजंति । ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं।।१३।।	जो लोक लक्षण समुद्र व अंग विद्या- का संप्रयोग करता वह साधु है न । संसारचक्र पतनोन्मुख है यथार्थ आचार्यवृन्द परिदिष्ट किया गया है ।।१३।।
इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहि-जोएहिं । ते काम-भोग-रस-गिद्धा, उववज्जंति आसुरे काए।।१४।।	तत्काल जीवन नियन्त्रणहीन होके- जो साधनागत महापथ से गिरे हैं । वे काम भोग रससक्त बने हुए हैं उत्पत्ति से असुर काय अवश्य भावी ।।१४।।
तत्तोऽवि य उव्वट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति । बहु-कम्म-लेव-लित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं।।१५।।	भोगाद्यनन्तर विनिर्गत हो वहाँ से- संसारचक्र लहते बहु कालकर्मी । स्नेहाक्त कर्म परिलिप्त सहेतुता से- संबोधि धर्म अति दुर्लभ नित्य होता ।।१५।।
कसिणं वि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स । तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया।।१६।।	होवे धनादि अरु धान्य विशेषपूर्ण- देवे समग्र यदि विश्व किसी गृही को-। सन्तुष्टि को न लहता, वह जीव सत्य दूष्पूर है, यह यहाँ परिलोभ भाव ।।१६।।

जहा लाहो तहा लोहो,
लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दो-मासकयं कज्जं,
कोडीए वि ण णिट्ठियं।।१७।।

लाभादि से सतत लोभ बढ़े जहाँ में-
ये सत्य है, न इसमें परिशेष शंका-।
लोभाभिभूत जन को यदि हेमराशि-
पर्याप्त लब्धि पर भी, परितोष है क्या ? ।।१७।।

णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा,
गंड-वच्छासु-ऽणेग-चित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता,
खेल्लंति जहा व दासेहिं।।१८।।

पीनत्व वक्ष-थल से विष रूप धारी
फैली-विशेष जिनमें बहुवासनाएं।
लोभ प्रलोभ करके निज दास मानें
ऐसी पिशाच महिला जन में, न राग ।।१८।।

णारीसु णोव-गिज्झेज्जा,
इत्थी विप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं णच्चा,
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।।१९।।

नारी विलोक, अनगार न मुग्ध होवे-
एकान्त आत्म हित साधनशीलता से ।
जाने मनोज्ञ-गुण-भव्य-सरूप-धर्म
साधुत्व है, परम शान्ति विकासकारी ।।१९।।

इइ एस धम्मे अक्खाए,
कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं ।
तरिहिन्ति जे उ काहिन्ति,
तेहिं आराहिया दुवे लोग।।२०।।

प्रज्ञा विशुद्ध कपिलादिक ने कहा है
आराधना नित करे इस धर्म की जो-।
वो जीव पार भव के नव छोर पाता
संसाधना कर सके, उभलोक की भी ।।२०।।

९ अध्ययन : नमिप्रव्रज्या

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'नमिप्रव्रज्या' है। मिथिला के राजर्षि नमि जब विरक्त एवं संबुद्ध होकर दीक्षा ग्रहण करने लगे, तब देवेन्द्र ने ब्राह्मणवेष में आकर उनके त्याग, वैराग्य, निःस्पृहता आदि की परीक्षा ली। इन्द्र ने लोकजीवन की नीतियो से सम्बन्धित अनेक प्रश्न प्रस्तुत किये। राजर्षि नमि ने प्रत्येक प्रश्न का समाधान अन्तस्तल की गहराई मे पैठ कर श्रमणसंस्कृति और आध्यात्मिक सिद्धान्त की दृष्टि से किया। इन्ही प्रश्नोत्तरों का वर्णन प्रस्तुत अध्ययन मे अकित किया गया है।
- नमि राजर्षि के प्रत्येकबुद्ध होकर प्रव्रज्याग्रहण करने की घटना इस प्रकार है– एक बार नमि राजा के शरीर मे दुःसह दाहज्वर उत्पन्न हुआ। घोर पीडा रही। छह महीने तक उपचार चला। लेकिन कोई लाभ नही हुआ। एक वैद्य ने चन्दन का लेप शरीर पर लगाने के लिए कहा। रानियॉ चन्दन घिसने लगी। चन्दन घिसते समय हाथों में पहने हुए ककणों के परस्पर टकराने से आवाज हुई। वेदना से व्याकुल नमिराज ककणो की आवाज सह नही सके। रानियों ने जाना तो सौभाग्यचिह्नस्वरूप एक–एक कंकण रख कर शेष सभी उतार दिये। अब आवाज बन्द हो गई। अकेला कंकण कैसे आवाज करता ?
- राजा ने मंत्री से पूछा–'कंकण की आवाज क्यों नहीं सुनाई दे रही ?'
- मन्त्री ने कहा–'स्वामिन्! आपको कंकणों के टकराने से होने वाली ध्वनि अप्रिय लग रही थी, अतः रानियो ने सिर्फ एक–एक कंकण हाथ में रख कर शेष सभी उतार दिये है।'
- राजा को इस घटना से नया प्रकाश मिला। सोचा–जहॉ अनेक हैं, वहाँ संघर्ष, दुःख पीडा और रागादि जनित दोष है; जहॉ एक है, वहीं सच्ची सुख–शान्ति है। जहाँ केवल एकत्वभाव है, आत्मभाव है, वहॉ दुःख नहीं है। अत जब तक मै मोहवश राजकीय भोगों से संबद्ध हूँ, तब तक मै दुःखित हूँ। एकाकी होने पर ही सुखी हो

सकूँगा। इस प्रकार राजा के मन मे विवेकमूलक वैराग्यभाव जागा। उसने सर्व–सग परित्याग करके एकाकी होकर प्रव्रजित होने का दृढ सकल्प किया।

- अकस्मात् नमि राजा को यों राज्य–त्याग कर प्रव्रजित होने के समाचार स्वर्ग के देवो ने जाने तो वे विचार करने लगे–यह त्याग क्षणिक आवेश है या वास्तविक वैराग्यपूर्ण है ? अत· उनकी प्रव्रज्या की परीक्षा लेने के लिए स्वयं देवेन्द्र ब्राह्मण का वेश बना कर नमि राजर्षि के पास आया और क्षात्रधर्म की याद दिलाते हुए लोकजीवन से सम्बन्धित 10 प्रश्न उपस्थित किये, जिनका समाधान उन्होंने एकत्वभावना और आध्यात्मिक दृष्टि से कर दिया। वे प्रश्न संक्षेप में इस प्रकार थे–
- 1. मिथिलानगरी में सर्वत्र कोलाहल हो रहा है। आप दयालु है, इसे शान्त करके फिर दीक्षा लें।
- 2. आपका अन्तःपुर, महल आदि जल रहे है, इनकी ओर उपेक्षा करके दीक्षा लेना अनुचित है।
- 3 पहले आप कोट, किले, खाई, अट्टालिका, शस्त्रास्त्र आदि बना कर नगर को सुरक्षित करके फिर दीक्षा लें।
- 4. अपने और वंशजों के आश्रय के लिए पहले प्रासादादि बनवा कर फिर दीक्षा लें।
- 5. तस्कर आदि प्रजापीडको का निग्रह करके, नगर में शान्ति स्थापित करके फिर दीक्षा लेना हितावह है।
- 6 उद्धत शासकों को पराजित एवं वशीभूत करके फिर दीक्षा ग्रहण करे।
- 7. यज्ञ, विप्रभोज, दान एवं भोग, इन प्राणिप्रीतिकारक कार्यों को करके फिर दीक्षा लेना चाहिए।
- 8. घोराश्रम (गृहस्थाश्रम) को छोड कर सन्यास ग्रहण करना उचित नही है। यहीं रह कर पौषधव्रतादि का पालन करो।
- 9. चॉदी, सोना, मणि, मुक्ता, कांस्य, दूष्य–वस्त्र, वाहन, कोश आदि मे वृद्धि करके निराकांक्ष होकर तत्पश्चात् प्रव्रजित होना।
- 10 प्रत्यक्ष प्राप्त भोगो को छोड कर अप्राप्त भोगो की इच्छा की पूर्ति के लिए प्रव्रज्याग्रहण करना अनुचित है।
- राजर्षि नमि के सभी उत्तर आध्यात्मिक स्तर के एवं श्रमणसंस्कृति– अनुलक्षी है।
- नमि राजर्षि के उत्तर सुन कर देवेन्द्र अत्यन्त प्रभावित होकर परम श्रद्धाभक्तिवश स्तुति, प्रशंसा एवं वन्दना करके अपने स्थान को लौट जाता है।

९. नमिप्रव्रज्या

चइऊण देव-लोगाओ,
उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसंत-मोहणिज्जो,
सरइ पोराणियं जाइं।।१।।

देवत्व भाव तज के नमि देव ने भी
मानुष्य लोकपन का फिर रूप धारा ।
मोहादिकर्म उपशान्त किया समग्र
जाति स्मृती समुपलब्ध हुई विचित्र ।।१।।

जाइं सरित्तु भयवं,
सहं-संबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवेत्तु रज्जे,
अभिणिक्खमइ णमी राया।।२।।

जाति स्मृतित्व गुण से सुविरक्ति भाई
धर्मादि भाव निज से निज में जगाया ।
राज्यादि तन्त्र निज पुत्र करस्थ कारी
राजा नमी विरत ने शिव तथ्य पाया ।।२।।

सो देवलोग-सरिसे,
अंतेउर-वरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु णमी राया,
बुद्धो भोगे परिच्चयइ।।३।।

भोग प्रधान जिनका रनिवास भी था
शक्रेन्द्रपूर्ण-अति भव्य सुरूप धारी ।
सामर्थ्य भोग बल भी अति था निराला
संसार भोग भव से मन को हटाया ।।३।।

मिहिलं सपुर-जणवयं,
बल-मोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिणिक्खंतो,
एगंत-महिट्ठिओ भयवं।।४।।

वैराग्य रंग मन में सविशेष छाया
अन्तः-पुरस्थ जन को पल में विसारा ।
त्यागी, समृद्ध मिथिला निज राजधानी
सेनादि छोड़, विधि से थिर मुक्ति पाई-।।४।।

कोलाहलग-संभूयं,
आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि ।
तइया राय-रिसिम्मि,
णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि।।५।।

कोलाहल द्रवित शब्द जहाँ सुने थे
दीक्षाभिभूत बनके, मिथिला बिसारी ।
त्याग प्रधान-बनके धृत धारणा से
सम्यक्त्व दिव्य अविलम्ब मिला सहारा ।।५।।

अब्भुट्ठियं रायरिसिं,
पवज्जा ठाण-मुत्तमं ।
सक्को माहण-रूवेण,
इमं वयण-मब्बवी।।६।।

अक्षादि सौख्य मन से विधि से निकाला
सम्पन्न आत्म तप से निज को सुधारा ।
विप्रस्वरूप धरके जब इन्द्र पूछे-
देते प्रशान्त मन से मुनि उत्तरादि ।।६।।

किण्णु-भो! अज्ज मिहिलाए
कोलाहलग - संकुला ।
सुव्वंति दारूणा सद्दा,
पासाएसु गिहेसु य।।७।।

औत्तम्य भाव थिर थे मुनि में विशेष
शक्रेन्द्र विप्र उनसे तब पूछता है ।
दारुण्यपूर्ण मिथिला दयनीयता से
क्यों दुर्दशा नगर की यह हो रही है ? ।।७।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेउ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इण-मब्बवी।।८।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।८।।

मिहिलाए चेइए वच्छे,
सीय-च्छाए मणोरमे ।
पत्त-पुप्फ-फलोवेए,
बहूणं बहु-गुणे सया।।९।।

वृक्षादिपूर्ण मिथिला वन से सुहाती
शैत्यादि शान्ति जिसमें भरपूर छाई ।
पुष्पादियुक्त फल से तरु था निराला
पक्ष्यादि आश्रय बना अवदात भी था ।।९।।

वाएण हीरमाणम्मि,
चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता,
एए कन्दंति भो खगा।।१०।।

वाय्वादि वेग लहके शिथिली हुआ था
वन्य प्रदेश शिखरी वह वृक्ष टूटा ।
पक्षी सदैव जिसपै रहते सहर्ष-
वे आज नष्ट रव, पीडित हैं विशिष्ट ।।१०।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ कारण चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इण-मब्बवी।।११।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।११।।

एस अग्गी य वाऊ य,
एयं डज्झइ मंदिरं ।
भयवं अंतेउरं तेणं,
कीस णं णाव-पेक्खह।।१२।।

वायु प्रभाव मिथिला पर फैलता है
अग्नि प्रकर्ष अपना दिखला रही है ।
सारी प्रजा जल रही करुणार्दिता हो
कर्त्तव्य शून्य पथ पै मुनि जा रहे क्यों ? ।।१२।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इण-मब्बवी।।१३।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।१३।।

सुहं वसामो जीवामो,
जेसिं मो णत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झ-माणीए,
ण मे डज्झइ किंचणं।।१४।।

वस्तु स्वरूप कुछ भी न यहाँ रहा है
एकान्तवास अपना सुख का सरूप ।
अग्नि प्रभाव मिथिला पर है अवश्य
मेरा नहीं कुछ जले, यह बात सत्य ।।१४।।

चत्त-पुत्त-कलत्तस्स,
णिव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं ण विज्जए किंचि,
अप्पियं वि ण विज्जइ।।१५।।
बहुं खु मुणिणो भद्दं,
अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स,
एगंत-मणुपस्सओ।।१६।।

सारे पदार्थ परिमोचक हो, दया से
एकान्त-भाव अपनेपन में सँजोये ।
भिक्षार्थ धर्मपन से निज लो लगाये
सत्यार्थ-बोध अपना जग को सुनाये ।।१५-१६।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,	शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
हेऊ-कारण-चोइओ ।	कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
तओ णमिं रायरिसिं,	अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देविंदो इण-मब्बवी।।१७।।	देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।१७।।
पागारं कारइत्ताणं,	प्राकार, गोपुर, बना रिपु मार्ग रोधी
गोपुरट्टालगाणि य ।	खाई खुदा सफल हो जयशीलता से ।
उस्सूलग सयग्घीओ,	बैरी विरुद्ध जन पै अधिकार पाके
तओ गच्छसि खत्तिया।।१८।।	दीक्षा तभी, ग्रहण के अनुरूप होगी ।।१८।।
एयमट्ठं णिसामित्ता,	शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
हेऊ-कारण-चोइओ ।	कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
तओ णमी रायरिसी,	अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देविंदं इण-मब्बवी।।१९।।	देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।१९।।
सद्धं णगरं किच्चा,	श्रद्धानरूप नगरी निज में बनाके
तव संवर-मग्गलं ।	प्राकार शान्ति यति धर्म विशेष पाके ।
खंतिं णिउण-पागारं,	सन्तप्त हो प्रखर संयम साधना से
तिगुत्तं दुप्पधंसयं।।२०।।	गुप्त्यादि से सकल कर्म बने विजेता ।।२०।।
धणुं परक्कमं किच्चा,	आत्मीय शौर्यबल का धनु भी बनाके
जीवं च इरियं सया ।	ईर्यादि डोर जिस पर अनुविद्ध होवे ।
धिइं च केयणं किच्चा,	धैर्यादिमूठ करके नभ में चढ़ाके
सच्चेण पलिमंथए।।२१।।	सत्यादि सूत्र गुण से प्रतिबद्ध होवें ।।२१।।
तवणारायजुत्तेण,	नाराचयुक्त तप है उसका कराल
भित्तूणं कम्म-कंचुयं ।	कर्मादि वर्ग जिससे परिभेद पावे ।
मुणी विगय-संगामो,	संघात सर्व-अरि का मुनि साधना है
भवाओ परिमुच्चए।।२२।।	साफल्य संभृतजनी परिपूर्ण होती ।।२२।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इण-मब्बवी।।२३।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।२३।।

पासाए कारइत्ताणं,
वद्धमाण-गिहाणि य ।
वालग्ग-पोइयाओ य,
तओ गच्छसि खत्तिया।।२४।।

प्रासाद सुन्दर यहाँ अति भव्य होवे
सज्जा सुखादि गृह वस्तु यहाँ बनावे ।
वाप्यादि वारि परिपूर्ण जलादि खेला
सम्पादनादि करके, फिर वर्जना हो ।।२४।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इणमब्बवी।।२५।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।२५।।

संसयं खलु सो कुणई,
जो मग्गे कुणई घरं ।
जत्थेव गंतु-मिच्छेज्जा,
तत्थ कुव्वेज्ज सासयं।।२६।।

शंकाभिभूत नर लोक निमज्जता है
सम्यक्-प्रधान जिसकी दृढ़ पूर्णता है ।
संसार में न भटके वह भव्य [illegible]
मुक्ति-प्रकर्ष-पद को अविलम्ब [illegible]

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इणमब्बवी।।२७।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि [illegible]
कारुण्य हेतु सब जान [illegible]
अध्यात्म रूप धरके [illegible]
देवेन्द्र चित्त [illegible]

आमोसे लोमहारे य,
गंठिभेए य तक्करे ।
णगरस्स खेमं काऊणं,
तओ गच्छसि खत्तिया।।२८।।

दस्युवादि [illegible]
ग्रन्थी [illegible]
औचि[illegible]
[illegible]

एयमट्ठं णिसामित्ता,	शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
हेऊ-कारण-चोइओ ।	कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
तओ णमी रायरिसी,	अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देविंदं इणमब्व्वी।।२६।।	देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।२६।।
असइं तु मणुस्सेहिं,	संसार में विषमता परिलक्ष्य होती
मिच्छा-दंडो पजुंजइ ।	अज्ञान पूर्ण जन दण्ड विधान रूप-।
अकारिणोऽत्थ वज्झंति,	होता, सदोष बचता, यह नीति कैसी ?
मुच्चई कारओ जणो।।३०।।	निर्दोष दण्डित यहाँ पर, देखते हैं ।।३०।।
एयमट्ठं णिसामित्ता,	शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
हेऊ-कारण-चोइओ ।	कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
तओ णमिं रायरिसिं,	अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देविंदो इणमब्बवी।।३१।।	देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।३१।।
जे केइ पत्थिवा तुज्झं,	जो अन्य भूपजन हैं अधिकार-गर्वी
णाऽणमंति णराहिवा ।	दण्ड प्रयोग करके झुकना सिखावो ।
वसे ते ठावइत्ताणं,	उद्दण्डता सकल ही उनकी मिटावो
तओ गच्छसि खत्तिया।।३२।।	दीक्षा तभी, ग्रहण के अनुकूल होगी ।।३२।।
एयमट्ठं णिसामित्ता,	शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
हेऊ-कारण-चोइओ ।	कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
तओ णमी रायरिसी,	अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देविंदं इणमब्बवी।।३३।।	देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।३३।।
जो सहस्सं सहस्साणं,	दुर्जेय अत्यधिक विश्व विजेतृता से
संगामे दुज्जए जिणे ।	संग्राम में प्रखर-योध कदम्ब जेता-।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं,	आत्मा विशेष विजयी उसके समक्ष
एस से परमो जओ।।३४।।	है ही, समग्र-विधि से नित वन्दनीय ।।३४।।

अप्पाण-मेव जुज्झाहि,
किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पणामेव-मप्पाणं,
जिणित्ता सुहमेहए।।३५।।

आत्मीय युद्ध रुचि में परिपूर्णता हो
बाह्यस्थ के विजय में, न विशेषता है ।
आन्तर्य जीत करके निज को सुधारे
सौख्यातिलाभ मिलता मन में विचारे ।।३५।।

पंचिंदियाणि कोहं,
माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं,
सव्वं अप्पे जिए जियं।।३६।।

पंचेन्द्रियादि रुष और अनल्पमाया-
दुर्जेय-आत्म अरु लोभ कषाय को भी ।
सम्यकृतयात्मजय से यम संग जीते
सान्द्रा सुधा सरस पान तभी सुहावे ।।३६।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इणमब्बवी।।३७।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।३७।।

जइत्ता विउले जण्णे,
भोइत्ता समण-माहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य,
तओ गच्छसि खत्तिया।।३८।।

यज्ञीय कार्य सुसमापन भी कराके
रत्नादि दान दिज आश्रित को दिलाके ।
जीवादि तृप्ति करके अशनादि देके
दीक्षा तभी ग्रहण की अनुकूलता में ।।३८।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इणमब्बवी।।३९।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।३९।।

जो सहस्सं सहस्साणं,
मासे मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ,
अदिन्तस्स-ऽवि किंचणं।।४०।।

लक्षादि धेनु हर मास सुदान देता
कारुण्य भाव परिपूरित मानवों को ।
देता न दान कुछ भी मुनि साधनाभृत्
होता विशिष्ट पद संयम संयमी का ।।४०।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इणमब्बवी।।४१।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।४१।।

घोरासमं चइत्ताणं,
अण्णं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसह-रओ,
भवाहि मणुयाहिवा।।४२।।

गार्हस्थ्य धर्म तज के यह साधुता क्या ?
आदर्श रूप रहना इसमें भला था ।
क्षात्रत्व तेज परिपूरित के न योग्य
पोषादि धर्म गृह में करना प्रशस्त ।।४२।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इणमब्बवी।।४३।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।४३।।

मासे मासे उ जो बालो,
कुसग्गेणं तु भुंजए ।
ण सो सुयक्खाय धम्मस्स,
कलं अग्घइ सोलसिं।।४४।।

मासादि मास तप में मन को लगावे
भुक्त्यादि में अशन भी वस में कुशाग्र।
वो भी न जैन मत के सम हो सकेगा
तीर्थंकरादि विनिदिष्ट परम्पराप्त ।।४४।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इणमब्बवी।।४५।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।४५।।

हिरण्णं सुवण्णं मणि-मुत्तं,
कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं वड्ढा वइत्ताणं,
तओ गच्छसि खत्तिया।।४६।।

रत्नादि हेम मणि मौक्तिक भाजनादि
अश्वादि अन्य सव ही परिवस्तुओं पै ।
एकाधिकार अपना सविशेष पाके
श्रीवृद्धि पूर्ण करके, तव हो सुदीक्षा ।।४६।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेउ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इण-मब्बवी।।४७।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।४७।।

सुवण्ण-रुव्वस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलास समा असंखया ।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगास समा अणंतिया।।४८।।

कैलाश पर्वत समान धनादि तुच्छ
आकाश रूप सम विस्तृत भी अभीप्सा ।
आनन्द तोष जिसके मन में समाया
वो ही मनुष्य सुख की छवि से सुहाता ।।४८।।

पुढवी साली जवा चेव,
हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं णाल-मेगस्स,
इइ विज्जा तवं चरे।।४९।।

व्रीह्यादि धान्य उपयोगि पदार्थ जात-
स्वर्णादि-वैभव समग्र यहाँ रहे हो ।
सम्यक् प्रकार उनको यदि दे किसी को-
तो भी सुतोष, उसके मन में न होगा ।।४९।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं,
देविंदो इण-मब्बवी।।५०।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।५०।।

अच्छेरग-मब्भुदए,
भोए चयसि पत्थिवा ।
असंते कामे पत्थेसि,
संकप्पेण विहम्मसि।।५१।।

आश्चर्य भूप ! मुझको यह हो रहा है
कैसे सुभोग सपने सजले विसारे ?
दिव्यादि लाभ नित नूतन कल्पना से
संप्राप्त हस्तगत भोग न नष्ट होवे ।।५१।।

एयमट्ठं णिसामित्ता,
हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ णमी रायरिसी,
देविंदं इणमब्बवी।।५२।।

शक्रेन्द्र कथ्य सुनके, मुनि ने कहा यों
कारुण्य हेतु सब जान लिया प्रसंग ।
अध्यात्म रूप धरके उस ने बताया
देवेन्द्र चित्त अवधान हुआ विशेष ।।५२।।

सल्लं कामा विसं कामा,,
कामा आसी-विसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा,
अकामा जंति दोग्गइं।।५३।।

कामादि भोग विष रूप विशल्य माने
आशीविषोपमित विज्ञ-सभी बताते ।
संकल्प मात्र भव दुर्गति हेतु जानो
संप्राप्ति के विषय में, कहना न शेष ।।५३।

अहे वयइ कोहेणं,
माणेणं अहमा गइ ।
माया गई-पडिग्घाओ,
लोहाओ दुहओ भयं।।५४।।

क्रोध प्रभाव नर को गति नर्क देता
मानादि मत्तपन से वह नीच होता ।
माया विनाश करती शुभ कर्म का है
लोभ प्रधान नर का निरयाभिपात ।।५४।

अवउज्झिऊण माहण रूवं,
विउव्विऊण ईंदत्तं ।
वंदइ अभित्थुणंतो,
इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं।।५५।।
अहो ते णिज्जिओ कोहो,
अहो माणो पराजिओ ।
अहो ते णिरक्किया माया,
अहो लोहो वसीकओ।।५६।।

विप्र स्वरूप धरके करने परीक्षा-
आये, सुरेन्द्र, नमि थे दृढ़ धर्मधारी ।
सद्यः पराजित बने, निज रूप धारी
वैदग्ध-भाव नत, वन्दित वन्दना की ।।५५-५६।।

अहो ते अज्जवं साहु,
अहो ते साहु मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती,
अहो ते मुत्ति उत्तमा।।५७।।

आश्चर्य ! अन्वित दया मुनि में निराला
आश्चर्य ! साधुपन में मृदुता विशिष्ट ।
आश्चर्य ! पूर्ण तुझ में समता सुहाती
आश्चर्य ! सर्व भव से ममतापहारी ।।५७।।

इहंसि उत्तमो भंते,
पेच्छा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्त-मुत्तमं ठाणं,
सिद्धिं गच्छसि णीरओ।।५८।।

भन्ते ! यहाँ सफलता तुममें सुहाई
अन्यत्र लोक अवदात किया विशेष ।
लोकान्त भी सफल है इसमें न शंका
मुक्त्यर्थ भाजन भरा तुम-सा न कोई ।।५८।।

एवं अभित्थुणंतो,
रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
याहिणं करेंतो,
पुणो पुणो वंदइ सक्को।।५६।।

पूरी स्तुती सुमुनि की त्रिदशेश ने की
श्रद्धा विशेष मुनि की मन में समाई ।
आवर्तना सविधि की निज भक्ति से भी
शक्रेन्द्र वन्दन हुआ पद पंकजों में ।।५६।।

तो वंदिऊण पाए,
चक्कं कुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणु-प्पइओ,
ललिय-चवल-कुंडल-तिरीडी।।६०।।

उत्साहपूर्ण उनको सिर है झुकाया
चक्राकुशी मुनि पुनीत बने विरागी ।
आकाश काम्य पथ से निज धाम आये
लालित्यपूर्ण शशि कुण्डल थे प्रदीप्त ।।६०।।

णमी णमेइ अप्पाणं,
सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही,
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ।।६१।।

आत्मानुभाव निज में मुनि ने जगाया
साक्षात् सुरेन्द्र जिन के पद में नमें थे ।
गार्हस्थ्य-धर्म तज के, मिथिला पुरी को
शक्रेन्द्र से विहित थी जिनकी परीक्षा ।।६१।।

एवं करेंति संबुद्धा,
पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु,
जहा से णमी रायरिसी।।६२।।

ऐसा विशेष बुध तत्त्व विमर्श कारी
पाण्डित्य भी झलकता विधिवद् विशिष्ट ।
भोगादिभाव भव से विनिवृत्त होके
त्यागी नमी विरत सा, सुख शान्ति पाता ।।६२।।
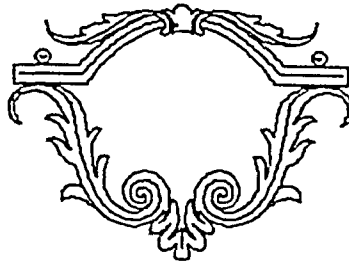
१० अध्ययन : द्रुमपत्रक

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'द्रुमपत्रक' है।
- चम्पानगरी के पास पृष्ठचम्पा नगरी थी। वहाँ साल और महाशाल ये दो सहोदर भ्राता थे। शाल वहॉ के राजा थे और महाशाला युवराज। इनकी यशस्वती नाम की एक बहन थी। बहनोई का नाम पिठर ओर भानजे का नाम था गागली। एक बार श्रमण भगवान् महावीर विहार करते हुए पृष्ठचम्पा पधारे। दोनों भाई वन्दना के लिए गए। शालका अंतःकरण संसार से विरक्त हो गया। वह नगर में आया, तथैव भाई के समक्ष स्वयं दीक्षा लेने की और उसे राज्य ग्रहण करने की बात कही तो महाशाल ने कहा—मै स्वय इस असार संसार से विरक्त हो गया हूॅ। अतः आपके साथ प्रव्रजित होना चाहता हूॅ। राजा ने अपने भानजे गागली को काम्पिल्यपुर से बुलाया और उसे राज्य का भार सौंप कर दोनों भाई दीक्षित हो गए।
- एक बार भगवान् महावीर राजगृह से विहार करके चम्पानगरी जा रहे थे। तभी शाल और महाशाल मुनि ने भगवान् के पास आकर सविनय प्रार्थना की—"भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों स्वजनो को प्रतिबोधित करने के लिए पृष्ठचम्पा जाना चाहते है।"
- भगवान् ने श्री गौतमस्वामी के साथ जाने की अनुज्ञा दी। मुनि पृष्ठचम्पा आए। राजा गागली और उसके माता–पिता को दीक्षित करके वे सब पुन. भगवान् महावीर के पास आ रहे थे। मार्ग में चलते–चलते अध्यवसायो की पवित्रता बढी। पाचो ही व्यक्तियो को केवलज्ञान हुआ। सभी भगवान् के पास पहुॅचे। ज्यो वे केवलियो की परिषद् मे जाने लगे तो गौतम ने उन सब को रोकते हुए कहा—'पहले त्रिलोकीनाथ भगवान् को वन्दना करो।'

- भगवन् ने गौतम से कहा–'गौतम! ये सब केवलज्ञानी हो चुके है। उनका मन अधीरता और शंका से भर गया। क्या मै सिद्ध नहीं होऊँगा?
- एक बार गौतमस्वामी अष्टापद पर गए थे। वहॉ कौडिन्य, दत्त और शैवाल नाम तीन तपास अपने पांच–पांच सौ शिष्यो के साथ क्लिष्ट तप कर रहे थे। अपनी तपस्या से वे क्रमशः पहली, दूसरी और तीसरी मेखला तक चढ सके, आगे नहीं चढ सके।
- गौतमस्वामी वहॉ आए तो उन्हें तापस परस्पर कहने लगे–हम महातपस्वी भी ऊपर नहीं जा सके तो यह स्थूल शरीर वाला साधु कैसे जाएगा? परन्तु उनके देखते ही देखते गौतमस्वामी जंघाचरणलब्धि से सूर्य की किरणों का अवलम्बन लेकर शीघ्र ही चढ गए और क्षणभर में अन्तिम मेखला तक पहुँच गए। आश्चर्यचकित तापसों ने निश्चय कर लिया कि ज्यों यह मुनि नीचे उतरेंगे, हम उनके शिष्य बन जाएँगे। प्रातः काल जब गौतमस्वामी पर्वत से नीचे उतरे तो तापसो ने उनका रास्ता रोक कर कहा–'पूज्यवर! आप हमारे गुरु है, हम सब आपके शिष्य हैं।' तब गौतम बोले–'तुम्हारे और हमारे सब के गुरु तीर्थकर महावीर हैं।' यह सुन कर वे आश्चर्य से बोले–'क्या आपके भी गुरु है ?' गौतमस्वामी ने कहा–'हॉ, रागद्वेषरहित सर्वज्ञ प्रभु महावीर स्वामी जगद्गुरु है, वे मेरे भी गुरु है।' सभी तापस यह सुन कर हर्षित हुए। सभी तापसो को प्रव्रजित कर गौतम, भगवान् की ओर चल पडे।
- मार्ग मे शैवाल आदि 501 साधुओं ने सोचा, शुभ अध्यवसायपूर्वक शुक्लध्यानश्रेणी पर आरूढ उनको केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तीर्थकर भगवान् की प्रदक्षिणा करके ज्यों ही वे केवलियो की परिषद् की ओर जाने लगे, गौतम ने उन्हें रोकते हुए भगवान् को वन्दना करने का कहा, तब भगवान् ने कहा–'गौतम! ये केवली हो चुके है।' गौतम–स्वामी ने उन सबसे क्षमायाचना करके विचार किया–मै इस भव में मोक्ष प्राप्त करूँगा या नहीं ? भगवान्, गौतम के अधैर्ययुक्त मन को जान गए। उन्होने गौतम से पूछा– 'गौतम ! देवों का वचन प्रमाण है या तीर्थकर का ?' गौतम– 'भगवन्! तीर्थकर के वचन प्रमाण है।'
- भगवान ने कहा–'गौतम ! स्नेह चार प्रकार के होते है–सोंठ के समान, द्विदल के समान, चर्म के समान और ऊर्णाकट के समान। चिरकाल के परिचय के कारण तुम्हारा मेरे प्रति ऊर्णाकट जैसा स्नेह है। इस कारण तुम्हे केवलज्ञान नहीं होता। जो राग स्त्री–पुत्र–धनादि के प्रति होता है, वही राग तीर्थकर देव, गुरु और धर्म के प्रति

हो तो वह प्रशस्त होता है, फिर भी वह यथाख्यातचारित्र का प्रतिबन्धक है। सूर्य के बिना जैसे दिन नहीं होता, वैसे ही यथाख्यातचारित्र के बिना केवलज्ञान नही होता यहाँ से च्यव कर हम दोनों ही एक ही अवस्था को प्राप्त होंगे, अतः अधैर्य न लाओ।

- इस प्रकार भगवान् ने गौतम तथा अन्य साधकों को लक्ष्य में रख कर प्रमाद–त्याग का उद्‌बोधन करने हेतु 'द्रुमपत्रक' नामक यह अध्ययन कहा है।
- समग्र अध्ययन में प्रमाद से विरतहोकर अप्रमाद के राजमार्ग पर चलने का उद्घोष है
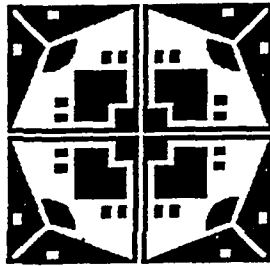
१०. द्रुमपत्रक

दुम-पत्तए पंडुयए जहा,
णिवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाणं जीवियं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१।।

जैसे सपीत बनके द्रुमकादि पत्र-
पाके-समै सतत शुष्क पड़े धरा पै ।
वैसी समग्र जनजीवन की कहानी
होवे न गौतम ! समै भर का प्रमाद ।।१।।

कुसग्गे जह ओस-बिंदुए,
थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए ।
एवं मणुयाणं जीवियं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२।।

घासाग्र भाग परिशोभित वारिबिन्दु-
की अल्पकाल तक ही स्थिति है वहाँ पै ।
वैसा कहा, मनुज जीवन है विनाशी
होवे न गौतम समै भर का प्रमाद ।।२।।

इइ इत्तरियम्मि आउए,
जीवियए बहु-पच्चवायए ।
विहुणाहि रयं पुरे कडं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३।।

अत्यल्प आयु अधिकाधिक विघ्नपूर्ण
है जीवन स्थिति विनश्वरशील सर्व ।
पूर्वाप्त कर्म रज का क्षय कार्यकाम्य
होवे न गौतम समै भर का प्रमाद ।।३।।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे,
चिर कालेण वि सव्व पाणिणं ।
गाढा य विवाग कम्मुणो,
समयं गोयम ! मा पमायए।।४।।

संसार में मनुज को चिरकाल में भी-
दुर्लब्ध ही मनुजता कहते मनीषी ।
होता सदैव निज कर्म विपाक तीव्र-
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमाद ।।४।।

पुढवि-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।५।।

पृथ्वी शरीरगत जीव सदा अधीन
उत्पत्ति औ मरण को लहता असंख्य।
ये जान के सतत साधनशील साधु-
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमाद ।।५।।

आउ-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।६।।

अप्काय में गमनशील अधीन जीव
उत्कर्ष से चिर समै रहता विपन्न ।
ऐसा विवेक करके बन सावधान-
होवे न गौतम यहाँ पल भी प्रमाद ।।६।।

तेउ-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।७।।

तेजश् शरीरगत जीव विशेष रूप
उत्कृष्ट दीर्घ चिरकाल निवासकारी ।
ये सोच साधक सदा निज साधनार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।७।।

वाउ-काय मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।८।।

सर्वज्ञ का कथन, वायु शरीर में भी-
उत्कृष्ट संख्यगत हीन समै कहा है।
तो आत्म साधन परायण साधु जीव-
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमाद ।।८।।

वणस्सइ-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
काल-मणंत-दुरंतं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।९।।

पाके वनस्पति शरीर रहे विपन्न
उत्कृष्ट काल तक कर्म परम्परा से-
तो जीव को समझ के जिनतत्त्व-वेत्ता
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।९।।

बेइंदिय-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं-संखिज्ज-सण्णियं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१०।।

द्वीन्द्रीयकाय गत जीव समस्त का भी-
उत्कृष्ट से समय संख्य कहा गया है।
संध्यान से समझ के निज आत्म हेतु-
होवे न गौतम यहाँ पल भी प्रमाद ।।१०।।

तेइंदिय-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
काल संखिज्ज-सण्णियं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।११।।

त्रीन्द्रीयकाय गत जीव इसी प्रकार-
उत्कृष्ट से समय संख्य कहा गया है ।
शुद्धावबोध चय से बन सावधान-
होवे न गौतम यहाँ क्षण भी प्रमाद ।।११।।

चउरिंदिय काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्ज-सण्णियं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१२।।

तुर्येन्द्रिकाय गत जीव कदम्ब का भी-
उत्कृष्ट से समय संख्य कहा गया है ।
ऐसा विचार करके शुभ भावना से-
होवे न गौतम यहाँ, क्षण भी प्रमाद ।।१२।।

पंचिंदिय-काय-मइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तट्ठ-भव-गहणे,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१३।।

पंचेन्द्रिकायगत जीव विशिष्टता से-
उत्कृष्ट अष्ट भव लौं रहता अवश्य ।
ऐसा विचार करके हित साधनार्थी
होवे न गौतम यहाँ क्षण भी प्रमाद ।।१३।।

देवे णेरईए य अइगओ,
उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्केक्क-भव-गहणे,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१४।।

देवादि नारक गती समुपेत जीव
उत्कृष्ट एक भव जन्म लहे नितान्त ।
धर्मादि को समझ के हित भावना से-
होवे न गौतम यहाँ क्षण भी प्रमाद ।।१४।।

एवं भव-संसारे,
संसरइ सुहा-सुहेहिं कम्मेहिं ।
जीवो पमाय-बहुलो,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१५।।

प्रामाद्य की बहुलता भव जन्म हेतु-
कर्मादि से सतत संसृति में भ्रमा है ।
ये सोच के समझ के हित साधनार्थी-
होवे न गौतम यहाँ क्षण भी प्रमाद ।।१५।।

लद्धूणवि माणुसत्तणं,
आयरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं ।
बहवे दसुया मिलेक्खुया,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१६।।

मानुष्य लाभ करके फिर आर्य धर्म-
पाना नितान्त अति दुर्लभ है निदिष्ट ।
म्लेच्छादि दस्यु नर हैं,. वनते विशेष
होवे न गौतम यहॉ क्षण भी प्रमाद ।।१६।।

लद्धूणवि आयरियत्तणं,
अहीण पंचिंदिय या हु दुल्लहा ।
विगलिंदिय या हु दीसइ,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१७।।

आर्यत्व की सुलभता पर पूर्ण-इन्द्री-
संप्राप्ति दुर्लभ कही विकलेन्द्रिता से ।
देखे गये, सतत जीव यहां विशेष-
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमाद ।।१७।।

अहीण पंचिंदियत्तं वि से लहे,
उत्तम-धम्मसुई हु दुल्लहा ।
कुतित्थि-णिसेवए जणे,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१८।।

पंचेन्द्रियत्व पर दुर्लभ धर्म बोध-
तीर्थान्तरीय परिसाधक भी यहाँ हैं ।
सोचें स्वरूप अपना शुभ भावना से
होवे न गौतम यहाँ क्षण भी प्रमाद ।।१८।।

लद्धूण वि उत्तमं सुइं,
सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्त-णिसेवए जणे,
समयं गोयम ! मा पमायए।।१९।।

धर्मादि की श्रुति विशेष तथैव आस्था-
संप्राप्ति भी कठिन रूप कही गई है ।
मिथ्यात्व को बहुत से परिसेवते हैं
होवे न गौतम समै भर का प्रमाद ।।१९।।

धम्मंवि हु सद्दहंतया,
दुल्लहया काएण फासया ।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२०।।

श्रद्धादि पै तदनुरूप न आचरादि
आसक्त से रत रहे नित काम-भोग ।
ये सोच के श्रमण साधक साधनार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२०।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पंडुरया हवंति ते ।
से सोयबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२१।।

जीर्णत्व-युक्त, परिकम्प विशिष्टकाय
है केश शुभ्र, सुनना कम हो गया है ।
ये सोच के सतत साधक साधनार्थी
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमादी ।।२१।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पंडुरया हवंति ते ।
से चक्खुबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२२।।

जीर्णात्तकाय अरु केश समुज्जूवलाप्त-
संक्षीण नेत्र वल, पौरुष हीनता है ।
ये सोच के निज सरूप सदैव जाने
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२२।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पंडुरया हवंति ते ।
से घाणबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२३।।

जूना शरीर अरु केश कलाप सेत
है घ्राण शक्ति परिहीन विशेष रूप ।
ये सोच के सतत संयम साधनार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२३।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पण्डुरया हवंति ते ।
से जिब्भबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२४।।

संजीर्णकाय अरु केश सुकाशतुल्य-
जिह्वा रसादि गुण से परिमुक्तपूर्ण ।
ये सोच के सतत संयमबद्ध कक्ष
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२४।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पंडुरया हवंति ते ।
से फासबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२५।।

संकीर्ण काय अरु केश कलाप तूल-
संस्पर्श इन्द्रिय सभी परिनष्टशील ।
ये सोच के सतत संसृति-निर्वृतार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२५।।

परिजूरइ ते सरीरयं,
केसा पंडुरया हवंति ते ।
से सव्वबले य हायई,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२६।।

सारा शरीर कृशता-परिपूर्ण, दीन
बाकी न शक्ति तन में, मन भी मलीन ।
ये सोच के श्रमण साधक साधनार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमादी ।।२६।।

अरई गंडं विसूइया,
आयंका विविहा फुसंति ते ।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२७।।

उद्वेग-पूर्ण मन, वायु विकारकारी
आतंक रोग चय का भव भीति भारी ।
स्फोटादि शूल वमनादिक जीवघाती
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।२७।।

वुच्छिंद सिणेह-मप्पणो,
कुमुयं सारइयं व पाणियं ।
से सव्व-सिणेह-वज्जिए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२८।।

जैसे शरद् समय में कुमुदादिवारि-
निर्लिप्त भाव रखता उस रूप में भी ।
स्नेहानुसक्ति परिबन्धन से विमुक्त
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।२८।।

चिच्चाण धणं अ भारियं,
पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वंतं पुणोवि आविए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।२६।।

योषा-धनादि परिमुक्त हुआ मनस्वी
संग्राह की न परिकल्पित भावना हो ।
श्रामण्य धर्म युत साधक साधनार्थी
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।२६।

अवउज्झिय मित्त-बंधवं,
विउलं चेव धणोह-संचयं ।
मा तं बिइयं गवेसए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३०।।

मित्रादि बान्धव तथा धनराशि पूर्ण-
को छोड़ के, फिर गवेषण को करे न ।
ये सोच के सतत साधनशील साधु-
होवे न गौतम कभी पल भी प्रमाद ।।३०।

ण हु जिणे अज्ज दीसइ,
बहुमए दीसइ मग्गदेसिए ।
संपइ णेयाउए पहे,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३१।।

ना दीखते जिन, विशेष सुमार्गदर्शी-
हैं, एक भाव इनमें नहि दीखता है ।
अर्हन्त मार्ग उपलब्ध, चलो उसी पै
होवे न गौतम कभी क्षण भी प्रमाद ।।३१।।

अवसोहियं कंटगा पहं,
ओइण्णोऽसि पहं महालयं ।
गच्छसि मग्गं विसोहिया,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३२।।

कांटों भरा पथ नहीं, परिशुद्ध मार्ग-
पै आ गए, फिर चलो, यह भावना हो ।
श्रद्धाभिभूत अपवर्ग पथानुयायी
होवे न गौतम कभी, पल भी प्रमाद ।।३२।।

अबले जह भार-वाहए,
मा मग्गे विसमेऽवगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३३।।

वैषम्य मार्ग पर कष्ट विशेष होता
संताप पूर्ण बनता व्यवहार सारा ।
ये सोच के सतत साधक साधनार्थी
होवे न गौतम कभी, पल भी प्रमादी ।।३३।।

तिण्णो हु सि अण्णवं महं,
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३४।।

संतीर्ण सागर किया, तट आ गया है
हो शीघ्र पार, अवरोध कहो कहाँ से ?
ये सोच के सतत संयत साधनार्थी
होवे न गौतम कभी, पल भी प्रमादी ।।३४।।

अकलेवर सेणिमूसिया,
सिद्धिं गोयम ! लोयं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३५।।

तूं देहमुक्त पद लब्धि सुलाभ पाके
श्रेणी महाक्षपक की परिरूढ होके ।
जाओ अनुत्तर महाशिव सिद्धि लोक
होवे न गौतम कभी, पल का प्रमाद ।।३५।।

बुद्धे परि-णिव्वुडे चरे,
गामगए णगरे व संजए ।
संति-मग्गं च बूहए,
समयं गोयम ! मा पमायए।।३६।।

तत्त्वज्ञ शान्त अरु संयत भावपूर्ण
ग्रामादि में नगर में विचरो कहीं भी ।
संवर्धना नित करो शिव शान्ति धर्म
हो वो न गौतम कभी, पल भी प्रमादी ।।३६।।

बुद्धस्स णिसम्म भासियं,
सुकहिय-मट्ठपओव-सोहियं ।
रागं दोसं च छिंदिया,
सिद्धिगइं गए गोयमे।।३७।।

अर्थादि से व पद से परिशुद्ध रूप
वाणी विशेष सुन के अरिहन्त जी की ।
संसार छेदन किया, शिव लोक पाया
श्री गौतमर्षि मुनि ने, यह तथ्य जाने ।।३७।।
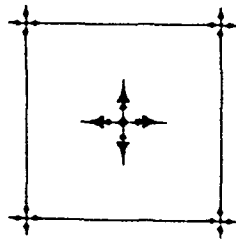
११ अध्ययन : बहुश्रुतपूजा

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत ग्यारहवें अध्ययन का नाम बहुश्रुतपूजा है। इसमें बहुश्रुत की भावपूजा–महिमा एवं जीवन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।
- प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत का अर्थ–चतुर्दशपूर्वधर, सर्वाक्षरसन्निपाती, निपुण साधक के रूप में है।
- विभिन्न आगमों में बहुश्रुत के विभिन्न अर्थ दृष्टिगोचर होते है, तथा–दशवैकालिकसूत्र में 'आगमवृद्ध', सूत्रकृतांग में 'शास्त्रार्थपारंगत', बृहत्कल्प में बहुत–से सूत्र अर्थ और तदुभय के धारक', व्यवहारसूत्र में–जिसको अंगबाह्य, अंगप्रविष्ट आदि बहुत प्रकार के श्रुत–आगमों का ज्ञान हो तथा जो बहुत–से साधकों की चारित्रशुद्धि करने वाला एव युगप्रधान हो। स्थानांगसूत्र के अनुसार सूत्र और अर्थरूप से प्रचुरश्रुत (आगमों) पर जिसका अधिकार हो, अथवा जो जघन्यतः नौवें पूर्व की तृतीय वस्तु का और उत्कृष्टतः सम्पूर्ण दश पूर्वों का ज्ञाता हो; वह बहुश्रुत है। इसका पर्यायवाची बहुसूत्र शब्द भी है, जिसका अर्थ किया गया है–जो आचारांग आदि बहुत–से कालोचित सूत्रों का ज्ञाता हो।
- प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत और अबहुश्रुत का अन्तर बताने के लिए सर्वप्रथम अबहुश्रुत का स्वरूप बताया गया है, जो कि बहुश्रुत बनने वालो को योग्यता, प्रकृति, अनासक्ति, अलोलुपता एवं विनीतता प्राप्त करने के विषय मे गंभीर चेतावनी देने वाला है। तत्पश्चात् तीसरी और चौथी गाथा में अबहुश्रुतता और बहुश्रुतता की प्राप्ति के मूल स्रोत शिक्षाप्राप्ति के अयोग्य और योग्य के क्रमशः 5 और 8 कारण बताए गए है। तदनन्तर छठी से तेरहवी गाथा तक अबहुश्रुत और बहुश्रुत होने में मूल–कारणभूत अविनीत और सुविनीत के लक्षण बताए गए हैं। इसके पश्चात् बहुश्रुत वनने का क्रम

बताया गया है।

- इतनी भूमिका बांधने के बाद शास्त्रकार ने अनेक उपमाओं से उपमित करके बहुश्रुत की महिमा, तेजस्विता, आन्तरिकशक्ति, कार्यक्षमता एवं श्रेष्ठता को प्रकट करने के लिए उसे शख, अश्व, गजराज, उत्तम वृषभ आदि की उपमाओं से अलंकृत किया है।
- अन्त मे बहुश्रुतता की फलश्रुति मोक्षगमिता बताकर बहुश्रुत बनने की प्रेरणा की गई है।
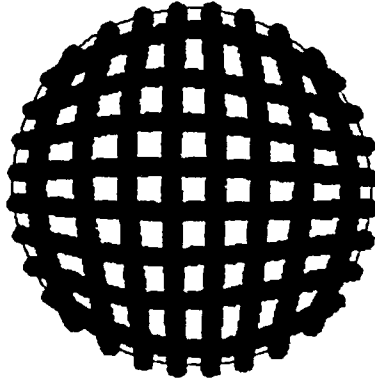
११. बहुश्रुतपूजा

संजोगा विप्प-मुक्कस्स,
अणगारस्स भिक्खुणो ।
आयारं पाउकरिस्सामि,
आणुपुव्विं सुणेह मे।।१।।

संयोगमुक्त अनगार सुसाधुता के-
आचार के कथन को करता यथार्थ ।
दत्तावधान सुनना क्रमशः मनोज्ञ
श्री वीतराग यति धर्म सुलाभकारी ।।१।।

जे यावि होइ णिव्विज्जे,
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
अभिक्खणं उल्लवई,
अविणीए अबहुस्सुए।।२।।

विद्याविहीन अथवा बुध, गर्वयुक्त-
लोभाभिभूषित अनर्गल शब्द भाषी ।
जेता नहीं सतत इन्द्रिय यूथ का जो-
संबुद्धिहीन अबहुश्रुत है कहाता ।।२।।

अह पंचहिं ठाणेहिं,
जेहिं सिक्खा ण लब्भइ ।
थंभा कोहा पमाएणं,
रोगे-णालस्सएण य।।३।।

हैं पाँच कारण अशिक्षण के विशेष-
क्रोध-प्रमाद अभिमान व रोग राग ।
आलस्य दोष दव दाह विदग्ध देह
अज्ञान सर्व विधि से लहता विमूढ़ ।।३।।

अह अट्ठहिं ठाणेहिं,
सिक्खा सीलेत्ति वुच्चइ ।
अहस्सिरे सया दंते,
ण य मम्म-मुदाहरे।।४।।

छन्द-धनाक्षरी

हास परिहास की प्रवृत्ति नहीं होत जाके
सदा शान्त दान्त आत्म तत्त मांहि खोवे है।
करे न रहस्य भेद काऊ को, गभीर मन
सुशील आचार भृत, भरपूर जोवे है ।

णासीले ण विसीले,
ण सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए,
सिक्खा-सीलेत्त वुच्चइ।।५।।

अनाचार दोष चय होवे व कलंक युत
रसमय लोलुप स्वभाव ने निगोवे है ।
क्रोध हीन सत्यवादी सदाचारी सविशेष
आतम समाधि साधि, शिक्षा शील होवे है ।।४-५।।

अह चद्दसहिं ठाणेहिं,
वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चइ सो उ,
णिव्वाणं च ण गच्छइ ।।
अभिक्खणं कोही हवइ,
पबंधं च पकुव्वइ ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ,
सुयं लद्धूण-मज्जइ ।।
अवि पाव-परिक्खेवी,
अवि मित्तेसु कुप्पइ ।
सु प्पियस्सावि मित्तस्स,
रहे भासइ पावयं ।।
पइण्णवाई दुहिले,
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते,
अविणीए त्ति वुच्चइ।।६-६।।

क्रोध करे बार.बार, लम्ब मान करि राखे
मित्रता विहीन श्रुत पाय गरवावे है ।
स्खलना में अपमान मित्र पर क्रोध धार
प्रिय मित्र निन्दन को भाव हिय लावे है ।
परताप असम्बद्ध द्रोही अभिमानी होवे
रसलोभी कामी स्वार्थ सूखापन छावे है ।
चौदह प्रकार व्यवहार साधु यदि करे
अविनीत, मोक्ष पद नाहि कभी पावे है ।।६-६।।

अह पण्णरसहिं ठाणेहिं
सुविणीएत्ति वुच्चइ ।
णीयावत्ती अचवले,
अमाई अकुऊहले ।।
अप्पं च अहिक्खिवइ,
पवंधं च ण कुव्वइ ।

कौतुक विहीन नम्र अचपल दम्भ हीन
परनिन्दा-करण-प्रवृत्ति, नहि भावे है ।
अतिक्रोध करे नाही, सुहृद कृतज्ञ होवे
श्रुत पाय अहंकार मन में न लावे है ।
दोष में न अपमान, मित्र पर क्रोध नहि
उपकार, प्रेम, कुल, लज्जा भाव छावे है ।

मेत्तिज्जमाणो भयइ,
सुयं लद्धुं ण मज्जइ ॥
ण य पाव-परिक्खेवी,
ण य मित्तेसु कुप्पइ ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स,
रहे कल्लाण भासइ ॥
कलह-डमर-वज्जिए,
बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिमं पडिसंलीणे,
सुविणीए त्ति वुच्चइ॥१०-१३॥

समाहित होके, आत्मलीन भाव पाले नित
बुद्धिमान साधु सुविनीत कहलावे है ॥१०-१३॥

छन्द-बसन्ततिलका

वसे गुरुकुले णिच्चं,
जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई,
से सिक्खं लद्धु-मरिहइ॥१४॥

जो नित्य ही गुरु सुसेवक रूप में है
योगोपधान रत है प्रिय भावना भृत् ।
माधुर्यपूर्ण वचनादिक हैं मनोज्ञ
शिक्षा विशेष लहता, वह नात्र शंका ॥१४॥

जहा संखम्मि पयं,
णिहियं दुहओ वि विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू,
धम्मो कित्ती तहा सुयं॥१५॥

जैसे सुशंख परिरक्षित दुग्ध नैज-
आधार से व निज से परिशोभता है ।
वैसे विकार-परिमुक्त बहुश्रुतादि-
संयुक्त भिक्षु, परिशुद्ध सदा सुहाता ॥१५॥

जहा से कंबोयाणं,
आइण्णे कंथए सिया ।
आसे जवेण पवरे,
एवं हवइ बहुस्सुए॥१६॥

कम्बोज-देशगत कन्थक अश्व जैसे-
जाति प्रधान अरु वेग विशेषशील ।
वैसे बहुश्रुत निधान जिनागमों में
कीर्ती सुधर्म उसमें, श्रुत शोभते हैं ॥१६॥

जहाइण्ण समारूढे,
सूरे दढ-परक्कमे ।

जाति-प्रधान हय पृष्ठ सुखाधिरूढ
वीराग्रणी विजय लाभ वरे, सहर्ष ।

उभमओ णंदि-घोसेणं,
एवं हवइ बहुस्सुए।।१७।।

वैसे बहुश्रुत सदा जयकारिता से-
होता सुशोभित, समग्र यशोऽवदात ।।१७।।

जहा करेणु-परिकिण्णे,
कुंजरे सट्ठिहायणे ।
बलवंते अप्पडिहए,
एवं हवइ बहुस्सुए।।१८।।

जैसे करी कलित काय करेणुओं से-
होता पराजित नहीं, परहस्तियों से ।
वैसे बहुश्रुत कदापि किसी प्रकार-
पाता पराजय नहीं, गुणशालिता से ।।१८।।

जहा से तिक्खसिंगे
जायखंधे विरायइ ।
वसहे जूहाहिवई,
एवं हवइ बहुस्सुए।।१९।।

जैसे बलिष्ठ वृषभाधिप तीक्ष्ण शृंग-
यूथाधिपत्य लहके, परिशोभता है ।
वैसे बहुश्रुत विशेष महामुनी भी
शोभा विशिष्ट लहता गण मध्यचारी ।।१९।।

जहा से तिक्खदाढे,
उदग्गे दुप्पहंसए ।
सीहे मियाण पवरे,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२०।।

जैसे सुतीक्ष्ण दृढ़ दाढ़ बलिष्ठसिंह-
होता मृगेन्द्र पशु मध्य बलाभिशाली ।
वैसे बहुश्रुत विशेष गणी गरीयान्-
अन्यान्य-तैर्थिक समक्ष सदा सुहाता ।।२०।।

जहा से वासुदेवे,
संख-चक्क-गदा-धरे ।
अप्पडिहय-बले जोहे,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२१।।

शंखास्त्र चक्र रु गदाधर वासुदेव-
योद्धा विशिष्ट अपराजित रूप सोहे ।
वैसे बहुश्रुत सदा परतीर्थिकों में-
शोभायमान बनता, जय लाभकारी ।।२१।।

जहा से चाउरंते,
चक्कवट्टी-महिड्ढिए ।
चोद्दस रयणाहिवई,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२२।।

वैसे विशिष्टतम ऋद्धि सुयुक्त चक्री-
होता, चतुर्दश-सुरत्न-धनी-प्रशस्त-।
स्वामी-तथैव परिपूर्ण गुणाधिकारी-
विद्या-विनीत जग मध्य सुकीर्ति पाता ।।२२।।

जहा से सहस्सक्खे,
वज्जपाणी पुरंदरे ।
सक्के देवाहिवई,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२३।।

जैसे सहस्र नयनाहित, वज्रपाणि-
देवादि संस्तुत महेन्द्र पुरन्दरादि-।
वृत्रारि शक्र, मघवा भव मध्य राजे
वैसे बहुश्रुत सदा परिशोभते हैं ।।२३

जहा से तिमिर-विद्धंसे,
उत्तिट्ठंते दिवायरे ।
जलंते इव तेएण,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२४।।

गाढान्धकार-परिनाशक-दिव्य सूर्य-
उद्दीप्त तेज परिपूरित राजता है ।
वैसे तपस्विगण मध्य गुणाग्रगामी
होता बहुश्रुत यती परिदीप्तिशाली ।।२४

जहा से उडुवई चंदे,
णक्खत्त-परिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२५।।

नक्षत्रवृन्द परिवार समेत चन्द्र-
राकेश हो, चमकता परिपूर्ण होके ।
वैसे बहुश्रुत मुनी लह आधिपत्य
पाता विशिष्ट गण में परिदिव्यता को ।।२५।

जहा से सामाइयाणं,
कोट्ठागारे सुरक्खिए ।
णाणा-धण्ण-पडिपुण्णे,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२६।।

व्यापार कार्यरत और कृषीवलादि-
भाण्डार नित्य भरते विविध प्रकार ।
वैसे बहुश्रुत यती परिपूर्ण होता
आत्मोपकारि विधि से विनिवृत्त चित्त ।।२६।

जहा सा दुमाण पवरा,
जंबू णाम सुदंसणा ।
अणाढियस्स देवस्स,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२७।।

जैसे अनादृत सुदेव सुदर्शनादि-
जम्बू विशेष तरु चर्चित पादपों में ।
वैसे बहुश्रुत सुपूज्य पुनीत धाम-
शोभा समग्र लहता नित साधुओं में ।।२७।

जहा सा णईण पवरा,
सलिला सागरं-गमा ।
सीया णीलवंत-पवहा,
एवं हवइ बहुस्सुए।।२८।।

जो नीलवन्त नग से ध्रुव निस्सृता हो
वारि प्रवाहमय सागर में विलीन ।
सीता नदी सब नदी नद में प्रधान
वैसे वहुश्रुत सुसंगति में प्रशस्त ।।२८।।

जहा से णगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी । णाणोसहि-पज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए।।२६।।	जैसे अनेक विध औषध से प्रदीप्त- सर्वातिशायि गिरि मन्दर मेरुकादि- माने विशिष्टतम हैं, सब साधुओं में वैसे बहुश्रुत विशिष्ट यशस्तपस्वी ।।२६।।
जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए । णाणा-रयण-पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए।।३०।।	जैसे सदैव जल से परिपूर्ण अब्धि शोभे स्वयं भुरमणाभिध रत्नयुक्त । अक्षय्य बोध परिशोभित तत्प्रकार होता बहुश्रुत यती शमन प्रधान ।।३०।।
समुद्द-गम्भीरसमा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया । सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्मं गइ मुत्तमं गया।।३१।।	अम्भोधि तुल्य थिर कष्ट दशा विहीन जेता समग्र, अपराजित चित्त वृत्ति । सम्पूर्ण कर्म लय को करके तपस्वी- पाता, बहुश्रुत गती परमोच्चता की ।।३१।।
तम्हा सुय-महिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठ गवेसए । जेणऽप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि।।३२।।	मोक्ष-स्वरूप-पर है, जिसकी सुदृष्टि- अन्वेषण प्रखर हो, श्रुत-आश्रयी हो । लोकद्वयी सफलता ध्रुव लाभ हेतु वो ही सतर्क बनता, इसमें न शंका ।।३२।।

१२ अध्ययन : हरिकेशीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'हरिकेशीय' है। इसमे साधुजीवन अंगीकार करने के पश्चात चाण्डालकुलोत्पन्न हरिकेशबल, महाव्रत, समिति, गुप्ति, क्षमा आदि दशविध श्रमणधर्म एवं तप, संयम की साधना करके किस प्रकार उत्तमगुणधारक, तपोलब्धिसम्पन्न, यक्षपूजित मुनि बने और जातिमदलिप्त ब्राह्मणों का मिथ्यात्व दूर करके किस प्रकार उन्हें सच्चे यज्ञ का स्वरूप समझाया; इसका सांगोपांग स्पष्ट वर्णन किया है।

१२. हरिकेशीय

सोवाग-कुल-संभूओ,
गुणुत्तर धरो मुणी ।
हरिएसबलो णाम,
आसि भिक्खू जिइंदिओ।।१।।

चाण्डाल के कुल विशेष गृहीत जन्म
ज्ञानादि उत्तमधनादिक से विशिष्ट ।
थे इन्द्रियादि विजयी शमनैकवृत्ति
प्रख्यात भिक्षु हरिकेशबलाभिधान ।।१।।

इरि-एसण-भासाए,
उच्चार-सिमिईसु य ।
जओ आयाण-णिक्खेवे,
संजओ सुसमाहिओ।।२।।

इर्यैषणा व परिभाषण धर्मधारी
आदान छेद रु पुरीष विमोचनादि-।
की पाँच रूप समिती नित यत्नशील
आश्वस्त थे, सतत संयम में तपस्वी ।।२।।

मण-गुत्तो वय-गुत्तो,
काय-गुत्तो जिइंदिओ ।
भिक्खट्ठा बम्भ-इज्जम्मि,
जण्णवाडं उवट्ठिओ।।३।।

वाक्काय चित्त परिगोपक सन्मुनीश-
पूरे जितेन्द्रिय, वियाचन जीवितार्थी ।
यज्ञ स्थली पर गए, द्विज मण्डली में-
याग-क्रिया कर रहे, यजनाधिकारी ।।३।।

तं पासिऊणं एज्जंतं,
तवेण परिसोसियं ।
पंतोवहि उवगरणं,
उवहसंति अणारिया।।४।।

सारा शरीर तप से, परिशुष्क-सा था
थे जीर्ण वस्त्र, उपधी बहुधामलीन ।
भिक्षार्थ आगत मुनीश्वर का, अनार्य-
हास्यादिमत्त बनके, करने लगे वे ।।४।।

जाईमय-पडिथद्धा,
हिंसगा अजिइंदिया ।
अबम्भ-चारिणो बाला,
इमं वयणमब्बवी।।५।।

उद्दीप्त जाति मद से उपहासकारी-
हिंसा प्रधान अजितेन्द्रिय कामचारी ।
अब्रह्मचर्य निज वाचक बोधहीन
बोले कठोर रव यो द्विज आत्ममानी-।।५।।

कयरे आगच्छइ दित्त-रूवे,
काले विकराले फोक्कणासे ।
ओमचेलए पंसु-पिसायभूए,
संकरदूसं परिहरिय कंठे।।६।।

बीभत्स रूप, अरु कृष्ण, व धूल नाक
बेडोल अंग विकराल शरीरवाला-
होके पिशाच, अरु गर्हित वस्त्रधारी-
है आ रहा, कृशितकाय मलीन कौन ? ।।६।।

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे,
काए व आसा-इह-मागओसि ।
ओमचेलया पंसु-पिसायभूया,
गच्छ-क्खलाहि किमिहं ठिओसि।।७।।

कुत्सा सरूप तन, वस्त्र विहीन भूत
पांशू पिशाच सम है विकराल रूप ।
तूं कौन है ? किस लिये, किसने बुलाया
आया, सुदूर हट जा, न रहो, यहाँ पै ।।७।।

जक्खे तहिं तिंदुय-रुक्खवासी,
अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स ।
पच्छाय-इत्ता णियगं सरीरं,
इमाइं वयणाइ-मुदाहरित्था।।८।।

पूरा महर्षि अनुकम्पन-भावना से-
यक्ष स्वरूप नित तिन्दुक वृक्षवासी-।
गात्र-प्रगोपन-विधान समर्थ सद्यः-
तत्काय में कर निवास, सगर्व बोला ।।८।।

समणो अहं संजओ बम्भयारी,
विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले,
अण्णस्स अट्ठा इह-मागओमि।।९।।

हूँ ब्रह्मचर्य धृति, संयम साधनार्थी-
सम्पत्ति, पाक विरही, अपरिग्रही भी-।
भिक्षाचरी नियत कालिक एषणीय-
आहार के हित यहाँ, समुपस्थिती है ।।९।।

विय-रिज्जइ खज्जइ भुज्जई य,
अण्णं पभूयं भवयाण-मेयं ।
जाणाहि मे जायण जीविणुत्ति,
सेसावसेसं लहऊ तवस्सी।।१०।।

प्राचुर्य अन्न बहुधा सब पा रहे हैं
भुक्ति प्रभोग विधि से ध्रुव हो रहा है ।
भिक्षा प्रधान यह जीवन है बनाया
शेषावशेष-हित ही परियाचना है ।।१०।।

उवक्खडं भोयण माहणाणं,
अत्तट्ठियं सिद्ध-मिहेगपक्खं ।
ण उ वयं एरिस-मण्णपाणं
दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओसि।।११।।

विप्रादि के हित किया, यह भव्य भोज्य
है एक पक्ष हित देय, नहीं किसी को ।
यज्ञार्थ आगत करे, इसका प्रयोग
तेरे लिए नहि यहाँ, फिर है खड़ा क्यों ? ।।११।।

थलेसु बीयाई ववंति कासगा,
तहेव णिण्णेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह-मज्झं,
आराहाए पुण्ण-मिणं खु खित्तं।।१२।।

ऊंची धरा पर तथा विपरीत में भी-
जैसे किसान समभावित बीज बोता ।
वैसा स्वरूप धर के कुछ दान दे दो
आराधना तुम करो, बन पुण्यशाली ।।१२।।

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए,
जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा ।
जे माहणा जाइ विज्जोव-वेया,
ताइं तु खेत्ताइं सु पेसलाइं।।१३।।

क्षेत्र स्वरूप हमको प्रतिभात भी है
बीजोप्ति से प्रचुर लाभ मिले जहाँ से ।
विद्या सदन्वय विशिष्ट सुजाति विप्र-
है, क्षेत्र पुण्य इसमें, कुछ भी न शंका ।।१३।।

कोहो य माणो य वहो य जेसिं,
मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जा विहूणा,
ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं।।१४।।

जो क्रोध मान परिपूर्ण असत्य हिंसा ।
स्तेयादि दोष चय दूषित संग्रहार्थी ।
वे विप्र जाति परिबोध विहीन, पीन
है क्षेत्र पापमय ही, इसमें न शंका ।।१४।।

तुमेत्थ भो ! भार धरा गिराणं,
अट्ठं ण जाणेह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति,
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं।।१५।।

वेदत्रयी पठन भी तव अर्थ शून्य
वाणी प्रभार वहते श्रम साध्य सारा ।
जो उच्च नीच कुल में, कर गोचरी को
निर्वाहता यति वही सुकृती विशेष ।।१५।।

अज्झा-वयाणं पडिकूलभासी,
पभास से किंणु सगासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अण्णपाणं,
ण य णं दाहामु तुमं णियण्ठा।।१६।।

निर्ग्रन्थ अज्ञ ! वकते विपरीत पूर्ण
वेदाधिकारि बुध की यह निनन्दना क्यों ?
हो जाय नष्ट जल अन्न न दे, [illegible]
अन्यत्र ही गमन हो, द्रुत [illegible] ।।१६।।

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स,
गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स ।
जइ मे ण दाहित्थ अहेसणिज्जं,
किमज्ज जण्णाण लहित्थ लाहं।।१७।।

मैं हूँ सदा समिति-संभृत, गुप्तियुक्त
एवम् जितेन्द्रिय विबुद्ध सदैषणीय-।
आहार को यदि मुझे नहि दे रहे हो-
कोई न लाभ इससे तुमको मिलेगा ।।१७

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा,
अज्झावया वा सह खण्डिएहिं ।
एयं खु दण्डेण फलेण हंता,
कंठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं।।१८।।

है क्षत्रपादिक सुपाक विशेषविज्ञ
अध्यापकादि अरु छात्र जहाँ कहीं भी-।
आवे, सुदण्ड धर के फलकादिकों से-
चन्द्रार्ध देकर, निरादर से निकाले ।।१८

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता,
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव,
समागया तं इसिं तालयंति।।१६।।

वाणी प्रयुक्त सुन पाठक विज्ञ-दिष्ट
आए, वहाँ बहुत छात्र कुमार दौड़े ।
दण्डादि बेंत अरु चाबुक हाथ लेके
उत्पीड़ना कर रहे, ऋषि की हताश ।।१६।

रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया,
भद्दत्ति णामेण अणिंदियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं,
कुद्धे कुमारे परिणिव्ववेइ।।२०।।

पुत्री अनिन्द्य गुणशील सुशोभनीया
भद्राख्य कौशलिक भूप सुपुण्य जाता-।
आई, प्रहार लख के उनके समीप-
संबुद्ध विप्र बटु संचय को, निवारा ।।२०।

देवाभिओगेण णिओइएणं,
दिण्णामु रण्णा मणसा ण झाया ।
णरिंद देविंदभिवंदिएणं,
जेणामि वंता इसिणा स एसो।।२१।।

संयोग से जनक ने, मुझको दिया था
चाहा नहीं, हृदय से, दृढ़ संयमी ने-
छोड़ा, कभी न अपना, ऋषि ने बनाया
देवेन्द्र भूप परिपूजित पाद ये हैं ।।२१।

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा,
जिइंदिओ संजओ बम्भयारी ।
जो मे तया णेच्छइ दिज्जमाणिं,
पिउणा सयं कोसलिएण रण्णा।।२२।।

है उग्र दिव्य तप से अभितप्तपूर्ण
त्यागी, जितेन्द्रिय, सुसंयम से विशिष्ट ।
भूपेन्द्र कौशलिक ने मुझको दिया था
चाहा नहीं, हृदय से, परिहेय माना ।।२२।।

महाजसो एस महाणुभागो,
घोरव्वओ घोर परक्कमो य ।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं,
मा सव्वे तेएण भे णिद्दहेज्जा।।२३।।

हैं दिव्य दीप्ति इनमें, अतिशक्तिशाली
हैं घोर साधक, महायश से प्रपूर्ण ।
कोई करे न इनकी, अवहेलना को
ये भस्मभूत कर दें, निज तेज से ही ।।२३।।

एयाइं तीसे वयणाइं सोच्चा,
पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं ।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए,
जक्खा कुमारे विणिवारयंति।।२४।।

आचार्य धर्म सहचारिणि साधु शब्द-
यक्षाधिराज सुन के शुचि-सावधान! ।
होके विनीत मन से मुनि सेवनार्थी
संरोध कारक बने, द्विज सूनुओं के ।।२४।।

ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे,
असुरा तहिं तं जणं तालयंति ।
ते भिण्णदेहे रुहिरं वमंते,
पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो।।२५।।

आकाश में स्थित भयंकर रूप धारी
तीखा महासुर सरूप विशेष बुद्ध ।
यक्ष प्रताड़ित कुमार, हुए विपन्न
रक्तोष्ण-निर्वमन देख, कहा सती ने ।।२५।।

गिरिं णहेहिं खणह,
अयं दंतेहिं खायह ।
जायतेयं पाएहिं हणह,
जे भिक्खुं अवमण्णह।।२६।।

ये भिक्षु का कर रहे, अवमानना हो
वे तो करोरुह विदीर्ण करे महीध्र ।
दाँतो तले कठिन लौह विचर्बणा है
है अग्नि को कुचलना क्रम हेलना से ।।२६।।

आसीविसो उग्गतवो महेसी,
घोरव्वओ घोर परक्कमो य ।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा,
जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह।।२७।।

आशीविष प्रवर घोर तपोधनी हैं
दिव्यव्रती अरु महर्षि गुणी विशिष्ट ।
भिक्षा समै व्यथित जो करता विमूढ़
मानों, निपात लहता अनलाग्र-मध्य ।।२७।।

सीसेण एयं सरणं उवेह,
समागया सव्व जणेण तुब्भे ।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा,
लोगंपि एसो कुविओ डहेज्जा।।२८।।

इच्छा विशेष यदि जीवन की कहीं है
तो नम्र आकर नमो शरणागती से ।
होवे सकोप ऋषि तो ध्रुव सत्य जानो
सम्पूर्ण विश्व परिदग्ध अवश्य होगा ।।२८।।

अवहेडिय-पिट्ठिस-उत्तमंगे,
पसारिया बाहु अकम्म चिट्ठे ।
णिब्मेरियच्छे रुहिरं वमंते,
उड्ढंमुहे णिग्गय जीह-णेत्ते।।२६।।

आघातकारी बटुवृन्द दशा विचित्र-
थी, पीठ बाहु परि पीडित दीन हीन।
निश्चेष्टता नयन की परिवृत्तिता थी
जिह्वा विकार मुख ऊपर हो गया था ।।२६।।

ते पासिया खंडिय कट्ठभूए,
विमणो विसण्णो अह माहणो सो ।
इसिं पसाएइ सभारियाओ,
हीलं च णिंदं च खमाह भंते!।।३०।।

निश्चेष्ट छात्र चय देख, करे विषाद
पत्नी समेत द्विज गये मुनि के समक्ष-।
बोले, विनम्र अपराध विनिन्दनादि-
को दे क्षमा, मुनि ! दयामय आप ही हैं ।।३०।।

बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं,
जं हीलिया तस्स खमाह भंते !
महप्पसाया इसिणो हवंति,
ण हु मुणी कोव-परा हवंति।।३१।।

भन्ते ! विमूढ सब बालक हैं विशेष-
है आपका समवहेलन जो यहाँ पै-।
देवे क्षमा, ऋषि, रहे नित मोदमान
संक्रोध की नहि किसी पर दृष्टि डाले ।।३१।।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च,
मणप्पदोसो ण मे अत्थि कोई ।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति,
तम्हा हु एए णिहया कुमारा।।३२।।

मेरा न मानस कभी विपरीत भी था
औ है नहीं, इस समै व भविष्य में भी।
सेवार्थ यक्षपति ने द्विज आत्मजों को-
मारा प्रताड़ित किया, मम मोदना ना ।।३२।।

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा,
तुब्भे ण वि कुप्पह भूइपण्णा ।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो,
समागया सव्व-जणेण अम्हे।।३३।।

धर्मार्थ का सत-सरूप सदैव शोभे
रक्षा प्रधान सम मंगल बुद्धियुक्त ।
न क्रोध भाव रहता, मुनि में विशेष
संपूज्यपाद शरणागत हो गए हैं ।।३३।।

अच्चेमु ते महाभागा
ण ते किंचि ण अच्चिमो ।
भुंजाहि सालिमं कूरं,
णाणा-वंजण-संजुयं।।३४।।

पूजा करें, हम समाहित भावना से
बद्धांजली नत छमापन चाहते हैं ।
होके प्रसन्न दधि मिश्रित शालि शाक-
निष्पन्न-भोजन करे, मृदु अर्थना है ।।३४।।

इमं च मे अत्थि पभूयमण्णं,
तं भुंजसू अम्ह अणुग्गहट्ठा ।
बाढं त्ति पडिच्छइ भत्त-पाणं,
मासस्स उ पारणए महप्पा।।३५।।

अन्नादि है प्रचुर देय सरूपसत्या
स्वीकार ले, मम अनुग्रह के लिए ही ।
माना तुरन्त मुनि ने करुणापरीत्त
मासादि पारण निमित्त विशुद्ध जान ।।३५।।

तहियं गंधोदय-पुप्फवासं,
दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा ।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं,
आगासे अहोदाणं य घुट्ठं।।३६।।

देवादि ने तब सुगन्धित पुण्य-वारि-
पर्याप्त दिव्य धन की परिवर्षणा की ।
वाद्यादि दुन्दुभि बजी नभ में विशिष्ट-
चर्चा सुदेव करते, शुभ दान की हैं ।।३६।।

सक्खं खु दीसइ तवो-विसेसो,
ण दीसई जाइ-विसेस कोई ।
सोवाग-पुत्तं हरिएस साहू,
जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा।।३७।।

प्रत्यक्ष दीख पड़ती गरिमा तपों की
ना जाति का गुण रहा, न विशेषता ही ।
ऋद्धि प्रपूर्ण हरिकेश चमत्कृती है
चाण्डाल पुत्र फिर भी यशसावदात ।।३७।।

किं माहणा जोइ समारंभंता,
उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं,
ण तं सुइट्ठं कुसला वयंति।।३८।।

विप्रो ! न शुद्धि, यजनार्जित दोष ही है
बाह्यादि रूप जल से, यदि चाहते हो ।
होगा न लाभ कुछ भी मनोऽर्थ सिद्धि
ऐसा कहा विमल बुद्धि जिनेश्वरों ने ।।३८।।

कुसं च जूवं तण-कट्ठ-मग्गिं,
सायं च पायं उदगं फुसंता ।
पाणाइं भूयाइं विहेडयता,
भुज्जो वि मंदा पकरेह पावं।।३९।।

दर्भादि-यूपतृणकाष्ठजलादि योग-
अग्नि प्रदीपन-विधी नहि बोध कार्य ।
वो मन्द बुद्धि नर की दुरिताचरी है
जीवातिपातनकरी ध्रुव बन्ध-हेतु ।।३९।।

कहं चरे भिक्खु वयं जयामो,
पावाइं कम्माइं पुणोल्लयामो ।
अक्खाहि णे संजय जक्ख-पूइया,
कहं सुइट्ठं कुसला वयंति।।४०।।

हे भिक्षु ! हो किस विधी नित सत्प्रवृत्ति
कैसे करें यजन, पाप निराकृती हो ।
हे यक्ष पूजित ! सुसंयत साधनार्थी!
देवे, विबोध हमको वह यज्ञ कैसा ? ।।४०।।

छज्जीवकाए असमारभंता,
मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं,
एयं परिण्णाय चरंति दंता।।४१।।

स्वान्तादि इन्द्रिय सुसंयम से प्रशस्त
पृथ्व्यादि जीव छह की करते सुरक्षा ।
अस्तेय सत्य व परिग्रह संग योषित्-
माया व मान सबके परिहारकारी ।।४१।।

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं,
इह जीवियं अणवकंखमाणो ।
वोसट्ठकाया सुइ चत्तदेहा,
महाजयं जयई जण्णसिट्ठं।।४२।।

जो पांच संवर सुपूरित, संवृती है
कांक्षाविहीन तनु का ममकारहारी ।
एवम् पवित्र मन है, नहि वासनाऐं
वे श्रेष्ठ यज्ञ धन का अधिकार पाते ।।४२।।

के ते जोई के य ते जोइठाणे,
का ते सुया किं य ते कारिसंगं ।
एहा य ते कयरा संति भिक्खू,
कयरेण होमेण हुणासि जोइं।।४३।।

है कौन अग्नि ? कहिए ? पद भी बतायें ?
दिव्य स्रुवादि धृत छेपक कौन सा है ? ।
बहि प्रदीप्त कर कौन करीष-रूप
क्या शांत पाठ ? विधि से हवन प्रकार ? ।।४३।।

तवो जोई जीवो जोइठाणं,
जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मेहा संजमजोगसंती,
होमं हुणामि इसिणं पसत्थं।।४४।।

है अग्नि उन्नतिकरी द्विविधा तपस्या
संस्थानजीव उसका स्रुवयोग तीनों ।
काया करीष समिधादि विभिन्न कर्म
है शान्ति पाठ परिसंयम दिव्य यज्ञ ।।४४।।

के ते हरए के य ते संतितित्थे,
कहिं सिणाओ व रयं जहासि ।
आइक्ख णे संजय जक्ख-पूइया,
इच्छामो णाउं भवओ सगासे।।४५।।

हे यक्ष पूजित ! सुसंयति पूर्ण साधो !
है कौन-सा ह्रद विशिष्ट व शान्तितीर्थ ।
मालिन्य दूर करता वह कौन थान ?
जिज्ञासु-भाव-भृत हूँ, हित कामना से ।।४५।।

धम्मे हरए बम्भे संति-तित्थे,
अणाविले अत्त-पसण्ण लेसे ।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो,
सुसीइ-भूओ पजहामि दोसं।।४६।।

है आत्मभाव युत मोद शुभादि लेश्या-
से युक्त धर्म मम पावन है तडाग-।
है तीर्थ शुद्ध परिपावन वम्मचर्य-
निर्मान्त कर्म रज दूर करूँ सदैव ।।४६।।

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं
महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिं सिणाया विमला विसुद्धा,
महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते।।४७।।

पूर्वोक्त को सतत पावन धर्म माना
हैं ये प्रशस्त नित मज्जन संयमी का ।
संशुद्ध रूप बन के मुनि तो पुनीत
होते प्रपन्न विपधि से विनिमुक्ति धाम ।।४७।।

१३ अध्ययन : चित्र–सम्भूतीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन का नाम 'चित्र–सम्भूतीय' है। इसमें चित्र और सम्भूत, इन दोनों के पाच जन्मों तक लगातार भ्रातृ–सम्बन्ध का और छठे जन्म मे पूर्वजन्मकृत सयम की आराधना एवं विराधना के फलस्वरूप पृथक्–पृथक् स्थान, कुल, वातावरण आदि का चित्रण करते हुए विसम्बन्ध (वियोग) का संवाद द्वारा निरूपण है।
- चित्र और सम्भूत दोनो की ओर से पूर्वभव में संयम की आराधना और विराधना का फल बता कर साधु–साध्वीगण के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक सुन्दर प्रेरणा दे जाता है। चित्र मुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती दोनों अपनी–अपनी त्याग और भोग की दिशा मे एक दूसरे को खींचने के लिए प्रयत्नशील हैं, किन्तु कामभोगो से सर्वथा विरक्त, सांसारिक सुखों के स्वरूपज्ञ चित्रमुनि अपने संयम में दृढ रहे, जबकि ब्रह्मदत्त गाढ चारित्रमोहनीयकर्मवश त्याग–संयम की ओर एक इंच भी न बढ़ा।
- बौद्ध ग्रन्थों मे भी इसी से मिलता–जुलता वर्णन मिलता है।

१३. चित्र सम्भूतीय

जाई पराजिओ खलु कासि,
णियाणं तु हत्थिण-पुरम्मि ।
चुलणीए बंभदत्तो,
उववण्णो पउम-गुम्माओ।।१।।

सम्भूत जाति पद से मुनि हार पाके
चक्रित्व का जब किया, मन में निदान-।
तो पद्म गुल्म मधि देव बने वहाँ पै
आये, तथैव चुलनी गृह ब्रह्मदत्त ।।१।।

कम्पिल्ले सम्भूओ चित्तो,
पुण जाओ पुरिम-तालम्मि ।
सेट्ठि-कुलम्मि विसाले,
धम्मं सोऊण पव्वइओ।।२।।

काम्पिल में प्रथम चित्त तथा द्वितीय-
भाई स्वयं पुरिमताल विशाल रूप ।
सम्भ्रान्त सेठ कुल में, जनमें यशस्वी
धर्मोपदेश सुनके, पर थे विरक्त ।।२।।

कंपिल्लम्मि य णयरे,
समागया दो वि चित्त-संभूया ।
सुह-दुक्ख-फल-विवागं,
कहेंति ते एक्क-मेक्कस्स।।३।।
चक्कवट्टी महिड्ढीओ,
बंभदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं,
इमं वयण-मब्बवी।।४।।

दोनों सहोदर मिले, विधि योग मुक्त-
की बातचीत सुख दुःख विपाककारी ।
चक्री समृद्ध सुतरां यशसावदात,
बोले, स्वबन्धु जन से, बहुमानपूर्ण ।।३-४।।

आसीमो भायरा दोवि,
अण्ण-मण्ण-वसाणुगा ।

दोनों परस्पर रहे मिलके सदैव
पूर्णानुरक्ति पलती कलिताभिराम ।

१३ अध्ययन : चित्र-सम्भूतीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन का नाम 'चित्र–सम्भूतीय' है। इसमें चित्र और सम्भूत, इन दोनों के पाच जन्मों तक लगातार भ्रातृ–सम्बन्ध का और छठे जन्म मे पूर्वजन्मकृत सयम की आराधना एवं विराधना के फलस्वरूप पृथक्–पृथक् स्थान, कुल, वातावरण आदि का चित्रण करते हुए विसम्बन्ध (वियोग) का संवाद द्वारा निरूपण है।
- चित्र और सम्भूत दोनो की ओर से पूर्वभव में संयम की आराधना और विराधना का फल बता कर साधु–साध्वीगण के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक सुन्दर प्रेरणा दे जाता है। चित्र मुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती दोनों अपनी–अपनी त्याग और भोग की दिशा में एक दूसरे को खींचने के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु कामभोगों से सर्वथा विरक्त, सांसारिक सुखों के स्वरूपज्ञ चित्रमुनि अपने संयम मे दृढ रहे, जबकि ब्रह्मदत्त गाढ चारित्रमोहनीयकर्मवश त्याग–संयम की ओर एक इंच भी न बढा।
- बौद्ध ग्रन्थों में भी इसी से मिलता–जुलता वर्णन मिलता है।

१३. चित्र सम्भूतीय

जाई पराजिओ खलु कासि,
णियाणं तु हत्थिण-पुरम्मि ।
चुलणीए बंभदत्तो,
उववण्णो पउम-गुम्माओ।।१।।

सम्भूत जाति पद से मुनि हार पाके
चक्रित्व का जब किया, मन में निदान-।
तो पद्म गुल्म मधि देव बने वहाँ पै
आये, तथैव चुलनी गृह ब्रह्मदत्त ।।१।।

कम्पिल्ले सम्भूओ चित्तो,
पुण जाओ पुरिम-तालम्मि ।
सेट्ठि-कुलम्मि विसाले,
धम्मं सोऊण पव्वइओ।।२।।

काम्पिल में प्रथम चित्त तथा द्वितीय-
भाई स्वयं पुरिमताल विशाल रूप ।
सम्भ्रान्त सेठ कुल में, जनमें यशस्वी
धर्मोपदेश सुनके, पर थे विरक्त ।।२।।

कंपिल्लम्मि य णयरे,
समागया दो वि चित्त-संभूया ।
सुह-दुक्ख-फल-विवागं,
कहेंति ते एक्क-मेक्कस्स।।३।।
चक्कवट्टी महिड्ढीओ,
बंभदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं,
इमं वयण-मब्बवी।।४।।

दोनों सहोदर मिले, विधि योग मुक्त-
की बातचीत सुख दुःख विपाककारी ।
चक्री समृद्ध सुतरां यशसावदात,
बोले, स्वबन्धु जन से, बहुमानपूर्ण ।।३-४।।

आसीमो भायरा दोवि,
अण्ण-मण्ण-वसाणुगा ।

दोनों परस्पर रहे मिलके सदैव
पूर्णानुरक्ति पलती कलिताभिराम ।

अण्ण-मण्ण मणुरत्ता,
अण्ण-मण्ण हिएसिणो।।५।।

भ्रातृत्व भाव परिभूषित भावना थी
आदर्श रूप हितकार विशेष भी थे ।।५।।

दासा दसण्णे आसी,
मिया कालिंजरे णगे ।
हंसा मयंग-तीरे य,
सोवागा कासि-भूमिए।।६।।

दोनों दशार्णपुर दास-सरूपधारी
कालिंजराभिध गिरी मृग रूपता थी ।
गंगा तटादि पर, हंस व काशि देश-
चाण्डाल के गृह विशेष रहे हुए थे ।।६।।

देवा य देव-लोगम्मि,
आसि अम्हे महिड्डिया ।
इमा णो छड्डिया जाई,
अण्ण-मण्णेण जा विणा।।७।।
कम्मा णियाण-प्पगडा,
तुमे राय ! विचिंतिया ।
तेसिं फल-विवागेण,
विप्पओग-मुवागया।।८।।

थे ऋद्धि पूर्ण अमरादि सरूप सौम्य-
है षष्ठ जन्म पर भाव समन्विती से ।
तेरे निदान कृत कर्म विशेष से ही-
पैदा हुए, अलग से विधि का विपाक ।।७-८।।

सच्च-सोय-प्पगडा,
कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो,
किणु चित्ते वि से तहा?।।९।।

हे चित्त ! पूर्वकृत कर्म विशेष से ही-
मैं सत्य शुद्ध फल में उपभोग रक्त,।
क्या भावना भर रहे, तुम भी तथैव ?
स्पष्ट प्रकाश पथ की परिकामना है ।।९।।

सव्वं सुचिण्णं सफलं णराणं,
कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं,
आया ममं पुण्ण-फलोववेए।।१०।।

पाते, समाचरित कर्म विपाक को भी-
होता तथा न फल भोग, किये विमुक्ति ।
सर्वोत्तमार्य अरु धर्म विशिष्ट आत्मा
मेरी सदा सुकृत संभृत भी रही है ।।१०।।

जाणासि संभूय ! महाणुभागं,
महिड्डियं पुण्ण-फलोववेयं ।

सम्भूत ! आत्म सम भाग्य विशेषशाली-
ओऋद्ध पुण्य फल से कलितावधान ।

चित्तं वि जाणाहि तहेव रायं,
इड्ढी जुई तस्स वि यप्पभूया।।११।।

जानो विचित्र रचनामय चित्त को भी
उद्योत ऋद्धि सुषमालसती यहाँ भी ।।११।।

महत्थरूवा वयण-प्पभूया,
गाहाणुगीया णर संघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सील-गुणोववेया,
इहं जयंते समणोमि जाओ।।१२।।

मैंने महार्थ थिविरादि निदिष्ट सार-
गाथा सुनी, जन समूह समेत दिव्य-।
संशील और गुण से युत हो विशेष-
श्रामण्य का पथ लिया, शिव सौख्यकारी ।।१२।।

उच्चोदए महु कक्के य बम्भे,
पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं,
पसाहि पंचाल-गुणोववेयं।।१३।।

उच्चोदयादि रमणीय अनेक रूप
प्रासादवृन्द उपहार सरूप चित्त ।
पांचाल के गृह उपस्थित है समृद्ध-
स्वीकार हो, सुखद सज्जित काम्यरम्य ।।१३।।

णट्टेहि गीएहि य वाइएहिं,
णारी जणाइं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइं इमाइ भिक्खू,
मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं।।१४।।

नाट्य प्रसंग अरु गीत व वाद्य योषित्-
पूरे घिरे, नित करो, उपभोग को भी ।
है ये तुझे प्रिय, न संयम सौख्यकारी
सत्यार्थ जान अब लों, दुख है प्रवज्या ।।१४।।

तं पुव्व-णेहेण कयाणुरागं,
णराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही,
चित्तो इमं वयण-मुदाहरित्था।।१५।।

धर्मार्थ तत्त्वविद माहन सद् हितैषी
प्राग् जन्म नेह भृत रंजित चारुचित्त ।
संशान्त चित्रमुनि ने करुणासुधा से
कामोपभोग भव में, नृप को कहायो ।।१५।।

सव्वं विलवियं गीयं,
सव्वं णट्टं विडंबियं ।
सव्वे आभरणा भारा,
सव्वे कामा दुहावहा।।१६।।

संगीत बोध सब ही परिलापतुल्य-
नृत्यादि नाटक कहा भ्रमणा प्रपूर्ण ।
आभूषणादिक तथा अतिभारकारी-
है काम भोग अति रंजित दुःखदायी ।।१६।।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु,
ण तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्त-कामाण तवो-धणाणं,
जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं।।१७।।

बाल प्रिय प्रबल से कलकाम सारे,
है दुःख पूर्ण पल भी, दिखता न सौख्य।
जेता स्मरारि विमुमुक्षु जहाँ कही भी-
पाता विशेष सुख को, जग में अपूर्व ।।१७।।

नरिंद ! जाई अहमा णराणं,
सोवाग-जाई दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्व-जणस्स वेस्सा,
वसीअ सोवागणिवेसणेसु।।१८।।
तीसे य जाईइ उ पावियाए,
वुच्छामु सोवाग-णिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा,
इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं।।१६।।

चाण्डाल जाति कुल में जनमे कभी थे
पायी वहाँ नित, तिरस्कृति भी अपार।
श्रेष्ठत्व है मिल रहा, इस जन्म में जो-
हैं ये विपाक शुभ कर्म समाश्रिती के ।।१८-१६।।

सो दाणिसिं राय! महाणुभागो,
महिड्ढिओ पुण्ण-फलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं,
आयाणहेउं अभिणिक्खमाहि।।२०।।

राज्याप्ति पुण्य चय से तुमको मिली है
सम्पन्नता विपुल पास विराजती है ।
त्यागो अशाश्वत अरे ! परिभोग सारे
संयाम में रमण के हित भावना हो ।।२०।।

इह जीविए राय ! असासयम्मि,
धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो ।
से सोयइ मच्चु-मुहोवणीए,
धम्मं अकाऊण परम्मि लोए।।२१।।

जो पुण्य कार्य नर जीवन में करे, ना
वो मृत्यु के समय में परिताप पाता ।
ऐसे समाचरित धर्म नहीं यथावत्-
तो अन्यलोकगत जीव न चैन पाता ।।२१।।

जहेह सीहो व मियं गहाय,
मच्चू णरं णेइ हु अंतकाले ।
ण तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तंमिसहरा भवंति।।२२।।

जैसे मृगेन्द्र मृग को जकड़े विशेष-
वैसे यहाँ रमण की बनती अवस्था ।
माता पिता प्रिय वयस्य सुदारवन्धु-
पंचत्व के क्षण नहीं, करते सहाई ।।२२।।

ण तस्स दुक्खं-विभयंति णाइओ,
ण मित्तवग्गा ण सुया ण बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।।२३।।

पुत्रादि मित्र अरु बन्धु दुखादिकों में
कोई न भाग लहता ध्रुव सत्य है ये ।
भोगें स्वयं नर यहाँ दुख है अकेला
कर्मानुसार फल है मिलता यथार्थ ।।२३।।

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च,
खेत्तं गिहं धण-धण्णं य सव्वं ।
सकम्म-बीओ अवसो पयाइ,
परं भवं सुंदर पावगं वा।।२४।।

सम्पूर्ण धान्य धन और चतुष्पदादि-
क्षेत्र द्विपाद भवनादि-समस्त वस्तु-।
को छोड़ के विवश हो, परलोक जाता
पाता, जहाँ सुख दुःखादिक कर्म से है ।।२४।।

तं एक्कगं तुच्छ-सरीरगं से,
चिईगयं दहिय उ पावगेण ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ वा,
दायारमण्णं अणुसंकमंति।।२५।।

चैतन्य शून्य शव को अनलादि से ही
दग्ध-प्रदग्ध करते ममताविहीन ।
सम्बन्ध छोड़, तृण तोड़, जलांजली दे
अन्यश्रिती श्रयण हैं, करते समग्र ।।२५।।

उवणिज्जई जीविय-मप्पमायं,
वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं ।
पंचालराया ! वयणं सुणाहि,
मा कासी कम्माइं महालयाइं।।२६।।

कर्मादि की सजगता निज जिन्दगी को-
घात-अघात करती तन कान्तिहारी ।
पांचाल राज ! मम भाव सुनो विशेष
क्यों ? पापकर्म करते, पथहीनता से ।।२६।।

अहंवि जाणामि जहेह साहू,
जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवंति,
जे दुज्जया अज्जो अम्हा-रिसेहिं।।२७।।

हे आर्य ! आप कहते, निज भाव को जो-
वे सत्य रूप, उसमें नहि अन्यथा है ।
ये भोग राग भव बन्धन के निदान
दुर्जेय हैं, विषय लोभ-समाश्रयों में ।।२७।।

हत्थिणपुरम्मि चित्ता !
दट्ठूणं णरवइं महिड्ढियं ।
काम-भोगेसु गिद्धेणं,
णियाणमसुहं कडं।।२८।।

हे चित्त ! हस्ति नगरी मघिराजराज-
चक्रित्व लब्ध धन धान कदम्बयुक्त ।
भोगादि सक्त नृप को लख के निदान
मैंने किया, अशुभ से सृतिबद्धता है ।।२८।।

तस्स मे अपडिक्कन्तस्स,
इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं,
कामभोगेसु मुच्छिओ।।२६।।

मैंने न की विहित की मन से विशुद्धि
पाया, यहाँ पर फलादि विरुद्ध रूप ।
मैं जानता वर महापथ शुद्ध धर्म-
तो भी निरा निरत मूर्च्छित भोग में हूँ ।।२६।।

णागो जहा पंक जलावसण्णो,
दट्ठुं थलं णाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा,
ण भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो।।३०।।

जैसे महागज निमग्न अपार पंक-
देखे, समीप तट को, गति शून्य होता ।
वैसे सशक्त बनके जग मध्य में हूँ
संसाधनापरक मार्ग न, गम्यशील ।।३०।।

अच्चेइ कालो तरंति राइओ,
ण यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति,
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी।।३१।।

जाता दिवा गति मती रजनी, मनुष्य-
कामादि शाश्वत कभी मिलते नहीं हैं-।
भोगादिसक्त नर को तजते तथैव-
जैसे खगादि फलहीन महीरुहो को ।।३१।।

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो,
अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं !
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी,
तो होहिसि देवो इओ विउव्वी।।३२।।

राजन् ! न भोग तजते, कर आर्यकर्म-
होवे प्रजा हितमयी स्थिति धर्मपूर्ण ।
संप्राप्त हो, विबुध का पद भी मनोज्ञ
कारुण्य से कलित मानस हो त्वदीय ।।३२।।

ण तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी,
गिद्धो सि आरम्भ-परिग्गहेसु ।
मोहं कओ एत्तिउ विप्पलावो,
गच्छामि रायं ! आमन्तिओसि।।३३।।

ना भोग मुक्त, मति, सक्त परिग्रहों में
आरम्भ में रत सदा पतनोन्मुखी हो ।
तो व्यर्थ वाक् चरण-बोधि विचार चर्चा
राजन् ! निराश बनके गतिमान होता ।।३३।।

पंचालराया वि य बंभदत्तो,
साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे,
अणुत्तरे सो णरए पविट्ठो।।३४।।

पांचाल भूप, मुनि के वचनादिकों का-
न ध्यान ही कुछ दिया, अवमानना की ।
पाके विशेषतम ही परिभोग सारे-
पाई, निराश्रित गती, मर नारकी की ।।३४।।

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो,
उदग्गचारित्त-तवोमहेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता,
अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ।।३५।।

हो काम से विरत, चित्त महातपस्वी-
निर्दोष संयम महापथ के पथी हो ।
कर्मादि का क्षय किया शुचि साधना से-
पाई अनुत्तर गती, शिवसाधकों की ।।३५।।

१४ अध्ययन : इषुकारीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम है–इषुकारीय। इसमें भृगु पुरोहित के कुटुम्ब के निमित्त से 'इषुकार' राजा को प्रतिबोध मिला है और उसने आर्हतशासन में प्रव्रजित होकर मोक्ष प्राप्त किया है। इस प्रकार के वर्णन को लेकर इषुकार राजा की लौकिक प्रधानता के कारण इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' रखा गया है।
- इस अध्ययन के प्रमुख पात्र है–महाराज इषुकार, रानी कमलावती, पुरोहित भृगु, पुरोहितपत्नी यशा तथा पुरोहित के दो पुत्र।
- इसमे ब्राह्मणसंस्कृति की कुछ मुख्य परम्पराओं का उल्लेख पुरोहितकुमारो और पुरोहित के संवाद के माध्यम से किया है।
- इसमें प्राचीनकालिक एक सामाजिक परम्परा का उल्लेख भी है कि जिस व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी नही होता था या जिसका सारा परिवार गृहत्यागी श्रमण बन जाता था, उसकी धनसम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता था। इस परम्परा को रानी कमलावती ने निन्द्य बताकर राजा की वृत्ति को मोडा है।
- अन्तिम 5 गाथाओं मे राजा–रानी के प्रव्रजित होने, तप–संयम मे घोर–पराक्रमी बनने तथा पुरोहितपरिवार के चारों सदस्यों के द्वारा मुनिजीवन स्वीकार करके तप–सयम द्वारा मोहमुक्त एवं सर्वकर्ममुक्त बनने का उल्लेख है।
- कुल मिला कर इस अध्ययन से पुनर्जन्मवाद की पुष्टि होती है तथा ब्राह्मण–श्रमण परम्परा की मौलिक मान्यताओं तथा तत्कालीन सामाजिक परम्परा का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है।

१४. इषुकारीय

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि,
केई चुया एग-विमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारणामे,
खाए समिद्धे सुरलोग-रम्मे।।१।।

सम्यक् सुरम्य सुरलोक समान ऋद्ध
प्रख्यात लोकतल में इषुकार वास ।
प्राग् जन्म के विपुल एक विमानवासी
देवायुपूर्ण करके कुछ जीव आये ।।१।।

सकम्मसेसेण पुराकएणं,
कुलेसु-दग्गेसु य ते पसूया ।
णिव्विण्ण संसार भया जहा य,
जिणिंद-मग्गं सरणं पवण्णा।।२।।

प्राचीन कर्म गति की अवशिष्टता से-
सर्वोच्च धर्म कुल में जनमे यथार्थ-।
संसार के भय विशेष विराग युक्त-
निर्ग्रन्थ का पथ लिया, हित कामना से ।।२।।

पुमत्त-मागम्म कुमार दो वि,
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसाल-कित्ती य तहेसुयारो,
रायत्थ देवी कमलावई य।।३।।

पत्नी यशा अरु पुरोहित दो कुमार-
राज्ञी सुनाम कमला, इषुकार राजा ।
सम्बद्ध ये निज परस्पर भावना से-
षट् संख्य जीव परिबद्ध हुए मनस्वी ।।३।।

जाई जरा-मच्चुभयाभिभूया,
बहिं विहाराभि-णिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता।।४।।

मोक्षाभिकृष्ट मुनि दर्शन से कुमार-
अन्तःप्रवृत्ति-भृति जन्म जराभिभूत ।
सम्पन्न संसृति विकार विमुक्ति पाने-
कामादि दोष चय से, विरतार्थ-जागे ।।४।।

पिय-पुत्तगा दोण्णि वि माहणस्स,
सकम्म सीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं,
तहा सुचिण्णं तव-संजमं च।।५।।

यागादि कर्म परिपूत तदात्मजों ने-
पूर्वाभिजन्म भव कालिक संयमों से-।
संसार भीत परिहान निदान रूप-
पाया, विमुक्ति पथ हेतु, विरागभाव ।।५।।

ते काम-भोगेसु असज्जमाणा,
माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजाय सड्ढा,
तायं उवागम्म इमं उदाहु।।६।।

कामादि से विरत हो, शिव साधना भृत्
श्रद्धा प्रपन्न, सविशेष तदात्मजों ने-
आके, पिता निकट, ये विनिवेदना की-
संयामपूर्ण रत हों, मन की अभीप्सा ।।६।।

असासयं दट्ठु इमं विहारं,
बहु-अंतरायं ण य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि ण रइं लभामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोणं।।७।।

है जिन्दगी सतत नश्वर चिन्तनीय-
स्वल्पायु भी विरस विघ्न भरा हुआ है ।
है गेह में न सुख, भोग विरक्ति पाने
साधुत्व में रमण की मन में समीहा ।।७।।

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं,
तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयंति,
जहा ण होइ असुयाण लोगो।।८।।

जाना, कुमार मुनि भव्य विचार शुद्ध-
त्यों ही तपो-विधि-विघात किया पिता ने ।
वेदज्ञ पंथ यह है बिन पुत्र सत्य-
होती न, मुक्ति, नर की मुनि-धर्मता क्यों ? ।।८।।

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं,
आरण्णगा होइ मुणी पसत्था।।९।।

वेदादि बोध जन से द्विज तृप्तिपूर्ण-
हो सौख्य भोग नित दार परिग्रही हो ।
उत्पन्न पुत्र करके गृह भार देके-
आरण्य वास करना तव है प्रशस्त-।।९।।

सोयग्गिणा आय-गुणिंधणेणं,
मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्तभावं परितप्पमाणं,
लालप्पमाणं बहुहा बहुं च।।१०।।

रागादि ईन्धन सहाय विमोह रूप
वायु प्रदीप्त बहु शोक हुताशनाप्त ।
दीनातिदीन बनके विनयाभिभूत
हो व्यग्र तात कहते, उचितानभिज्ञ ।।१०।।

पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं,
णिमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं।।११।।

लोकाभिसक्ति पथ दर्शक तात होके
द्रव्यार्जनादि विषयार्थ निमन्त्रणी हो ।
जाते विमार्ग पर देख तभी सुतों ने
सम्यक् विचार करके विनिवेदना की ।।११।।

वेया अहीया ण हवंति ताणं,
भुत्ता दिया-णिन्ति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता ण हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमण्णेज्ज एयं।।१२।।

वेदादि पाठ पढ़ने पर भी, न रक्षा
याग क्रियावलित, विप्र सु मुक्ति से भी ।
न त्राण सम्भव निजान्वय जात से भी
कैसे पिता, वचन की अनुमोदना हो ? ।।१२।।

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अणिगाम सुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा।।१३।।

ये कामभोग पल मात्र सुखाप्तिकारी
एवम् चिरन्तन निरन्तर दुःखदायी ।
है स्वेष्ट साधक कहाँ परितापहारी
संसार मुक्ति परिबाधक है विशेष ।।१३।।

परिव्वयंते अणियत्त कामे,
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अण्णप्पमत्ते धणमेसमाणे,
पप्पोति मच्चुं पुरिसो जरं च।।१४।।

जो कामना अपरिमुक्त अवृत्तिशील
भ्रान्तादिदोष दयनीय सुतापतप्त ।
होके प्रमत्त, नित वित्त विपन्न जीव
पाता, अवश्य निधनादि अतर्क्य रूप ।।१४।।

इमं च मे अत्थि इमं च णत्थि,
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाओ?।।१५।।

है पास में यह नहीं, अपने समीप-
ये कार्य रूप अथवा करणीय नैव ।
ऐसा प्रलाप करना यम यातना है
तो क्यों ? प्रमाद सरणी, विषम स्थिती में ।।१५।।

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं,
सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो,
तं सव्व साहीण-मिहेव तुब्भं।।१६।।

संप्राप्ति के हित यहाँ करते तपस्या
पर्याप्त वैभव विभिन्न विभोगदार-।
स्वाधीन हो विपुल रूप सभी मिले हैं
क्यों त्याग लोक बननायति चाहते हो ? ।।१६।।

धणेण किं धम्म-धुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहिं चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिं विहारा अभिगम्म भिक्खं।।१७।।

धर्माधिकार परिलब्ध न चाहता है
वित्तादि भोग विषयादिक बन्धु वर्ग ।
संशुद्ध गोचरचरी गुण वन्त होके
सम्यक् विहार करना हम चाहते हैं ।।
(श्रामण्य धर्म धरना रुचि से सुहाता)

जहा य अग्गी अरणी असंतो,
खीरे घयं तेल्ल महातिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता,
संमुच्छइ णासई णावचिट्ठे।।१८।।

जैसे कि भू प्रकट दारव अग्नि होती
है दुग्ध से घृत तथा तिल में सनेह ।
वैसे शरीर मधि जीव विनाशशील
कायादि नाश पर, जीव न शेष होता ।।

णो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्त भावा वि य होइ णिच्चो ।
अज्झत्थ-हेउं णिययस्स बंधो,
संसार हेउं च वयंति बंधं।।१९।।

आत्मा अमूर्त करणादिक लभ्य ना है
अज्ञेय रूप वह नित्य कहा गया है ।
रागादि हेतु बनना परिबन्धनार्थ
संसार कारण वही विनिदिष्ट बन्ध ।।

जहा वयं धम्मं अजाणमाणा,
पावं पुरा कम्म-मकासि मोहा ।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियंता,
तं णेव भुज्जो वि समायरामो।।२०।।

थे अज्ञ, मोह अनुबन्धन में बँधे थे
दोष-प्रलिप्त, नित वंचित तात से थे ।
संबोधि से सतत जागृत जीव अद्य
क्यों पाप-आचरण की अब हो समीहा ? ।।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि,
सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडन्तीहिं
गिहंसि ण रइं लभे।।२१।।

संपीडना ग्रथित लोक अनिष्टता से
काली निशा कुहकिनी द्रुत आ रही है ।
ऐसे विकार परिपूरित देश में भी
क्यों सौख्य की ललक से, गृह में रहेंगे ? ।।

केण अब्भाहओ लोगो,
केण वा परिवारिओ ।

पुत्रो ! नहीं कथन को, हम जान पाये
कैसे समाहत बना यह लोक सारा ।

का वा अमोहा वुत्ता,	कृष्ण-प्रधान रजनी वह कौन-सी है ?
जाया ! चिंतावरो हु मे।।२२।।	चिन्ता विशेष हमको महती लगी है ।।२२।।

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो,	मृत्यु प्रपीडित, तथा युत है जरा से-
जराए परिवारिओ ।	दीना सदैव धिक है जग की अवस्था ।
अमोहा रयणी वुत्ता,	है रात्रि की यह अमोघ विभीषणा भी-
एवं ताय ! वियाणह।।२३।।	हे तात ! आप समझें यह विश्व रूप ।।२३।।

जा जा वच्चइ रयणी,	बीती निशा न फिर लौट सके-कदापि
ण सा पडिणियत्तई ।	कोई सहायक नहीं उसका यहाँ पै ।
अहम्मं कुणमाणस्स,	होती विधर्म परिपूरित मानवों की
अफला जंति राइओ।।२४।।	वैफल्यपूर्ण रजनी, कहते मनीषी ।।२४।।

जा जा वच्चइ रयणी,	ज्यों-ज्यों निशा निकलके नहि लौटती है
ण सा पडिणियत्तई ।	त्यों-त्यों सधर्म अनुरंजित साधकों की ।
धम्मं च कुणमाणस्स,	होती समूल्य परिपूरित ही सदैव
सफला जंति राइओ।।२५।।	साफल्य-जीवन बने, बन धर्म-सेवी ।।२५।।

एगओ संवसित्ताणं,	सम्यक्त्व से वलित हो व्रत से प्रपूर्ण
दुहओ सम्मत्त-संजुया ।	गार्हस्थ्य कार्य करके फिर साधना के-।
पच्छा जाया गमिस्सामो,	सर्वोच्च मार्ग पर आयु ढले विशिष्ट
भिक्खमाणा कुले कुले।।२६।।	साधुत्व के ग्रहण की तब भावना हो ।।२६।।

जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं,	है मृत्यु मित्र जिसकी निखिलावलाषी-
जस्स वऽत्थि पलायणं ।	या जो पलायन विधायक आगती में-।
जो जाणे ण मरिस्सामि,	ना मैं, मरूं, यह विचार समर्थ जीव-
सो हु कंखे सुए सिया।।२७।।	आश्वस्त काल कल का वह हो सकेगा ।।२७।।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो ।
अणागयं णेव य अत्थि किंचि,
सद्धा खमं णे विणइत्तु रागं।।२८।।

श्रद्धा-प्रधान, अरु राग-विमुक्तिकारी,
लें, आज ही मुनि सरूप विशेष दीक्षा।
होता नहीं पुनर जन्म यहाँ-जहाँ में
कोई विभोग उनमुक्त नहीं रहा है ।।२८।।

पहीणपुत्तस्स हु णत्थि वासो,
वासिट्ठिभिक्खा-यरियाइ कालो ।
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं,
छिण्णाहि साहाहि तमेव खाणुं।।२६।।

मेरा निवास घर में सुत-हीन कैसा ?
भिक्षाचरी समय भी अब आ गया है।
शाखा समन्वित सदा तरु शोभता है
तत्भिन्न ठूंठ कहते, उसको मनस्वी ।।२६।।

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी,
भिच्चा विहूणो व्व रणे णरिंदो ।
विवण्णसारो वणिओ व्व पोए,
पहीण-पुत्तो मि तहा अहंपि।।३०।।

पक्षी विहीन पख से, नृप भी चमू से
संरिक्त रम्य जल पोत, यथा विशेष ।
सम्पन्न यात्रिक बिना, असहाय होता
मैं भी, तथैव सुतहीन निरावलम्ब ।।३०।।

सुसंभिया कामगुणा इमे ते,
संपिण्डिआ अग्गरस-प्पभूया ।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं,
पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं।।३१।।

शब्दादि रूप रस से परिपूर्ण भोग-
इच्छानुरूप हमको परिलब्ध भी है ।
आनन्द लाभ करके उनका यथावत्
सर्वोच्च मुक्ति पथ पै, गमन क्रिया हो ? ।।३१।।

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ,
ण जीवियट्ठा पजहामि भोए ।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं,
संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं।।३२।।

भोगे, रसादि विषयादिक को सदैव-
आयु प्रकर्ष घटती रहती यहाँ है ।
लाभाद्यलाभ सुख-दुःख समान भाव
साधू विमुक्ति धन की करते अभीप्सा ।।३२।।

मा हु तुमं सोयरियाण संमरे,
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं,
दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो।।३३।।

संवृद्ध हंस सम याद न बन्धु आवें
ये वीतराग पथ इष्ट हमें नहीं हो ।
भोगे, अपार सुख संग निमग्न होके-
भिक्षाचरी दुखद और विहार भी है ।।३३।।

जहा य भोइ तणुयं भुयंगो,
णिम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए जाया पयहंति भोए,
तेऽहं कहं णाणुगमिस्समेक्को ।।३४।।

जैसे अहि त्वरित कंचुक से विमुक्त
स्वातंत्र्य से, विचरता निज रूप में ही ।
दोनों प्रबुद्ध मम पुत्र गृहादि छोड़े
क्यों मैं यहाँ पर रहूँ, सहगामिता हो ? ।।३४।।

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया,
मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेय सीला तवसा उदारा,
धीरा हु भिक्खायरियं चरंति।।३५।।

जैसे सशक्त मछली बलहीन जाल-
को काट के, निकलती ध्रुव रोहिताख्य ।
कामादि छोड़ करके, तपते तपस्वी
भिक्षाचरी नित करें, मन से मनस्वी ।।३५।।

जहेव कुंचा समइक्क-मंता,
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलेंति पुत्ता य पइय मज्झं,
तेऽहं कहं णाणुगमिस्स-मेक्का?।।३६।।

क्रौंचादि हंस परिपाश बहेलियों का,
छिन्न प्रछिन्न करके नभ चूमते हैं, ।
संयाम पै स्वपति और सुपुत्र जाते-
मैं भी, न मार्ग उनका अपना रही क्यों? ।।३६।।

पुरोहियं तं ससुयं सदारं,
सोच्चाऽभि-णिक्खम्म पहाय भोए ।
कुडुम्बसारं विउलुत्तमं य,
रायं अभिक्खं समुवाय देवी।।३७।।

सर्वस्व छोड़कर दीक्षित विप्र भी है
जाया सुपुत्र युत साधक ऋद्धिगामी ।
वित्तादि लिप्सु नृप को कमलावती ने-
उद्‌बोध संतत दिया, करुणापरीत ।।३७।।

वंतासी पुरिसो रायं !
ण सो होइ पसंसिओ ।
माहणेण परिच्चत्तं,
धणं आयाउमिच्छसि।।३८।।

राजन् ! नहीं चरण उन्नति पंथगामी,
क्यों, लिप्सु हो, द्विज कदर्थित कृतकामी ?
होता कभी न वमनादिक वस्तु भोगी-
अभ्यर्चनीय, तज दो, धन की समीहा? ।।३८।।

सव्वं जगं जइ तुहं,
सव्वं वावि धणं भवे ।
सव्वंऽवि ते अपज्जत्तं,
णेव ताणाय तं तव।।३९।।

सर्वस्व और जग भी धन से प्रपूर्ण
पाके नरेश फिर भी, नहीं तोष आता ।
होता न वैभव, कभी परिरक्षकारी
क्यों ? व्यर्थ में उलझते, इसमें व्यथा ही ।।३९।।

मरिहिसि रायं ! जया तया वा,
मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो णरदेव ताणं,
ण विज्जइ अण्णमिहेह किंचि।।४०।।

राजन् ! दिवंगति विनिश्चित है यहाँ पे-
संत्याग पूर्व सुखकाम कलादिकों को ।
होगा न रक्षक कभी, धन-धान्य सारा
हो धर्म लक्ष्य परिरक्षण-हेतु भूत ।।४०।।

णाहं रमे पक्खिणी पंजरे वा,
संताणछिण्णा चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा णिरामिसा,
परिग्गहारंभ णियत्तदोसा।।४१।।

जैसे खगी न सुख पिंजरबद्ध पाती-
वैसे न मोद इस जीवन में कहीं है ।
मैं नेह तोड़ सपरिग्रह हिंसना से-
होके विमुक्त यम में विचरूँ अभीप्सा ।।४१।।

दवग्गिणा जहा रण्णे,
डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अण्णे सत्ता पमोयंति,
रागद्दोस वसं गया।।४२।।

जैसे कि आग लगती वन में विशेष
दावा विदाह कहते मतिमान विज्ञ ।
संदग्ध जन्तु-चय को लख वह्नितप्त
द्वेषादिराग करके हँसते प्रमुग्ध ।।४२।।

एवमेव वयं मूढा,
कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं ण बुज्झामो,
रागद्दोसग्गिणा जगं।।४३।।

हो काम में निरत मूढ तथा प्रकार
विद्वेष की अनल में जलते सदैव ।
संबोधि की न गति का परिबोध भी है
संसार को समझना वश में नहीं है ।।४३।।

भोगे भोच्चा वमित्ता य,
लहुभूय-विहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छंति,
दिया कामकमा इव।।४४।।

संसाधनापरक साधक भोग पाके-
एवम् विमुक्त करते कलकामना को-
आबद्धता रहित हो लघु वात होके-
पक्षी सदृक् विचरते, नभ में विरक्त ।।४४।।

इमे य बद्धा फन्दन्ति,
मम हत्थ-ऽज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु,
भविस्सामो जहा इमे।।४५।।

हे आर्य ! हस्तगत काम नहीं स्वकीय-
हैं वे क्षणी हम अभी परिवद्ध पूरे-
आसक्त हैं, न परिवन्धन से विमुक्त
होंगे, पुरोहित समान कदा जनेश ? ।।४५।।

सामिसं कुललं दिस्स,
बज्झमाणं णिरामिसं ।
आमिसं सव्व-मुज्झित्ता,
विहरिस्सामि णिरामिसा।।४६।।

मांसादि लुब्ध पर गीध अनेक आके,-
विक्रान्त हो, विजय का हित साधते हैं ।
जो हैं निरामिष यहाँ, उनको व्यथा क्या ?
होके विमुक्त विचरूं, भव कामना से ।।४६।।

गिद्धोवमे उ णच्चाणं,
कामे संसार-वड्ढणे ।
उरगो सुवण्ण-पासेव्व,
संकमाणो तणुं चरे।।४७।।

संसार-वर्धक विघातक काम भोग-
संत्याग गृद्ध सम इष्ट सदैव जाने ।
जैसे भुजंग भयभीत विशेष रूप-
सांनिध्य से गरुड के रहता सचेत ।।४७।।

णागो व्व बंधणं छित्ता,
अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं,
उस्सुयारि त्ति मे सुयं।।४८।।

जैसे करी विपिन में परिबन्धनों से-
होके विमुक्त सुख से नित घूमता है ।
वैसे सुबोध सुन के मुनि से विशेष
रागादि छोड़कर के शिव रूपता हो ।।४८।।

चइत्ता विउलं रज्जं,
कामभोगे य दुच्चए ।
णिव्विसया णिरामिसा,
णिण्णेहा णिप्परिग्गहा।।४९।

राज्यादि सर्वभव वैभव हीन होके
दुस्त्याज्य काम गुण से परिमुक्त रूप ।
राज्ञी, नरेश विषतुल्य विकार जात
निःस्नेह और अपरिग्रह, हो गए, वे ।।४९।।

सम्मं धम्मं वियाणित्ता,
चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झ-ऽहक्खायं,
घोरं घोर-परक्कमा।।५०।।

सम्यक्‌तया समझ के यति धर्म को वे
संप्राप्त काम धन को फिर छोड़ के ही-।
आप्त प्रदिष्ट पथ पै चलते गए, वे
संयाम में निरत हो, तपते तपस्वी ।।५०।।

एवं ते कमसो बुद्धा,
सव्वे धम्म-परायणा ।
जम्म मच्चु भउव्विग्गा,
दुक्खस्सन्त-गवेसिणो।।५१।।

इत्थं क्रमानुसृति से परिबुद्ध होके-
धर्मानुरंजित बने, भव भीत भाग-।
उद्‌विग्न दुःख अपसारण के लिए ही
अध्यात्म के पथिक हो, विचरे मनस्वी ।।५१।।

सासणे विगय मोहाणं,
पुव्विं भावण - भाविया ।
अचिरेणेव कालेण,
दुक्खस्सन्त - मुवागया।।५२।।
राया सह देवीए,
माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव,
सव्वे ते परिणिव्वुडे।।५३।।

ध्याके अनित्य, शरणादि हीन भाव
आत्मा प्रभावित विशेष हुई नरेश ।
राज्ञी द्विजादिक पुराहित दार पुत्र
आर्हन्त्य में निखिल ने शिव सिद्धि पाई।।५२-५३।।

१५ अध्ययन : सभिक्षु

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन का नाम सभिक्षुक है। इसमे भिक्षु के लक्षणों का सांगोपांग निरूपण है। प्रस्तुत समग्र अध्ययन से भिक्षु के जीवनयापन की विधि का सम्यक् परिज्ञान हो जाता है।
- भिक्षु का अर्थ जैसे–तैसे सरस–स्वादिष्ट आहार भिक्षा द्वारा लाने और पेट भर लेने वाला नही है। जो भिक्षु अपने लक्ष्य के प्रति तथा मोक्षलक्ष्यी ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप के प्रति जागरूक नहीं होता, केवल सुख–सुविधा, पद–प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि आदि के चक्कर मे पड़कर अपने सयमी जीवन को खो देता है, वह मात्र द्रव्यभिक्षु है। वह वेश और नाम से ही भिक्षु है, वास्तविक भावभिक्षु नही है। भावभिक्षु के लक्षणों का ही इस अध्ययन मे निरूपण है।
- निर्युक्तिकार ने सच्चे भिक्षु के लक्षण ये बताए है–सद्भिक्षु रागद्वेषविजयी, मानसिक–वाचिक– कायिक दण्डप्रयोग से सावधान, सावद्यप्रवृत्ति का मन–वचन–काया से तथा कृत–कारित–अनुमोदित रूप से त्यागी होता है। वह ऋद्धि, रस और साता (सुखसुविधा) को पाकर भी उसके गौरव से दूर रहता है, माया, निदान और मिथ्यात्व रूप शल्य से रहित होता है, विकथाएँ नही करता, आहारादि संज्ञाओं, कषायो एवं विविध प्रमादो से दूर रहता है, मोह एवं द्वेष–द्रोह बढाने वाली प्रवृत्तियों से दूर रह कर कर्मबन्धन को तोडने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। ऐसा सुव्रत ऋषि ही समस्त ग्रन्थियों का भेदन कर अजरामर पद प्राप्त करते हैं।

१५. सभिक्षु

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिए उज्जु-कडे णियाण-छिण्णे ।
संथवं जहिज्ज अकाम-कामे,
अण्णाय-एसी परिव्वए स भिक्खू।।१।।

धर्मज्ञ शंसित-मुनिव्रत-धारणार्थी
होके निदान परिमुक्त ऋजु क्रियावान् ।
सम्यक् प्रबोध चय से विनिवृत्त काम
त्यागी, गवेषक, सही यति, जैन साधु ।।१।।

राओव-रयं चरेज्ज लाढे,
विरए वेय-वियाय-रक्खिए ।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,
जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू।।२।।

जो राग से रहित है, परियामरक्त-
है आश्रवादि परिमुक्त, सुशास्त्रविज्ञ ।
नित्यात्म रक्षक तथा परिमोहमुक्त
ना, सक्त, साम्य धन संयुत, सौम्य भिक्षु ।।२।।

अक्कोस-वहं विइत्तु धीरे,
मुणी चरे लाढे णिच्च-मायगुत्ते ।
अव्वग्ग-मणे असंपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू।।३।।

आक्रोश कोप वध को, कृत कर्म माने-
संधीर शांति रत संयम में प्रशस्त ।
है आत्मगुप्त, नहि आकुलता प्रहर्ष
साम्य-प्रपूर्ण वह, साधक सौम्य भिक्षु ।।३।।

पन्तं सयणासणं भइत्ता,
सीउण्हं विविहं य दंस-मसगं ।
अव्वग्ग-मणे असंपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू।।४।।

शय्यासनादिक यथातथ जीर्ण रूप-
शीतोष्ण भाव परिवर्जित साम्यशाली ।
सर्वोपसर्ग विष ही, शमन प्रधान-
शांति प्रपूर्ण, शिव साधक, सौम्य भिक्षु ।।४।।

णो सक्कइ-मिच्छइ ण पूयं, णोऽवि य वंदणगं कुओ पसंसं । से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आय-गवेसए स भिक्खू।।५।।	सत्कार-पूजन तथा परिवन्दनादि- शंसादि की न, जिसको कुछ कामना है। सौम्यव्रती सतत संयमशील धारी- निर्माण मोह, तपसी शिवशान्त साधु ।।५।।
जेण पुणो जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं णियच्छइ । णर-णारिं पजहे सया तवस्सी, ण य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू।।६।।	योषित्तथा नर-विशेष-सयोग शून्य पाले, सुसंयम, रहे, परिमोह मुक्त-। कामाभिसक्ति रति से अति दूरिता हो जो कौतुकी न, बनता वह भव्य भिक्षु ।।६।।
छिण्णं सरं भोम-मंतलिक्खं, सुमिणं लक्खण-दण्ड वत्थु-विज्जं । अंगवियारं सरस्स विज्जयं, जे विज्जाहिं ण जीवइ स भिक्खू।।७।।	जो छिन्न दण्ड अरु अंग तथा स्वरादि- स्वप्नादिभौम नभ वास्तु-विशेष बोध-। आजीविका न अपनी यदि मानता है वो साधनापरक, साधक, सत्य साधु ।।७।।
मंतं मूलं विविहं वेज्ज-चिंतं, वमण-विरेयण-धुमणेत्त-सिणाणं । आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू।।८।।	रोगाभिभूत परिपीडित लाभकारी- मन्त्रादि मूल अरु वैद्य विचारणादि-। संधूम-पान-वमनादि विरेचनादि- सुस्नान, बन्धु गण, रक्षण शून्य-साधु ।।८।।
खत्तिय-गण उग्गरायपुत्ता, माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो । णो तेसिं वयइ सिलोग पूयं, तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू।।९।।	जो क्षात्र या गणप उग्र नृपेन्द्र पुत्र- विप्रादि भोगिक तथा शुभ शिल्पियों की-। पूजा प्रशस्ति न कभी करता मनस्वी संहेय जान करके, विचरे सुभिक्षु ।।९।।
गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पवइएण व संथुया हविज्जा । तेसिं इहलोइय-फलट्ठा, जो संथवं ण करेइ स भिक्खू।।१०।।	दीक्षार्थ-पूर्व अथवा पर में प्रपन्न आत्मीयता विजय में, निज लाभकारी। संसार के फल विशेष, न भाव भावे है वो यती, सुखद संयम शील साधु ।।१०।।

सयणासण-पाण-भोयणं,	शय्यासनादिक सुपान सुभोज्य वस्तु
विविहं खाइम-साइमं परेसिं ।	सुस्वाद्य-खाद्य उपयुक्त-पदार्थ-जात ।
अदए पडिसेहिए णियंठे,	याचे, मिले न जन से, अथवा मिले भी-
जे तत्थ ण पउस्सइ स भिक्खू।।११।।	तो द्वेष भाव न बने, वह साधुता है ।।११।।
जं किंचि आहार-पाणगं विविहं,	सम्यक् गृहस्थ गृह से अशनादि पाके
खाइमं-साइमं परेसिं लद्धुं ।	बालादिवृद्ध यति पै करुणा-परीत ।
जो तं तिविहेण णाणुकम्पे,	होवे, त्रियोग करणादिक संवृतात्मा
मण-वय-काय-सुसंवुडे स भिक्खू।।१२।।	दिव्याभिराम-रमणैक-विशिष्ट साधु ।।१२।।
आयामगं चेव जवोदणं च,	आहार वस्तु यव निर्मित शीत भोज्य
सीयं सोवीर-जवोदगं च ।	कांजी जलादि जव वारि रसादि हीन ।
ण हीलए पिंडं णीरसं तु,	भिक्षाचरी न परिभूत करे कदापि-
पंत-कुलाइं परिव्वए स भिक्खू।।१३।।	सामान्य गेह विचरे, वह सौम्य साधु ।।१३।।
सद्दा विविहा भवंति लोए,	संसार में अमर मानुष और तिर्यक्
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा ।	रौद्र स्वरूप भयकारि रवादिकों से ।
भीमा भय-भेरवा उराला,	होता न भीत, वह साधक संयती जो-
जो सोच्चा ण विहिज्जइ स भिक्खू।।१४।।	भिक्षु प्रशस्त कहते उसको मनस्वी ।।१४।।
वायं विविहं समिच्च लोए,	संसार में विविध धर्म विवाद का भी-
सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा ।	संविज्ञ है रत सदा निज धर्म में जो-
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,	कर्मक्षयादि परमार्थ परीषहों का-
उवसंते अविहेडए स भिक्खू।।१५।।	जेता विशेष उपशान्त वही सुभिक्षु ।।१५।।
असिप्प-जीवी अगिहे अमित्ते,	जो शिल्पशील, न गृही, न सुहृद् सुसक्त-
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के ।	पारिग्रहादिक नहीं, न कषायशाली-
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी,	अल्पाशनी विगतराग, विमुक्त संग
चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू।।१६।।	गार्हस्थ्य मुक्त विचरे, जग में सुभिक्षु ।।१६।।

१६ अध्ययन : समाधि-स्थान

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान' है। इसमें ब्रह्मचर्यसमाधि के दस स्थानो के विषय में गद्य और पद्य में निरूपण किया गया है।
- ब्रह्मचर्य, साधना का मेरुदण्ड है। साधुजीवन की समस्त साधनाएँ–तप, जप, समत्व, ध्यान, कायोत्सर्ग, परीषहविजय, कषायविजय, विषयासक्तित्याग, उपसर्गसहन आदि ब्रह्मचर्यरूपी सूर्य के इर्दगिर्द घूमने वाले ग्रह नक्षत्रो के समान हैं। यदि ब्रह्मचर्य सुदृढ एव सुरक्षित है तो ये सब साधनाएँ सफल होती है, अन्यथा ये साधनाएँ केवल शारीरिक कष्टमात्र रह जाती है।
- ब्रह्मचर्य का सर्वसाधारण में प्रचलित अर्थ–मैथुनसेवन का त्याग या वस्तिनिग्रह है। किन्तु भारतीय धर्मों की परम्परा मे उसका इससे भी गहन अर्थ है–ब्रह्म मे विचरण करना। ब्रह्म का अर्थ परमात्मा, आत्मा, आत्मविद्या अथवा बृहद् ध्येय है।
- प्रस्तुत अध्ययन में ब्रह्मचर्य–सुरक्षा के लिए बताए गए समाधिस्थान क्रमश इस प्रकार है– 1. स्त्री–पशु–नपुंसक से विविक्त (अनाकीर्ण) शयन और आसन का सेवन करे, 2 स्त्रीकथा न करे, 3 स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे, 4. स्त्रियो की मनोहर एव मनोरम इन्द्रियो को दृष्टि गड़ा कर न देखे, न चिन्तन करे, 5 दीवार आदि की ओट मे स्त्रियो के कामविकारजनक शब्द न सुने, 6. पूर्वावस्था में की हुई रति एवं क्रीडा का स्मरण न करे, 7. प्रणीत (सरस स्वादिष्ट पौष्टि) आहार न करे, 8. मात्रा से अधिक आहार–पानी का सेवन न करे, 9 शरीर की विभूषा न करे और 10. पचेन्द्रिय–विषयों मे आसक्त न हो।
- साथ ही इन्द्रियो एव मन पर संयम न रखने के भंयकर परिणाम भी प्रत्येक समाधिस्थान के साथ साथ बताये गए है। अन्त में पद्यों में उक्त दस स्थानों का

विशद निरूपण भी कर दिया गया है तथा ब्रह्मचर्य की महिमा भी प्रतिपादित की है।

❀ पूर्वोक्त अनेक परम्पराओ के सन्दर्भ मे ब्रह्मचर्य के इन दस समाधिस्थानो का महत्त्वपूर्ण वर्णन इस अध्ययन मे गर्भित है।
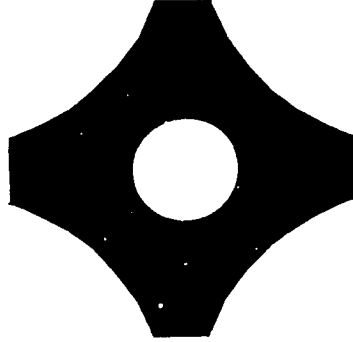
१६. समाधि-स्थान

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एव-मक्खायं इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले समाहि-बहुले, गुत्ते गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

छन्द-धनाक्षरी

आयुष्मन् ! मैंने सुना, भगवन्त निरदिष्ट
निर्ग्रन्थ स्थविर प्रवचन में बतावे हैं ।
दस ब्रह्मचर्य के समाधि थान सुनकर
संयम संवर चित्त शुचि शुद्धि छावे हैं ।
मन वच काया अधिकार रूप गोपन हो
इन्द्रिय विजयकारी, फलितार्थ आवे हैं ।
ब्रह्मचर्य सदा विधि पूर्वक सुरक्षित हो
अप्रमत्त बनके विहार ही सुहावे है ।।१।।

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म संजम-बहुले संवर-बहुले समाहि-बहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा?

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्व णिसम्म संजम-बहुले संवर-बहुले समाहि-बहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा। तं जहा-विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे। णो इत्थी-पसु-पंडग-

स्थविर भगवन्तों ने वे, कौन से कहे थान
सुन करता जो ध्यान, संवर पै जावै है ।
मन वच काया से, जो इन्द्रियों को गोपता है
अप्रमत्त भावना से, सदा सुख पावै है ।
दस विध समाधि के, कहे प्रभु ने विचार-
इन्द्रियों को वशीभूत करके बचावे हैं ।
करे पृथक् शय्यासन पण्डग पशू योषा
नहीं सेवे, वो ही निरग्रन्थ कहलावै है ।।२।।

संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु इत्थी-पसु-पंडग- संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स- बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा णो इत्थी-पसु- पंडग- संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से णिग्गंथे।।१।।

णो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा णो इत्थीणं कहं कहेज्जा॥२।।

णो इत्थीणं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरित्ता हवइ, से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जा-गयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि-पण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरेज्जा।।३।।

आचार्य प्रवर कहे, स्त्री पशु नपुंसकों से-
शयनासन विविक्त ब्रह्मचारी छावै है ।
ब्रह्मचर्य विषय में शंका कांक्षा विचिकित्सा
ब्रह्मवृत्ति नाशक प्रमाद भी दिखावै है ।
दीर्घकालिक रोग पावे आतंक महान होवे
केवल निर्दिष्ट मार्ग से भी, गिर जावै है ।
नहीं करे कदापि कहीं भी स्त्री विषय चर्चा
ऐसा भगवन्त जिन शास्त्रों में गिनावै है ।।२,३।।

णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ, से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स णिज्झायमाणस्स-
बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा, तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा णिज्झाएज्जा ।।४।।

नहीं योषा विषयक मनोहर मनोरथ-
इन्द्रियों पै धरे ध्यान, साधक सुहावै है ।
करे नहीं, चिन्तन को, आत्मभाव में जो रमे
ऐसे ही विरक्तिपूर्ण मुनि मन भावै है ।
स्थविर भदन्तों ने कहा है, काम चिंतना से-
संयम की साधना, विराधना में छावै है ।
शंका कांक्षा विचिकित्सा नाश उनमादना से-
दीर्घकाल रोगांतक, भ्रष्ट पथ जावै है ।।४।।

णो इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसं तरंसि वा, भित्तंतरंसि वा कूइय-सद्दं वा रुइय-सद्दं वा गीयसद्दं वा हसिय-सद्दं वा थणिय-सद्दं वा कंदिय-सद्दं वा विलविय-सद्दं वा सुणेत्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा, दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदिय-सद्दं वा विलविय-सद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसिय-सद्दं वा

कुड्य आवरण से, संकूजन रोदन हास्य-
गर्जन क्रन्दन गीत विलाप जो आवै है ।
उपर्युक्त शब्दों से, विराधना होवे सदैव
शंका कांक्षा विचिकित्सा, उनमाद छावै है ।
भ्रष्ट साधना का पथ, दीर्घकाल रोगातंक
अतः ऐसे स्वरों पै न, ध्यान कभी लावै है ।
गिरे निज भावना से, रति भाव की जागृति
छोड़ सदा मन से, न चिन्तन में पावै है ।।५।।

थणिय-सद्दं वा कंदिय-सद्दं वा विलविय-सद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा।।५।।

णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ, से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा।।६।।

संयम ग्रहणपूर्व, की गई रति क्रिया का-
करे न स्मरण, निरग्रन्थ कहलावै है ।
होवे शंका कांक्षा विचिकित्सा उनमाद तीव्र-
दीर्घकाल रोगातंक मन मांही छावै है ।
केवल भाषित धर्म पतन की स्थिती बने
नहीं साधना के प्रति, चित्त हरसावै है ।
अतः साधु पूर्व काल रति क्रीड़ा भूल जावै
सुमिरे तो ब्रह्मचर्य व्रत खपि जावै है ।।६।।

णो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ, से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारे माणस्स-बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा।।७।।

णो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ, से णिग्गंथे । तं कहमिति चे? आयरियाह-। णिग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारे माणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा

रसयुक्त, पौष्टिक, आहार परिमाण थान
निरग्रन्थ साधक की साधना न पावै है ।
शंका कांक्षा विचिकित्सा नाश और उनमाद
दीर्घकालि रोगातंक शरीर समावै है ।
केवली प्ररूपणा के, धर्म से गिरे सदैव
रूखा, सूखा, भोजन से, शान्ति कर छावै है।
गृहीत व्रतों को परिपाले, सावधान चित्त-
निरमल भावना से शिव सुख आवै है ।।७-८।।

लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि- पण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा।।८।।

णो विभूसाणुवाई हवइ, से णिग्गंथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह-। विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे विभूसाणुवाई हविज्जा।।६।।

देह की विभूषा नाही, करे साधना प्रवीन
निरग्रन्थ रूप ने ही, वीर दरसावै है ।
शब्द रूप, रस, गन्ध, फरस में अनासक्त
यति धर्म का स्वरूप सतत सुहावै है ।
शंका कांक्षा विचिकित्सा नाश उनमाद भाव
शुद्ध बुद्ध जीव कभी नांहि अकुलावै है ।
दीर्घकाल रोगान्तक, होवे विपरीत गति
इससे उत्पथ पर, मुनि नहीं जावै है ।।६।।

णो सद्द-रूव-रस-गंध- फासाणुवाई हवइ, से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह णिग्गंथस्स खलु सद्द-रूव-रस-गंध-फासाणुवाइस्स बंभयारिस्स संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि- पण्णत्ताओ धम्माओ वा भंसेज्जा। तम्हा खलु णो सद्द-रूव-रस- गंध-फासाणुवाइ हवेज्जा, से णिग्गंथे। दसमे बंभचेर समाहिठाणे हवइ । हवंति य इत्थ सिलोगा। त ंजहा-।

छन्द-बसन्ततिलका

जं विवित्त - मणाइण्णं,
रहियं इत्थि - जणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा,
आलयं तु णिसेवए।।१।।
मण - पल्हाय - जणणी,
काम - राग - विवड्ढणी।
बंभचेर रओ भिक्खू,
थी-कहं तु विवज्जए।।२।।

एकान्त शून्य महिला जन से विविक्त-
बाधा विहीन थल संयम के लिए हो ।
आह्लाद काम रति वर्धक संकथा को-
भिक्षू सदैव तज दे, निज साधना में ।।१-२।।

समं च संथवं थीहिं,
संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू,
णिच्च सो परिवज्जए।।३।।

जो ब्रह्म में रत सदा वह भिक्षु जीव-
स्त्री संग में परिचयादि कभी करे न ।
औ बार बार इनके परिभाषणादि-
छोड़े, मुनीन्द्र निज संयम के हितार्थ ।।३।।

अंग-पच्चंग-संठाणं,
चारु-ल्लविय-पेहियं।
बंभचेर-रओ थीणं,
चक्खुगिज्झं विवज्जए।।४।।

जो ब्रह्म में रत सदा वह चक्षुओं से-
स्त्री अंग आकृति तथा परिलाप मुद्रा-
होवे कटाक्ष परिदर्शन से विमुक्त-
वो है, विराट् शिव विशेष गुणाधिकारी ।।४।।

कूइयं रुइयं गीयं,
हसियं थणिय-कंदियं।
बंभचेर-रओ थीणं,
सोयगिज्झं विवज्जए।।५।।

जो ब्रह्म में रत रहे अरु कर्ण से है-
स्त्री शब्द कूजन व रोदन हास्य गीत ।
संगर्जनादिक तथा उनके मनोज्ञ-
वाचादि को न सुनता, वह है तपस्वी ।।५।।

हासं किड्डं रइं दप्पं,
सहभुत्ता-सियाणि य।
वंभचेर-रओ थीणं,
णाणुचिंते कयाइ वि।।६।।

जो ब्रह्म में रत विशेष विबुद्ध साधु
दीक्षादि पूर्व कृत काम व हास्य कार्य-
क्रीडाभिमान सहसा दुख की अवस्था
होवे, न चिन्तन कभी प्रथमोपभुक्त ।।६।।

पणीयं भत्त-पाणं तु,
खिप्पं मय-विवड्ढणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू,
णिच्च सो परिवज्जए।।७।।

जो ब्रह्म में सततलीन व काम वाले-
आहार के सरस सुन्दर रूपता का-
संत्याग भाव रखता, वह है तपस्वी
माधुर्य भोज रत की, दयनीयता है ।।७।।

धम्म-लद्धं मियं काले,
जत्तत्थं पणिहाणवं ।
णाइ-मत्तं तु भुंजेज्जा,
बंभचेर-रओ सया।।८।।

जो ब्रह्म में रत विचक्षण साधुकर्मी
वो चित्त की सुदृढ़ता हित जीव यात्रा ।
निर्वाहनार्थ मित फासुक भोज्य लेवे
मात्रादि से अधिक की परिवर्जना हो ।।८।।

विभूसं परिवज्जेज्जा,
सरीर-परिमण्डणं ।
बंभचेर-रओ भिक्खू,
सिंगारत्थं ण धारए।।९।।

जो ब्रह्म में सततलीन विभूषणों का-
संत्यागशील बनके, विचरे महर्षि ।
शृंगार के हित यती परिमण्डना को-
त्यागे सदा, विरतिपूर्ण महातपस्वी ।।९।।

सद्दे-रूवे य गंधे य,
रसे-फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे,
णिच्च सो परिवज्जए।।१०।।
आलओ थी-जणा-इण्णो,
थी-कहा य मणोरमा ।
संथवो चेव णारीणं,
तासिं इंदिय-दरिसणं।।११।।

शब्दादि गन्ध रस रूप व फर्श का भी-
हो त्याग पंच विध है परिकाम रूप ।
योषादि संगति तदिन्द्रिय दर्शनादि-
स्त्री संकथा परिचयादि, करे न साधु ।।१०-११।।

कूइयं रुइयं गीयं,
हास-भुत्ता-सियाणि य ।
पणीयं भत्त-पाणं च,
अइ-मायं पाण-भोयणं।।१२।।

स्त्री गीत कूजन व रोदन हास्य शब्द
संबुद्ध साधक कृते न कदापि योग्य-
ना भुक्त भोग सहवास कभी विचारे
स्वादिष्ट भोज्य विरती, मुनि के लिए हो ।।१२।।

गत्तभूसण-मिट्ठं च,
कामभोगा य दुज्जया ।
णरस्सत्त-गवेसिस्स,
विसं तालउडं जहा।।१३
दुज्जए काम-भोगे य,
णिच्च सो परिवज्जए ।
संका-ठाणाणि सव्वाणि,
वज्जेज्जा पणिहाणवं।।१४।।

ना हो शरीर परिसज्जित की अभीप्सा-
हैं ये सभी पतन के ध्रुव बीज रूप ।
एकाग्रचित्त मुनि दुर्जय काम भोग-
शंका दुरन्त पथ से, नित दूर होवे ।।१३-१४।।

धम्मारामे चरे भिक्खू,
धिइमं धम्म-सारही ।
धम्मा - रामे - रए दन्ते,
बंभचेर-समाहिए।।१५।।

जो धैर्यशील, शुभ धर्म रथादिकों का-
है सारथी रत सदा, निज भावना में-।
संदान्त भिक्षु नत संयम में सदैव
सद्ब्रह्मचर्य युत साधु समान चेता ।।१५।।

देव-दाणव गंधव्वा,
जक्ख-रक्खस्स-किन्नरा ।
बम्भयारिं णमंसंति,
दुक्करं जे करंति तं।।१६।।

जो ब्रह्मचर्य धृति को नित पालता है
पूर्णातिपूर्ण उसको नमनीय जाने ।
गन्धर्व यक्ष सुर किन्नर भक्ति भाव-
से रक्ष, दानव सदा नमते अजस्र ।।१६।।

एस धम्मे धुवे णिच्चे,
सासए जिण-देसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं,
सिज्झिस्संति तहावरे।।१७।।

है ब्रह्मचर्य यम नित्य निरामयाप्त
धर्म स्वरूप नित शाश्वत लाभकारी ।
अर्हन्तदिष्ट इससे सब काल में ही
संसिद्धि सौध मिलता परिसाधना से ।।१७।।

१७ अध्ययन : पाप-श्रमणीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'पाप–श्रमणीय' है। इसमें पापी श्रमण के स्वरूप का निरूपण किया गया है।
- श्रमण बन जाने के बाद यदि व्यक्ति यह सोचता है कि अब मुझे और कुछ करने की कोई आवश्यकता नही है, न तो मुझे ज्ञानवृद्धि के लिए शास्त्रीय अध्ययन की जरूरत है, न तप, जप, ज्ञान, ध्यान, अहिसादि व्रतपालन या दशविध श्रमणधर्म के आचरण की अपेक्षा है, तो यह बहुत बडी भ्रान्ति है। इसी भ्रान्ति का शिकार होकर साधक यह सोचने लगता है कि मै महान् गुरु का शिष्य हूँ। मुझे सम्मानपूर्वक भिक्षा मिल जाती है, धर्मस्थान, वस्त्र, पात्र या अन्य सुखसुविधाएँ भी प्राप्त है। अब तप या अन्य साधना करके आत्मपीडन से क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार विवेकभ्रष्ट होकर सोचने वाले श्रमण को प्रस्तुत अध्ययन मे 'पापश्रमण' कहा गया है।
- श्रमण दो कोटि के होते है। एक सुविहित श्रमण और दूसरा पापश्रमण। सुविहित श्रमण वह है, जो दीक्षा सिंह की तरह लेता है और सिंह की तरह ही पालन करता है। संयम का एवं महाव्रतो का पालन करता है। समता उसके जीवन के कण–कण मे रमी रहती है। क्षमा आदि दस धर्मों के पालन में वह सतत जागरूक रहता है।
- इसके विपरीत पापश्रमण सिंह की तरह दीक्षा लेकर सियार की तरह उसका पालन करता है। उसकी दृष्टि शरीर पर टिकी रहती है। फलत शरीर का पोषण करने मे, उसे आराम से रखने में वह रात–दिन लगा रहता है। उसका सारा कार्य अविवेक से और अव्यवस्थित होता है।
- अन्त मे पापश्रमण के निन्द्य जीवन का तथा श्रेष्ठश्रमण के वन्द्य जीवन का दिग्दर्शन कराया गया है।

१७. पाप-श्रमणीय

जे केइ उ पव्वइए णियंठे,
धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे ।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं,
विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु।।१।।

जो पूर्व धर्म सुनके, कर बोधि लाभ
आचार में रत रहा, परियाम में भी ।
निर्ग्रन्थ दीक्षित बना, पर अन्त में हैं
सौख्य स्पृहा हित सुतन्त्र विहार का भी ।।

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि,
उप्पज्जई भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्टइ आउसु त्ति,
किं णाम काहामि सुएण भंते!।।२।।

आचार्य और गुरु शास्त्र निदर्शना पै-
वो दुर्मुखी बन कहे, निज भावना से ।
मैं वस्त्र खाद्य अरु थान मनोज्ञ पाऊँ
शास्त्रीय पाठ किस हेतु बने प्रवृत्ति ? ।।२

जे के इमे उ पव्वइए,
णिद्दासीले पगाम-सो ।
भोच्चा-पेच्चा सुहं सुवइ,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।३।।

दीक्षा विशेष लहके बहु नींद लेता-
खाता यथेप्सित सदा, अरु पेय पीता ।
आराम धाम सुख से, शयन क्रियावान्
है, पाप साधु कहते, उसको मनीषी ।।३।।

आयरिय-उवज्झाएहिं,
सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसइ बाले,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।४।।

आचार्य से श्रुत-धरादिक से विनेय-
आचार को ग्रहण भी करके सदैव ।
निन्दा करे, यदि विचार विवेकहीन
होता जिनेन्द्र पथ से, वह नष्ट साधु ।।४।।

आयरिय-उवज्झायाणं,
सम्मं ण पडितप्पइ ।
अप्पडि-पूयए थद्धे,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।५।।

आचार्य की श्रुतधरादिक की, न चिन्ता
एवम् अनादर करे, गुरुदेव का जो ।
है ठीक वो श्रमण साधक पाप रूप
होता न योग्य, जिन-शासन के कदापि ।।५।।

सम्मद्दमाणे पाणाणि,
बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजय-मण्णमाणे,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।६।।

जो द्वीन्द्रियादि अरु बीज वनस्पती को-
संमर्दना नित करे, वह निर्दयी है ।
निर्ग्रन्थ भाव निज लक्ष्य रहे, जिसे न
पापात्म साधक कहा, प्रभु ने उसे है ।।६।।

संथारं फ़लगं पीढं,
णिसेज्जं पायकम्बलं ।
अप्पमज्जिय-मारुहइ,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।७।।

संस्तारकादि फलकादि व पीठ भूमि-
जो पाद कम्बल न मार्जित है बनाता ।
वो साधना रहित साधक है अवश्य
पापी कहा श्रमण को प्रभुवीर ने है ।।७।।

दव-दवस्स चरइ,
पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चण्डे य,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।८।।

जो शीघ्रतायुत गती करता प्रमाद
आचार शून्य मरयादित भी नहीं है ।
क्रोधाभिभूत विधिहीन मनोविहारी
वो पापलिप्त यति है, अभिमान धारी ।।८।।

पडिलेहेइ पमत्ते,
अवउज्झइ पायकम्बलं ।
पडिलेहा - अणाउत्ते,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।९।।

होके प्रमत्त करता प्रतिलेखनादि-
पात्रादि की न करता सविशेष चिन्ता ।
निर्ग्रन्थ धर्म परिपालन में न निष्ठा
पापी कहा श्रमण को, विभुवीर ने हैं ।।९।।

पडिलेहेइ पमत्ते,
से किंचि हु णिसामिया ।
गुरु परिभावए णिच्चं,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१०।।

बातें करे, विषय की प्रतिलेखना में
होके प्रमत्त विचरे, मनसा विहारी ।
ध्यातव्य पूज्यजन की अवमानना हो
संख्यात पाप यति है, श्रुत में निदिष्ट ।।१०।।

बहुमाई पमुहरे,
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।११।।

माया- प्रधान मुखरी अपभीत लोभ,
कामाभिभूत विकलेन्द्रिय घात चित्त ।
जो संविभाग परिशून्य यशोऽभिलाषी
वो पापशील-यति है, यतनाविहीन ।।११।।

विवादं य उदीरेइ,
अहम्मे अत्त-पण्णहा ।
वुग्गहे कलहे रत्ते,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१२।।

जो शान्त वाद दव को, फिर से लगाता
प्रज्ञा, अधर्म हित में अपनी जगाता ।
एवम् कदाग्रह तथा कलहादिपूर्ण
पापी उसी श्रमण को कहते मनीषी ।।१२।।

अथिरासणे कुक्कुइए,
जत्थ तत्थ णिसीयई ।
आसणम्मि अणाउत्ते,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१३।।

जो बैठता स्थिर नहीं, निज हस्तपाद-
चांचल्यपूर्ण रखता विकृतात्मचेष्ट ।
जो योग्य आसन निसेद न जानता है
पापी उसी श्रमण को कहते श्रुतज्ञ ।।१३।।

ससरक्ख-पाए सुवई,
सेज्जं ण पडिलेहिए ।
संथारए अणाउत्ते,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१४।।

संलिप्त धूलि पद से शयनाधिकारी-
शय्या-प्रमार्जन जिसे कब रोचता है ?
संस्तारकादिक विषै नहि सावधान-
पापी उसे श्रमण को कहते श्रुतज्ञ ।।१४।।

दुद्ध-दही-विगईओ,
आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवो कम्मे,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१५।।

जो दुग्ध का सुविधि का उपभोगकारी-
एवम् तपादि जिसको नहिं रोचता है ।
वो साधना विमुख है, पथ से विलुप्त
पापी उसे श्रमण को कहते विबुद्ध ।।१५।।

अत्यन्तम्मि य सूरम्मि,
आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१६।।

सूर्योदयास्तमित काल विशेष भोजी-
जो वार वार करता, नहि मानता है ।
शिक्षा स्वयं न लहता उपदेशकारी-
पापी उसे श्रमण को कहते विबुद्ध ।।१६।।

आयरिय-परिच्चाई,
परपासण्ड-सेवए ।
गाणं गणिए दुब्भूए,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१७।।

आचार्य को न, रखता अपने सदैव-
पाषण्डि दुर्विनय को गुरु भी बनाता ।
एकत्र शान्त रहता, नहि गच्छ मे भी
पापी उसे श्रमण को कहते श्रुतज्ञ ।।१७।।

सयं गेहं परिच्चज्ज,
पर गेहंसि वावरे ।
णिमित्तेण य ववहरई,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१८।।

संत्यक्त नैज गृह भी, परगेह सेवी-
द्रव्यादि अर्जन करे, बनके निमित्ती ।
संसार में नित पचे, पचनाभिलाषी
पापी गृही श्रमण को, कहते श्रुतज्ञ ।।१८।।

सण्णाइ-पिण्डं जेमेइ,
णेच्छइ सामुदाणियं ।
गिहि-णिसेज्जं च वाहेइ,
पावसमणे त्ति वुच्चइ।।१९।।

जो भिक्षु वृत्ति करता स्वजनादिकों से
सामान्य सर्व गृह की विनिवर्जना से ।
शय्योपभोग करता बनके निशंका-।
पापी उसे श्रमण को कहते मनस्वी ।।१९।।

एयारिसे पंच-कुसील-संवुडे,
रूवंधरे मुणि-पवराण हेट्ठिमे ।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए,
ण से इहं णेव परत्थ लोए।।२०।।

जो ध्यान आचरण पै रखता नहीं है
पार्श्वस्थ के सम कुशील विकारशील ।
है, वेष धारक यती जन में निकृष्ट
है लोक में, विष सरूप विनिन्दनीय ।।२०।।

जे वज्जए एए सया उ दोसे,
से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे ।
अयंसि लोए अमयं व पूइए,
आराहए लोगमिणं तहा परं।।२१।।

जो साधु दोष परिमुक्त व सुव्रती है
वो लोक में अमृत के सम पूजनीय ।
संसार पार परलोक सुवन्दनीय
आराधना नित करे, शमनैकवृत्ति ।।२१।।
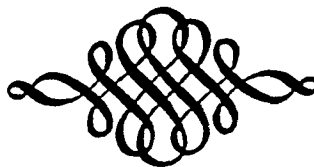
१८ अध्ययन : संजयीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- उत्तराध्ययन सूत्र का अठारहवॉ अध्ययन (1) सजयीय अथवा (2) संयतीय है। यह नाम संजय (राजर्षि) अथवा संयति (राजर्षि) के नाम पर से पड़ा है।
- इस अध्ययन के पूर्वार्द्ध मे 18 गाथाओ तक संजय (या संयति) राजा के शिकारी से पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थमुनि के रूप मे परिवर्तन की कथा अंकित है।
- उत्तरार्द्ध में, जब कि संजय मुनि गीतार्थ, कठोर श्रमणाचारपालक और एकलविहार–प्रतिमाधारक हो गए थे, तब एक क्षत्रिय राजर्षि ने उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र की थाह लेने के लिए उनसे कुछ प्रश्न पूछे। तत्पश्चात् क्षत्रियमुनि ने स्वयं स्वानुभवमूलक कई तथ्य एकान्तवादी क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद एव अज्ञानवाद के विषय में बताए, अपने पूर्वजन्म की स्मृतियो का वर्णन किया।
- गाथा 34 से 51 तक में भगवान् महावीर के जिनशासनसम्मत ज्ञान–क्रियावादसमन्वय रूप सिद्धान्तो पर चल कर जिन्होने स्वपरकल्याण किया, उन भरत आदि 16 महान् आत्माओ का सक्षेप मे चारित्र चित्रण प्रस्तुत किया है। इन गाथाओं द्वारा जैन इतिहास की पुरातन कथाओ पर काफी प्रकाश डाला गया है।
- अन्तिम तीन गाथाओं द्वारा क्षत्रियमुनि ने अनेकान्तवादी जिनशासन को स्वीकार करने की प्रेरणा दी है तथा उसके सुपरिणाम के विषय मे प्रतिपादन किया गया है।

१८. संजयीय

कम्पिल्ले णयरे राया,
उदिण्ण-बल-वाहणे ।
णामेणं संजओ णामं,
मिगव्वं उवणिग्गए।।१।।
हयाणीए गयाणीए,
रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया,
सव्वओ परिवारिए।।२।।

काम्पिल्य में नृप चमू व रथादिकों से-
सम्पन्न संजय यशोधन शोभशाली ।
वो एक बार मृगया रमणार्थ शक्त-
ले, सैन्य संग निकला, निज राज्य से था ।।१-२।।

मिए छुहित्ता हयगओ,
कम्पि-ल्लुज्जाण-केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ,
वहेइ रस-मुच्छिए।।३।।

अश्वाधिरूढ रसमूर्च्छित भीतचित्त
उद्यान आगत अनुद्रुत धावकों से ।
सुश्रान्त दीप्त वन से, हरिणादिकों की
संताडना कर रहा, नृप जीवघाती ।।३।।

अह केसरम्मि उज्जाणे,
अणगारे तवोधणे ।
सज्झाय-ज्झाण-संजुत्ते,
धम्मज्झाणं झियायइ।।४।।

उद्यान में तप रहे, तप से तपस्वी
स्वाध्याय में सततलीन सुयोग्यनिष्ठ ।
ध्यानस्थ धर्म धृति के प्रथित प्रतीक
एकाग्रशील मुनि थे, शुभ भाव भूष ।।४।।

अप्फोव-मण्डवम्मि,
झायइ-क्खवियासवे ।

वे आश्रवादि परिमुक्त, लता निकुंज-
ध्यानस्थ थे, मुनि महाकरुणापरीत-।

तस्सागए मिगे पासं,
वहेइ से णराहिवे।।५।।

आए, समीप मृग को उसने विनाशा
क्रूर स्वभाव नृप में दयना कहाँ थी ? ।।५।।

अह आसगओ राया,
खिप्प-मागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता,
अणगारं तत्थ पासइ।।६।।

आया, नरेश हय पै चढ़के वहाँ पै
ध्यानस्थ थे मुनि जहाँ, निज भावना से।
पंचत्व लब्ध मृग देख, महीप ने था
देखा, वहाँ परम संयम साधनार्थी ।।६।।

अह राया तत्थ सम्भंतो,
अणगारो मणाहओ ।
मए उ मंद-पुण्णेणं,
रस-गिद्धेण धंतुणा।।७।।

राजा वहाँ पर सुसाधक सन्त देख-
सम्भ्रान्तपूर्ण भय कम्पित था विशेष ।
हूँ मन्द पुण्य रस सक्त विहिंस्रकर्मी
मैंने किया, व्यथित शान्तमुनीश को है ।।७।।

आसं विसज्जइत्ताणं,
अणगारस्स सो णिवो ।
विणएण वंदए पाए,
भगवं एत्थ मे खमे।।८।।

अश्वादि-हीन, मुनि की परिवन्दना की-
एवम् कहा प्रभु महा अपराध मेरा ।
देवें क्षमा, अब दया करके विशेष-
मैं मन्दभाग्यजन हूँ हरिणापहन्ता ।।८।।

अह मोणेण सो भगवं,
अणगारे झाण मस्सिए ।
रायाणं ण पडिमंतेइ,
तओ राया भयद्दुओ।।९।।

संयामपूर्ण शुचि साधक मौन साधु-
बोले न एक पद भी, कृतिलीनता से।
दोषाभिभूत निज का अपराध माना-
राजा हुआ, तब भयाकुलता परीत ।।९।।

संजओ अहमम्मीति,
भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे,
डहेज्ज णर-कोडिओ।।१०।।

हूँ संजय, प्रवर-तेज-विशिष्ट आप
तो क्यों न देव ! मुझसे कुछ बोलते हैं।
है सत्य क्रुद्ध अनगार मनस्विता से-
संदग्ध भस्म करते जन को प्रभूत ।।१०।।

अभओ पत्थिवा ! तुब्भं,
अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीव-लोगम्मि,
किं हिंसाए पसज्जसि?।।११।।

हे पार्थिव प्रमुख ! तू भय से विमुक्त
तू भी अभीति-धन का बन दानदाता ।
क्यों व्यर्थ मानव बना जग में प्रमत्त ?
संलग्न हिंस्र पथ का गमनाभिलाषी ।।११।।

जया सव्वं परिच्चज्ज,
गंतव्व-मवसस्स ते ।
अणिच्चे जीव-लोगम्मि,
किं रज्जम्मि पसज्जसि।।१२।।

सर्वस्व छोड़ करके इस लोक से है-
जाना अवश्य परलोक अशक्त होके ।
तो क्यों अनित्य जन शासन में रमे हो ?
आसक्ति का उदय है, किस हेतुता से ?।।१२।।

जीवियं चेव रूवं च,
विज्जु-संपाय-चंचलं ।
जत्थ तं मुज्झसि रायं,
पेच्चत्थं णाव-बुज्झसे।।१३।।

राजन्य ! मोह परिमुग्ध बने हुए हो
विद्युद् विभा सम रही जग कामना है ।
शुभ्राभ्र यौवन निरा इसमें न शंका
चिन्ता नहीं कर रहे, परलोक की क्यों ? ।।१३।।

दाराणि य सुया चेव,
मित्ता य तह बंधवा ।
जीवंत-मणु-जीवंति,
मयं णाणुव्वयन्ति य।।१४।।

योषा न पुत्र अरु मित्र व बन्धु वर्ग-
जीते तभी तक रहे, निज संग में है ।
प्राणान्त में न, अनुगामि बने कदापि-
एकाकि-जीव जग में फिरता वराक ।।१४।।

णीहरंति मयं पुत्ता,
पियरं परम-दुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते,
बंधू रायं ! तवं चरे।।१५।।

अत्यन्त दुःख विनिमज्जित पुत्र नैज-
पंचत्व लब्ध जनकादिक को मसान-
में है निकाल रखते, फिर पुत्र को भी-
औ बन्धु को तदनुरूप निकालते हैं ।।१५।।

तओ तेणऽज्जिए दव्वे,
दारे य परि-रक्खिए ।
कीलंतिऽण्णे णरा रायं,
हट्ठ-तुट्ठ-मलंकिया।।१६।।

मृत्यूपरान्त मृत अर्जित वस्तुओं का-
एवम् सुरक्षित रही, प्रिय योषितों का-
संहृष्ट पुष्ट बनके कर साजसज्जा-
पूर्णोपभोग करते नित दूसरे ही ।।१६।।

तेणावि जं कयं कम्मं,
सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो,
गच्छइ उ परं भवं।।१७।।
सोऊण तस्स सो धम्मं,
अणगारस्स अंतिए ।
महया संवेग-णिव्वेयं,
समावण्णो णराहिवो।।१८।।

जैसे किये करम है अनुकूल शूल-
पाता, वहाँ पर गती उस रूप में है ।
धर्मादि जानकर के वह भूप, मोक्ष-
में प्राप्त होकर रहा, मुनि देशना से ।।१७-१८।।

'संजओ' चइउं रज्जं,
णिक्खंतो जिण-सासणे ।
'गद्दभालिस्स' भगवओ,
अणगारस्स अंतिए।।१९।।

राज्यादि छोड़कर संजय बोध पाके
आये, यती चरण में सुन देशना को ।
प्राग्जन्म पुण्यचय से विनिवृत्तकाम
निर्ग्रन्थ रूप अनगार बने सहर्ष ।।१९।।

चिच्चा रट्ठं पव्वइए,
खत्तिओ परिभासइ ।
जहा ते दीसइ रूवं,
पसण्णं ते तहा मणो।।२०।।

राष्ट्र प्रमुक्त कर दीक्षित हो विशेष-
क्षात्र-प्रधान मुनि साधक ने कहा यूँ- ।
जैसा प्रसन्न तव बाह्य सरूप शुद्ध
वैसा गभीर निखरा मन दीखता है ।।२०।।

किं णामे किं गोत्ते,
कस्सट्ठाए व माहणे ।
कहं पडियरसी बुद्धे,
कहं विणीए त्ति वुच्चसि।।२१।।

क्या नाम गोत्र किस दृष्टि विशेष से है
मौनीन्द्र का पथ लिया, अविकार रूप ।
आचार्य कौन जिनके तुम शिष्य रत्न ?
कैसे विनीत निज जीवन पा गए हो ।।२१।।

संजओ णाम णामेणं,
तहा गोत्तेण गोयमो ।
'गद्दभाली' ममायरिया,
विज्जा-चरण-पारगा।।२२।।

है नाम संजय ! व गौतम गोत्र मेरा
विद्या प्रपूर्ण चरणादिक पारगामी-।
हैं गर्दभालि गुरुदेव, दया निधान-
आचार्य चारुचरितावलि संवली हैं ।।२२।।

किरियं अकिरियं विणयं,	अज्ञान औ विनय कृत्य अकृत्य रूप
अण्णाणं च महामुणी ।	एकान्तवाद परतत्त्व विचारकों की-
एएहिं चउहिं ठाणेहिं,	सत्यार्थ से रहित धर्म निरूपणा को-
मेयण्णे किं पभासइ।।२३।।	स्वेच्छा प्रधान हित शून्य कहा गया है ।।२३।।
इइ पाउकरे बुद्धे,	संबुद्ध तत्त्व परिनिवृत शान्तचेता-
णायए परिणिव्वुए ।	विद्या सदाचरण से परिपूर्ण विज्ञ-
विज्जा-चरण संपण्णे,	संशुद्ध वाक् भरित वंश विशिष्ट शोभी
सच्चे सच्च-परक्कमे।।२४।।	श्री वर्धमान विभु ने विधि से कहा यूं ।।२४।।
पडंति णरए घोरे,	जो पाप आचरण में निज को लगाता
जे णरा पाव-कारिणो ।	वो घोर नर्क गति में पड़ता वराक ।
दिव्वं च गइं गच्छंति,	जो आर्य धर्म विधि से परिपालता है
चरित्ता धम्ममारियं।।२५।।	वो दिव्य-मार्ग-पद का अधिकार पाता ।।२५।।
माया-वुइय-मेयं तु,	एकान्तवाद परिनिष्ठित भी नहीं है
मुसा-भासा णिरत्थिया ।	माया प्रपंच परिपूर्ण निदेशना है,
संजममाणो-ऽवि अहं,	मिथ्यात्वपूर्ण वच अर्थविहीनता है
वसामि इरियामि य।।२६।।	वाग्जाल में न पड़ता, यतना विधान ।।२६।।
सव्वेते विइया मज्झं,	संज्ञात हैं, सकल वादि-सरूप जानो
मिच्छादिट्ठी अणारिया ।	मिथ्यात्व दृष्टि दयनीय अनार्य भी है ।
विज्जमाणे परे-लोए,	है विद्यमान परलोक न, रंच शंका
सम्मं जाणामि अप्पयं।।२७।।	सम्यक् प्रकार निज को पहचानता हूँ ।।२७।।
अहमासी महापाणे,	मै था महाद्युति विशेष विमानवासी
जुइमं वरिससओवमे ।	एवम् शतोपम महायु व दीप्तिमान ।
जा सा पाली-महापाली,	जैसे यहॉ पर शतायु विशिष्टता है
दिव्वा वरिसस-ओवमा।।२८।।	वैसे वहॉ पल व सागर की अवस्था ।।२८।।

से चुए बम्भ-लोगाओ,
माणुसं भव-मागए ।
अप्पणो य परेसिं च,
आउं जाणे जहा तहा।।२६।।

आयुष्य पूर्ण करके अमरादिकों की
आया, मनुष्य भव में निज आयु विज्ञ-।
वैसे विभिन्न जन की वय से अभिज्ञ-
हूँ, बात सत्य यह है, नित माननीय ।।२६।।

णाणारुइं च छंदं च,
परिवज्जेज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था,
इइ विज्जा-मणुसंचरे।।३०।।

नाना प्रकार रुचि छन्द अनर्थकारी
व्यापार का त्यजन ही सुख रूप में है ।
निर्ग्रन्थ मार्ग पर तत्त्व विशिष्टता से-
होवे, सदा गमन संयत साधकों का ।।३०।।

पडिक्कमामि पसिणाणं,
परमन्तेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं,
इइ विज्जा तवं चरे।।३१।।

मैं तो शुभाशुभ फलादिक के विषै में-
एवं गृहस्थ परिमन्त्रण से सुदूर-।
धर्मार्थ उद्यत सदा निज साधना में-
हो, जान के तुम तपश्चरणाभिसक्त ।।३१।।

जं च मे पुच्छसि काले,
सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे,
तं णाणं जिण-सासणे।।३२।।

सम्यक् विशुद्ध मन से कल काल पृच्छा
जो है उसे प्रकट भी जग में किया है ।
सर्वज्ञदिष्ट पथ को परमार्थ मानो
ये ज्ञान जैनमत में ध्रुव विद्यमान ।।३२।।

किरियं च रोअए धीरो,
अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठीए दिट्ठीसंपण्णे,
धम्मं चर सु-दुच्चरं।।३३।।

संधीर वीर नर की रुचि हो क्रिया में
संत्याग हो, निखिल बाधक अक्रिया का ।
सम्यक् प्रधान रख दृष्टि सुदृष्टि पूर्ण
दुश्चर्य धर्म पथ पै गमनाकृती हो ।।३३।।

एयं पुण्णपयं सोच्चा,
अत्थ-धम्मोव सोहियं ।
'भरहोऽवि' भारहं वासं,
चिच्चा कामाइं पव्वए।।३४।।

धर्मार्थ से सतत शोभित देशना को
श्रोतृ प्रधान सुन के नृप चक्रवर्ती ।
संत्यक्त, भारत व काम भरे विकार
आत्मोन्नती पथ वढ़े भरताभिधान ।।३४।।

'सगरोऽवि' सागरन्तं,	पृथ्वीश राज नृप सागर चक्रवर्ती
भारहवासं णराहिवो ।	आसागर प्रमुख भी अधिकार पाके ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा,	ऐश्वर्यपूर्ण सुख साधन सम्पदा से
दयाए परिणिव्वुडे।।३५।।	निर्वृत्त थे विमल संयत साधनार्थी ।।३५।।
चइत्ता भारहं वासं,	ऋद्धिप्रपूर्ण जग में महनीय कीर्ति
चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।	शान्ति प्रधान मघवा नृप ने सहर्ष ।
पव्वज्ज-मब्भुव-गओ,	ऐश्वर्यहीन बन के करुणापरीत
मघवं णाम महाजसो।।३६।।	निर्वाण लाभ करके शिव सौख्य पाया ।।३६।।
'सणंकुमारो' मणुस्सिंदो,	ऋद्धि प्रधान नृप चक्रि सनत्कुमार-
चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।	ने राज्य पुत्र हित दे, विनिवृत्त काम-।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं,	जाना महत्त्व तप का, दृढ़ संयमी का
सोऽवि राया तवं चरे।।३७।।	दीक्षा गृहीति विधि से, कर मोक्ष पाया ।३७।।
चइत्ता भारहं वासं,	ऋद्धि प्रशस्त अरु शान्ति सरूपधारी
चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।	श्री शान्तिनाथ अपने युग के प्रधान-।
'संती' संतिकरे लोए,	थे चक्रवर्ति-पदवी-कलितावदात
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।३८।।	पाई, अनुत्तर गती विजयोपहार ।।३८।।
इक्खागु-राय-वसभो,	इक्ष्वाकु दिव्य कुल के महनीय धाम
'कुंथू' णाम णरेसरो ।	विख्यात कीर्ति रुचिमान् चरिताग्रयायी ।
विक्खाय-कित्ती भगवं,	राजाधिराज पट कुन्थु महीपती नें-
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।३९।।	पाया अलभ्यतम, निवृत्ति धाम धूर्य-।।३९।।
सागरन्तं चइत्ताणं,	क्षीरोदधी तक रहा, अधिकार पूर्ण-
भरहवासं णरेसरो ।	राजा बने, अर जगे, जग से विमुक्त-।
"अरो" य अरयं पत्तो,	कर्मारि नष्ट करके दृढ भूपती ने
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।४०।।	दीक्षा लही, सतत कर्म-रजादिरिक्त ।।४०।।

चइत्ता भारहं वासं,
चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
चिच्चा य उत्तमे भोए,
'महापउमे' तवं चरे।।४१।।

संत्याग के विविध उत्तम भोग जात
सौविध्य पूर्ण निज भारत भूमि को भी-।
पद्माभिधान, जग कीर्तित चक्रवर्ती-
ने था किया, तप महत्तम-साधना से ।।४१।।

एगच्छत्तं पसाहित्ता,
महिं माण-णिसूरणो ।
'हरिसेणो' मणुस्सिंदो,
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।४२।।

सर्वारि वर्ग जन का, कर मानमर्द
एकाधिकार लह के वसुधाधिपों का-।
संसार में प्रथित हो, हरिषेण चक्र-
वर्ती गये, परम धाम विशिष्टता से ।।४२।।

अण्णिओ राय-सहस्सेहिं,
सु-परिच्चाई दमं चरे ।
'जयणामो' जिणक्खायं,
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।४३।।

संगी सहस्र नृप ले, सृति नेह छोड़
दीक्षा लही, जय महीपति ने सहर्ष ।
सर्वज्ञदिष्ट दम का नित आचरी हो
पाई, अनुत्तर गती शिव सौख्यकारी ।।४३।।

'दसण्ण-रज्जं' मुइयं,
चइत्ताणं मुणी चरे ।
'दसण्णभद्दो' णिक्खन्तो,
सक्खं सक्केण चोइओ।।४४।।

दाशार्णभद्र नृप ने सुर संविदा से
संबोधि लाभ करके मुनि सुव्रतों की-।
दीक्षा लही, सकल राज्यविहीन होके
पाई, समुज्ज्वल गती विनिमुक्तिकारी ।।४४।।

'णमी' णमेइ अप्पाणं,
सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही,
सामण्णे पज्जुव-ट्ठिओ।।४५।।

साक्षात् सुरेन्द्र कृत साधक ईरणा से
राजा विदेह पद के नमि नीति नम्र ।
श्रामण्य धर्म धृति दाढ्‌र्य विशेष पाके
यात्री विमोक्ष पथ के सुबने तपस्वी ।।४५।।

'करकण्डू' कलिंगेसु,
पंचालेसु य दुम्मुहो ।
'णमी राया' विदेहेसु,
'गंधारेसु' य णग्गई।।४६।।

पांचाल के दुमुख और कलिंगशासी
कर्कण्डु और नमि दिव्य विदेह राज-।
गान्धार शासक सुनग्गइ आत्मजों को
दे, राज्य को, सुमति साधु बने मनस्वी ।।४६-४७।।

एए णरिंद-वसभा,
णिक्खंता जिण-सासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं,
सामण्णे पज्जुवट्ठिया।।४७।।

सोवीर- राय-वसभो,
चइत्ताणं मुणी चरे ।
'उद्दायणो' पव्वइओ,
पत्तो गइ-मणुत्तरं।।४८।।

सौवीर राज्य नरपुंगव शक्तिशाली
ऊदायनाभिध महीपति ने सुधूर्य ।
राज्यादि छोड़कर के शिव साधु होके-
पाई, अनुत्तर गती विपुलोपकारी ।।४८।।

तहेव 'कासीराया' वि,
सेओ-सच्च-परक्कमे ।
काम-भोगे परिच्चज्ज,
पहणे कम्म-महावणं।।४६।।

कल्याण सत्य पथ के सततानुयायी
कामादि भोग भव को, तज के तपस्वी ।
काशी प्रशासक पराक्रमशील साधु
हो, कर्म गूढ़ वन को पल में विनाशा ।।४६।।

तहेव 'विजओ' राया,
अणट्ठा-कित्ति पव्वए ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं,
पयहित्तु महाजसो।।५०।।

ऐसे यशोधन विजै नृप ने समृद्ध
राज्यादि छोड़ गुण भूषित भाग्यशाली ।
आत्मार्थ-भूरि हित-साधन-भावना से-
स्वीकार की, शिव-निरापद-संप्रवज्या ।।५०।।

तहेवुग्गं तवं किच्चा,
अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
'महब्बलो' रायरिसी,
अद्दाय सिरसा सिरिं।।५१।।

ऐसे अनाकुल समाहित चित्त वृत्ति-
राजर्षि संप्रथित धूत समग्र पाप ।
शासी महाबल महामहिमाभिभूत-
ने सिद्धिसार पद लाभ लिया, निरभ्र ।।५१।।

कहं धीरो अहेऊहिं,
उम्मत्तो व महिं चरे ।
एए विसेस-मादाय,
सूरा दढ-परक्कमा।।५२।।

स्वीकार था, ध्रुव किया, इन शासकों ने
अर्हन्त दिव्य पथ को शुभ भावना से-
कोई नहीं, अव निराश्रय हो, जहाँ में-
भ्रान्ताभिभूत वनके मनुजाभिधान ।।५२।।

अच्चंत-णियाण-खमा,
सच्चा मे भासिया वई ।
अतरिन्सु तरंतेगे,
तरिस्संति अणागया।।५३।।

अत्यन्त युक्ति परिपूरित सत्यवाणी
मैंने कही, सतत सेव्य सरूप जानो ।
स्वीकार सत्य, करके इसको समग्र-
संसार सागर तरें, नित भव्य जीव ।।५३।।

कहं धीरे अहेऊहिं,
अत्ताणं परियावसे ।
सव्व-संग-विणिम्मुक्के,
सिद्धे भवइ णीरए।।५४।।

एकान्तवाद हित कारक भी नहीं है
वाग्जाल में न पड़ना, जन को अभीष्ट ।
संगादि मुक्त बन, नीरज निर्विकार
संसिद्धि लाभ लहता नित साधनार्थी ।।५४।।
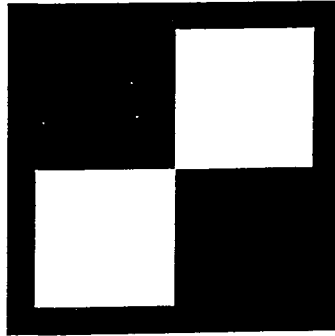
१९ अध्ययन : मृगापुत्रीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- इस अध्ययन का नाम मृगापुत्रीय (मियापुत्तिज्जं) है, जो मृगा रानी के पुत्र से सम्बन्धित है।
- मृगापुत्र का सामान्य परिचय देकर, उसे संसार से विरक्ति कैसे हुई ? उसने अपने माता–पिता से भी अनन्तगुणे कष्टो एवं दु खो वाले नरकों तथा अन्य गतियों का अपना जाना–माना सजीव वर्णन करके माता–पिता से दीक्षा की अनुज्ञा प्राप्त करने मे कैसे सफल हो जाता है ? तथा मृगापुत्र दीक्षा लेने पर किन गुणो से समृद्ध होकर सिद्ध–बुद्ध–मुक्त हुआ ? इन सब विषयो का विशद वर्णन इस अध्ययन मे है।

१९. मृगापुत्रीय

सुग्गीवे णयरे रम्मे,
काण-णुज्जाण-सोहिए।
राया बलभद्दि त्ति,
मिया तस्सग्गमहिसी।।१।।

उद्यान शोभित विशाल पुरी सुरम्य-
सुग्रीव नाम जिसका अति भव्यशाली ।
राजा स्वतन्त्र बलभद्र सुनाम का था-
राज्ञी प्रधान सुमृगा जिसकी भली थी ।।१।।

तेसिं पुत्ते बलसिरी,
मियापुत्ते-त्ति विस्सुए।
अम्मा-पिऊण दइए,
जुवराया दमीसरे।।२।।

तत्पुत्र था, बलसिरी शुभनाम धारी-
शोभा विशेष जिसकी वितताधरा में ।
था वो प्रसिद्ध जग में, मृग पुत्र नामा-
दुष्टातिदुष्ट जन का दमनाधिकारी ।।२।।

णंदणे सो उ पासाए,
कीलए सह इत्थिहिं।
देवो दोगुन्दगो चेव,
णिच्चं मुइय-माणसो।।३।।

प्रासाद नन्द जिसमें, सुख भोगता था
योषित् विशेष नित संग सदा सुहाता ।
सामोद रूप दिन था, अपना बिताता
देवेन्द्र देव सम भोग सदा क्रिया से ।।३।।

मणि-रयण-कुट्टिम-तले,
पासायालोयणे ठ्विओ।
आलोएइ णगरस्स,
चउक्क-त्तिय-चच्चरे।।४।।

रत्नादि दिव्य परिमण्डित भव्य सौध-
वातायनीय थल पै मृगपुत्र बैठा ।
सुग्रीव मार्ग परितः वह देखता था
सर्वत्र दृष्टि जिसकी सविशेष फैली ।।४।।

अह तत्थ अइच्छन्तं,
पासइ समण-संजयं।
तव-णियम-संजमधरं,
सीलड्ढं गुणआगरं।।५।।

दृष्टि प्रसार अपनी चहुँ ओर देखा-
शीलात्म धर्म धन के मुनि को विलेखा।
ज्ञानादि रूप मुनि में सुविशिष्ट छाया
लोकस्थ भोग जिसने मन से विसारा ।।५।।

तं पेहइ मियापुत्ते,
दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।
कहिं मण्णे रिसं रूवं,
दिट्ठपुव्वं मए पुरा।।६।।

साधु स्वभाव जब भाव हुए पुनीत-
मोहादिकर्म जिसके क्षय हो गए थे ।
अध्यात्म भाव मन में मृगपुत्र जागे
कैसा स्वरूप यह संयम का सुहाता ।।६।।

साहुस्स दरिसणे तस्स,
अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहं गयस्स संतस्स,
जाइसरणं समुप्पण्णं।।७।।

दृष्टि प्रसार करके जब संयमी को-
देखा, समुन्नत हुए मन में सुभाव-
जाति स्मृतीय मन में तब भाव जागा-
ऐसा स्वरूप पहले परिदृष्ट है क्या ? ।।७।।

देवलोग चुओ संतो,
माणुसं भव-मागओ ।
सण्णि णाण-समुप्पण्णे,
जाइं सरइ पुराणियं।।८।।

जाति स्मृतीय जब बोध हुआ विशेष-
स्वान्तः प्रबोध मन में बस एक आया।
देवत्व भाव तज के नर रूप पाया
किन्तु प्रकर्षपन का न अबोध छाया ? ।।८।।

जाइसरणे समुप्पण्णे,
मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं,
सामण्णं च पुराकयं।।९।।

जाति स्मृतित्व जब मानस में समाया-
वैराग्य भाव तब ही मन में हुआ था।
धर्मादि कार्य करके निज को सुधारूँ
अध्यात्म बोध सरिता मुझ में बहाऊँ ।।९।।

विसएसु अरज्जंतो,
रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मा-पियर-मुवागम्म,
इमं वयण-मब्बवी।।१०।।

भोगादि कर्म मन से जिसने हटाए
आत्मीय भाव निज में रुचि से जगाए।
माता पिता पद समीप गया प्रसन्न-
बोला, विरक्त मुनि रूप मुझे सुहाता ।।१०।।

सुयाणिमेपंच-महव्वयाणि,
णरएसु दुक्खं य तिरिक्ख-जोणिसु ।
णिव्विण्ण-कामोमिमहण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो।।११।।

जाना, व्रतादि विधि से करणीय माना
नर्कादि रूप परिवेदन भी हुआ है ।
तिर्यंच योनि गति के दुख जान पाया
संसार सागर सदा भटका हुआ हूँ ।।१

अम्म-ताय ! मए भोगा,
भुत्ता विस-फलोवमा ।
पच्छा कडुय-विवागा,
अणुबंध दुहावहा।।१२।।

कामादि भोग फल को पहचानता हूँ
भोगादि हेतु विधि को सब जानता हूँ ।
सम्पूर्ण कर्म अपने फल को दिखाते
किंपाक रूप उनके दिखते सुहाने ।।१

इमं सरीरं अणिच्चं,
असुइं असुइ-संभवं ।
असासया-वासमिणं,
दुक्ख-केसाण भायणं।।१३।।

नित्य प्रहीन शुचिता, न यहाँ दिखाती
शौचादि शून्य जिसने यह जन्म धारा ।
संक्लेश पूर्ण नित भाजन भी बना है
आत्मा यहाँ न रहती, स्थिर रूपता में ।।१

असासए सरीरम्मि,
रइं णोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे,
फेण-बुब्बुय-सण्णिभे।।१४।।

बुद्-बुद् समान इस जीवन की कहानी-
गात्रादि पै, न ममकार रहा किसी का ।
कायादि के विषय में, न विमोदता है
त्यागी अवश्य बनना, पड़ता सभी को ।।१४

माणुसत्ते असारम्मि,
वाही-रोगाण आलए ।
जरा-मरण-घत्थम्मि,
खणंवि ण रमामहं।।१५।।

कुष्टादि दोष जिसमें बहु रूप राजे
रोगादि जन्म फल भी सविशेष पाते ।
पंचत्व धर्म जिसका शिखरातिशायी-
मानुष्य जन्म जग में क्षण में विनाशी ।।१५

जम्म-दुक्खं जरा-दुक्खं,
रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो,
जत्थ कीसंति जंतुवो।।१६।।

गर्भादि वास जननादिक दुःख रूप-
बाल्यादि यौवन जरा सविशेष कष्ट ।
रोगादि मृत्यु सब ही भव रूप ही है
आश्चर्य जीव जग में कृत भोगता है ।।१६।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च,
पुत्त दारं च बंधवा ।
चइत्ताणं इमं देहं,
गंतव्व-मवसस्स मे।।१७।।

क्षेत्रादि वास्तु गृह हेम विभूषणादि-
धात्वादि रम्य रजतादि विभिन्न रूपी-
सम्पूर्ण साधन सुयोग सुभोगकारी-
जाया, सुपुत्र तज के, परलोक जाते ।।१७।।

जहा किंपाग-फलाणं,
परिणामो ण सुंदरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं,
परिणामो ण सुंदरो।।१८।।

किंपाक रूप जिसका फल है विनाशी
आनन्दपूर्ण लगता भ्रम से सभी को ।
भुक्त्यादि कर्म करके मन खेद पाता
गर्तादि में वह सदा पड़ता वराक ।।१८।।

अद्धाणं जो महन्तं तु,
अप्पाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ,
छुहा-तण्हाए-पीडिओ।।१९।।

पाथेय मुक्त, नर का पथ भी भला क्या ?
मार्गीय दुःख उसको मिलते अवश्य ।
सम्यक् सुधा सुरस का यदि पान पाना
गन्तव्य लक्ष्य सफली अपना बनाना ।।१९।।

एवं धम्मं अकाऊणं,
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो दुही होइ,
वाही-रोगेहिं-पीडिओ।।२०।।

धर्म क्रिया बिन मनुष्य सदा भ्रमन्ते-
रोगादि आधि चय का बनता-वलम्ब ।
आत्मीय बोध करके दुख को मिटाके
नैया सुपार भव से अपनी लगाए ।।२०।।

अद्धाणं जो महन्तं तु,
सपाहेओ पवज्जइ ।
गच्छंतो सो सुही होइ,
छुहा-तण्हा-विवज्जिओ।।२१।।

पाथेय युक्त जन का पथ भी भला है
मार्गीय रोध जिससे मिटता सदा है ।
सम्यक् सुधा सरस का मृदु पान पाए
आत्मीय दीप पथ में जलता दिखाए ।।२१।।

एवं धम्मंऽवि काऊणं,
जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होई,
अप्पकम्मे अवेयणे।।२२।।

धर्मादि कृत्य करके चलता मनुष्य
मार्गीय कष्ट उसको मिलता नहीं है ।
होता सुकर्म करके सफली विशेष
पाता अदभ्र सुख है निज साधना से ।।२२।।

जहा गेहे पलित्तम्मि,	जैसे गृहादि जलते, उनको बचाने
तस्स गेहस्स जो पहू ।	स्वामित्व भार अपना वह है निभाता ।
सार-भाण्डाणि णीणेइ,	हेमादि वस्त्र उससे करता पृथक् है
असारं अवउज्झइ।।२३।।	वैसे विभोग तज के, निज को बचा लूँ ।।२३।।
एवं लोए पलित्तम्मि,	वृद्धत्व नाश सब ही भव में रुलाते
जराए मरणेण य ।	आत्म स्वरूप अपना पहचान पावे ।
अप्पाणं तारइस्सामि,	सम्यक्-प्रधान बनके निज को सुधारें
तुब्भेहिं अणुमण्णिओ।।२४।।	आत्मीय दीप सुख से जग में जलावें ।।२४।।
तं बिन्तम्मा-पियरो,	माता पितादि उसको कहते विशेष-
सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं ।	काठिन्य रूप रमता परिवर्जना में ।
गुणाणं तु सहस्साइं,	शीलार्थ पंथ चलना अति कष्टकारी
धारेयव्वाइं भिक्खुणो।।२५।।	संसार शून्य तुमको किस हेतु भाता ? ।।२५।।
समया सव्व-भूएसु,	साम्यादि भावपन से सब जीव जीवे-
सत्तु-मित्तेसु वा जगे ।	ध्यानादि कार्य करना अति दुःख में है ।
पाणाइवाय-विरई,	प्राणातिपात उनका व्रत भंग में है
जावज्जीवाए दुक्करं।।२६।।	रक्षादि कर्म विधि से हितकार मानो ।।२६।।
णिच्चकाल-ऽप्पमत्तेणं,	नित्य प्रमाद पन का परिहार भी हो
मुसावाय-विवज्जणं ।	सत्य प्रभाषण नहीं सुगम प्रवृत्ति ।
भासियव्वं हियं सच्चं,	शान्ति प्रकर्ष पल में मुझ में समाये
णिच्चा-उत्तेण दुक्करं।।२७।।	कर्मादि शत्रु भय से दुरि दूर जाए ।।२७।।
दंत-सोहण-माइस्स,	कोई अदत्त परवस्तु गहे, न भूले
अदत्तस्स विवज्जणं ।	है एषणा समिति पंथ विशेष भारी ।
अणवज्जेस-णिज्जस्स,	आज्ञा विना न रखने पड़ते पदार्थ
गिण्हणा अवि दुक्करं।।२८।।	आत्मीय वोध शुमता किस रूप लाये ? ।।२८।।

विरई अबम्भ-चेरस्स,
काम-भोग-रसण्णुणा ।
उग्गं महव्वयं बम्भं,
धारेयव्वं सुदुक्करं।।२६।।

कामादि कार्य परिहार बड़ी समस्या
होती नहीं सफलता इसमें कभी है ।
साधुत्व भाव परिखण्डित दीखते हैं
सम्यक् सुबोध पथ पै चलना न होता ।।२६।।

धण-धण्ण-पेस-वग्गेसु,
परिग्गह-विवज्जणं ।
सव्वारम्भ-परिच्चाओ,
णिम्ममत्तं सुदुक्करं।।३०।।

आरम्भ मार्ग परिवर्जन भी न होता
धान्यादि वस्तु चय का ममकार भारी ।
पारिग्रहत्व पर भी अधिकार कैसा ?
सम्यक् व्रतीय बनने, यदि आ गए हैं ।।३०।।

चउव्विहे वि आहारे,
राइभोयण-वज्जणा।
सण्णिही-संचओ चेव,
वज्जेयव्वो सुदुक्करं।।३१।।

आहार चार विधि का परिहार कार्य
रात्रि प्रभुक्ति विधि भी त्यजनार्थ में है ।
संग्राह्यसर्पि सब अन्य पदार्थ जो हैं
होती विधेय उनकी परिवर्जना है ।।३१।।

छुहा-तण्हा य सीउण्हं,
दंस-मसग-वेयणा।
अक्कोसा दुक्ख-सेज्जा य,
तण-फासा जल्लमेव य।।३२।।

तृष्णा क्षुधा मशक दंश सशीत उष्णा
आक्रोश आदि दुख का बनना विजेता ।
शय्या तृणादि मल पै सम भाव धारी
होना बड़ा कठिन है, इनका विजेता ।।३२।।

तालणा-तज्जणा चेव,
वह बंध-परीसहा ।
दुक्खं भिक्खायरिया,
जायणा य अलाभया।।३३।।

संताडना भय सभी वध बन्धनादि
भिक्षाचरादि विधि से परियाचना भी-।
लाभाद्यलाभ जिनकी स्थिति वेदना सी
काठिन्य पूर्ण दुखदायि परीषहादि ।।३३।।

कावोया जा इमा वित्ती,
केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं,
धारेउ य महप्पणो।।३४।।

कापोत वृत्ति गृह गोचर एषणा में
केशादि लोच करना सहना कठोर ।
ब्रह्मादि वृत्ति रखना असिधार में है-
जेता, विशेष इनका जिन धर्म में है ।।३४।।

सुहोइओ तुमं पुत्ता !,
सुकुमालो सुमज्जिओ ।
ण हु सि पभू तुमं पुत्ता !,
सामण्ण-मणुपालिया।।३५।।

सौख्यादि युक्त सुकुमार बने बड़े हो
स्नान प्रसाधन भरे, ध्रुव लेपनादि ।
आनन्द सागर सदा सुख से तरे हो
श्रामण्य पालन कहो, किस हेतु भाता ? ।।३५।।

जावज्जीव-मविस्सामो,
गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोह-भारुव्व,
जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो।।३६।।

लौहादि भार जिनका वहना दुरन्त
श्रामण्य धर्म पथ भी सबसे दुराप ।
यावत् प्रमाण इनमें, चलना अगम्य
तेरे लिए, सुगम मार्ग नहीं, प्रशस्त ।।३६।।

आगासे गंग-सोउव्व,
पडिसोउव्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव,
तरियव्वो य गुणोदही।।३७।।

व्योमादि गंग सरिता वर वारिधार
सिन्धू सुपार करना नद है अपार ।
वैसे सुबोधपन को किमि पा सकोगे ?
सोचों, विचार विधि से नय नम्रता से ।।३७।।

बालुया-कवले चेव,
णिरस्साए उ संजमे ।
असिधारा-गमणं चेव,
दुक्करं चरिउं तवो।।३८।।

बालू जिसे निगलना अति है अलभ्य
वैसे विकार अरि से, बचना न होता ।
मौनीन्द्र मार्ग चलना असिधार में है
तापादि रूप तप से तपना न होता ।।३८।।

अही वेगंत-दिट्ठीए,
चरित्ते पुत्त ! दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव,
चावेयव्वा सुदुक्करं।।३९।।

सर्पादि रूप चलना शिव मार्गता में
अत्यन्त है कठिन-सा अवधानता से ।
लौहा चना सदृश है परिचर्बणा में
वैसे दुरूह पथ है दृढ़ संयमी का ।।३९।।

जहा अग्गि-सिहा दित्ता,
पाउं होइ सुदुक्करं ।
तहा दुक्करं करेउं जे,
तारुण्णे समणत्तणं।।४०।।

ज्वालाग्नि पान करना सुख में नहीं है
कान्तार मार्ग गति भी वश की न बात ।
जैसे समुद्र तरना भुज से न होता
वैसे न संयम युवा परिपालता है ।।४०।।

जहा दुक्खं भरेउं जे,
होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे,
कीबेणं समणत्तणं।।४१।।
जहा तुलाए तोलेउं,
दुक्करो मंदरो गिरी ।
तहा णिहुयं णीसंकं,
दुक्करं समणत्तणं।।४२।।

जैसे समीर भरना दृति में न होता
कोई सुमेरु गिरि को नहि तोलता है ।
कातर्य भाव परिपूर्ण कभी मनुष्य
दुःसाध्य साधुपन संयम पालना है ।।४१-४२।।

जहा भूयाहिं तरिउं,
दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुव-सन्तेणं,
दुक्करं दमसागरो।।४३।।

काठिन्य बाहुबल से तरना समुद्र
शान्त प्रशान्त बनना सकषायता से ।
जेता विशेष चल इन्द्रिय से न होता
प्राणी न आत्म निज वैभव पा सकेगा ।।४३।।

भुंज माणुस्सए भोए,
पंच-लक्खणए तुमं ।
भुत्तभोगी तओ जाया,
पच्छा धम्मं चरिस्ससि।।४४।।

कन्दर्प सर्प सम हैं यह काम सारे
होना विशिष्ट अधिकार बड़ा कठोर ।
भोगादि कर्म करके फिर संयमी हो
ऐसा प्रकर्ष करना मन को सुहाता ।।४४।।

सो बिन्तऽम्मा-पियरो,
एवमेयं जहाफुडं ।
इह-लोए णिप्पिवासस्स,
णत्थि किंचि वि दुक्करं।।४५।।

याथार्थ्य पूर्ण कहना पितृवर्य मानूँ
किन्तु प्रधान इसमें कुछ भी नहीं हैं ।
कामादि मुक्त मन में यम को प्रकर्ष-
भाता, उसे सफलता मिलती सदैव ।।४५।।

सारीर-माणसा चेव,
वेयणाओ अणन्तसो ।
मए सोढाओ भीमाओ,
असइं दुक्ख-भयाणि य।।४६।।

माता पिता भ्रमण ही करते रहे हैं
संवेदना न कम भी हमको मिली हैं ।
जन्मादि रूप हमने दुख भी सहे हैं
मृत्पंक में विलखते अवशात्म होके ।।४६-४७।।

जरा मरण-कंतारे,
चाउरंते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि,
जम्माइं मरणाणि य।।४७।।

जहा इहं अगणी उण्हो,
एत्तोऽणन्त-गुणो तहिं ।
णरएसु वेयणा उण्हा,
अस्साया वेइया मए।।४८।।
जहा इमं इहं सीयं,
एत्तोऽणन्त गुणो तहिं ।
णरएसु वेयणा सीया,
अस्साया वेइया मए।।४९।।

लोकाग्नि से नरक वह्नि विशिष्ट तीव्र
शीतोष्णता सहन भी न विशेष होता ।
कष्ट प्रकृष्ट सहना मुझको पड़ा है
अन्धस्तमः पतन की फिर कामना क्या ? ।।४८-४९।।

कंदन्तो कन्दु-कुम्भीसु,
उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलंतम्मि,
पक्कपुव्वो अणन्तसो।।५०।।
महादवग्गि-संकासे,
मरुम्मि वइर-वालुए ।
कलम्ब-वालुयाए य,
दड्ढ-पुव्वो अणंतसो।।५१।।

ज्वालादि में शिर पड़ा नित ही रहा है
आक्रन्दना-चय विशेष मिला यहाँ है ।
वज्रादि रेत मरु-सी जलती रही है
दुःखादि ताप परिमर्दित हो सहे हैं ।।५०-५१।।

रसंतो कन्दु कुम्भीसु,
उड्ढं बद्धो अबंधवो ।
करवत्त-कर-कयाईहिं,
छिण्ण-पुव्वो अणंतसो।।५२।।

कष्टादि से मृत वहाँ भयभीत से थे
कोई न बान्धव मिला सुतरां सहायी ।
झूला कभी विटप पै हम झूलते थे
कुन्तादि से अमित भेदित भी हुए हैं ।।५२।।

अइ-तिक्ख-कंटगाइण्णे, [illegible]
तुंगे सिंबलि-पायवे । [illegible]
खेवियं पासबद्धेणं, [illegible]
कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं॥५३॥ [illegible] ॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा,
आरसंतो सुभेरवं ।
पीलिओऽम्मि सकम्मेहिं,
पावकम्मो अणंतसो॥५४॥

[illegible] से नित नये दुख भी मिले हैं
इक्षादि की तरह तो रस भी निकाला ।
श्वानादि सूकर हमें नित काटते थे
[illegible] मान. फिर भी न. विशेष [illegible] ॥५४॥

कूवंतो कोल-सुणएहिं,
सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिण्णो,
विप्फुरंतो अणेगसो॥५५॥

आक्रन्दनीय भयभीत रहा वहाँ था
श्यामादि देव कृत वेदन भी सहा था ।
जीर्णादि वस्त्र सम फाड़ दिया गया था
काष्ठादि तुल्य पल में चुन चीर डाला ॥५५॥

असीहिं-अयसि-वण्णेहिं,
भल्लेहिं पट्टिसेहि य ।
छिण्णो भिण्णो विभिण्णो य,
उववण्णो पाव-कम्मुणा॥५६॥

पापादि कृत्य करके गति नारकी में-
उद्भूत भी विवश हो तुम से हुए हैं ।
आघात शस्त्र चय का बहुधा मिला है
सारा शरीर परिखण्डित भी हुआ है ॥५६॥

अवसो लोह-रहे जुत्तो,
जलंते समिलाजुए ।
चोइओ तोत्त-जुत्तेहिं,
रोज्झो वा जह पाडिओ॥५७॥

दग्धादि कष्ट परिपूर्ण जले हुए थे
लौहादि यान जिसमें हम तो जुते थे ।
आधारहीन हमको कष से प्रताड़ा
रोझादि की तरह तो हम को गिराया ॥५७॥

हुआसणे जलंतम्मि,
चियासु महिसो-विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो,
पाव कम्मेहिं पाविओ॥५८॥

पापीयसी कृति विशेष जले हुए थे
देवादि ने न हम पै करुणा दिखाई ।
भैंसे विशेष दुख से हम रूप धारे
दग्ध प्रदग्ध बहुशः उनसे हुए थे ॥५८॥

बला-संडास-तुण्डेहिं,
लोह-तुण्डेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवंतोऽहं,
ढंकगिद्धेहिं-अणंतसो।।५६।।

आक्रन्दना वलित भी पकड़े गए थे
संडास तुल्य मुख क्रूर पिहंग दारा ।
ढंकादि गृद्ध भय से हम तो घिरे थे
तो भी न मान, अपना हमको मिला है ।।५६।।

तण्हा किलन्तो धावंतो,
पत्तो वेयरणिं णइं ।
जलं पाहिंत्ति चिंतन्तो,
खुर-धाराहिं विवाइओ।।६०।।

प्यासे विशेष मन में बहुवेदना से-
सुस्वादुवारि परिलोभ लिये भ्रमा था ।
ना तो पिपास परिशान्त हुई परन्तु-
नर्कापगा मधि हुआ विनिपात, हाय ! ।।६०।।

उण्हाभि-तत्तो संपत्तो,
असिपत्तं महावणं ।
असि-पत्तेहिं पडन्तेहिं,
छिण्ण-पुव्वो अणेगसो।।६१।।

उष्णादि तप्त पहुँचा असि पत्र में जो-
छाया नहीं, मिल सकी, जिसकी समीहा ।
किन्तु प्रताड़ित हुआ, गिरता रहा मैं
संछिन्न खण्डित विशेष हुआ जहाँ पै ।।६१।।

मुग्गरेहिं भुसुण्ढीहिं,
सूलेहिं मुसलेहि य ।
गया-संभग्ग-गत्तेहिं,
पत्तं दुक्खं अणन्तसो।।६२।।

कुन्त त्रिशूल मुशलास्त्र विघात हो तो-
प्राणान्त-कारि सहना, परिवेदना का ।
जो थी दशा न उसको कह पा रहा हूँ
मेरा विनाश बहु बार हुआ अनन्त ।।६२।।

खुरेहिं तिक्ख-धारेहिं,
छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिण्णो,
उक्कित्तो य अणेगसो।।६३।।

देवादि ने कतरणी मुझ पै चलाई
काटा गया, परिसमाप्त हुआ यहाँ पै ।
संछिन्न, भिन्न अपना यह गात्र सारा-
होता रहा, विषमता परिभूत भी था ।।६३।।

पासेहिं कूड-जालेहिं,
मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्ध-रुद्धो वा,
बहुसो चेव विवाइओ।।६४।।

पाशादि बद्ध मृग से हम हो गये थे
कूटादियुक्त विधि से वस जाल बांधे ।
यन्त्रादि शस्त्र गह से पकड़े गये थे
खींचे गये वडिश से मनु मीन होके ।।६४-६५।।

गए थे

यारा।

गिरे थे

मिला है ॥६॥

से-

था।

रस्तु-

हाय ! ॥६॥

जो-

मैं

पै ॥६॥

तुहं पिया सुरा सीहू,
मेरओ य महूणि य ।
पाइओमि जलंतीओ,
वसाओ रुहिराणि य।।७१।।

सीधू सुरा रु मदिरा मधुपान मिष्ठ
प्रीति प्रभूत इनसे, हठ से दिखाके-
इच्छा विरुद्ध हमको जलती हुई-सी
चर्बी, विशेष बल से, छल से पिलाया ।।७

णिच्चं भीएण तत्थेण,
दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुह संबद्धा,
वेयणा वेदित्ता मए।।७२।।

नित्य प्रधान परिवेदन भी सहा है
संत्रस्त भीत परिदुःख हमें मिले हैं ।
संवेदना न हम तो अब भूल पाए
जैसी मिली, न पर को मिल भी सकेगी ।।७

तिव्व-चंड-प्पगाढाओ,
घोराओ अइ-दुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ,
णरएसु दुह वेइया मए।।७३।।

तीव्र प्रचण्ड अति दुष्कर वेदना भी
भीष्म प्रकर्ष दुख को हमने सहे हैं ।
संभ्रान्त युक्त यह मानस भी बना था
तो भी न दुःख विष से हम दूर से थे ।।७

जारिसा माणुसे लोए,
ताया ! दीसंति वेयणा ।
एत्तो अणंत-गुणिया,
णरएसु दुक्ख-वेयणा।।७४।।

हे लाल ! नारक जहाँ पर वेदना से-
कम्प प्रकम्प अति दुःख गहे सहे हैं ।
मानुष्य लोक भव की परिपीडना भी-
कोई विशिष्ट कुछ भी, हम को मिली क्या?।।७

सव्व-भवेसु अस्साया,
वेयणा वेइत्ता मए ।
णिमेसंतर-मित्तंऽवि,
जं साया णत्थि वेयणा।।७५।।

हे पुत्र ! सत्य तव वेदन की कहानी-
इच्छानुसार धरना यति धर्म चाहे ।।७५

तं बिंतम्मा-पियरो,
छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
णवरं पुण सामण्णे,
दुक्खं णिप्पडि-कम्मया।।७६।।

श्रामण्य धर्म अति कष्ट भरे दुराप-
रोगादि की प्रतिकृती करना कठोर ।।७६।

सो बिन्तम्मा-पियरो,
एवमेयं जहा-फुडं ।
पडिकम्मं को कुणइ,
अरण्णे मिय-पक्खिणं।।७७।।

हे तात ! लक्ष्य परिपूरित बात ये है
मानी विशेष हमने, न रही कुशंका ।
आश्चर्य तो यह हमें बस हो रहा है
कोई निदान करता, मृग पक्षियों का ? ।।७७।।

एगब्भूए अरण्णे वा,
जहा उ चरइ मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि,
संजमेण तवेण य।।७८।।

जैसे पृथक् विपिन में मृग है अकेला-
कोई न साथ उसको मिलता वहाँ है ।
वैसे सुमार्ग यति के गति रूप देके
आत्मीय शोध करने निकलूँ, समीहा ।।७८।।

जहा मिगस्स आयंको,
महारण्णम्मि जायइ ।
अच्छंतं रुक्ख-मूलम्मि,
को णं ताहे तिगिच्छिइ?।।७९।।

आतंक रोग मृग को जब हो रहा हो
कोई न सार करता, उसका मनुष्य ।
वृक्षादि पास निषदा करके विशेष
सीधा स्वयं, विहरता निज सौम्यता से ।।७९।।

को वा से ओसहं देइ,
को वा से पुच्छइ सुहं ?
को से भत्तं य पाणं वा,
आहरित्तु पणामए।।८०।।

भैषज्य कौन करता उनका विशेष
स्वास्थ्यादि लक्ष्य किसके मन से सुहाता ।
भक्तादि पान उपहार करे, न कोई
होके स्वतंत्र रहते, वन में अकेले ।।८०।।

जया य से सुही होइ,
तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए,
वल्लराणि सराणि य।।८१।।

स्वास्थ्यादि लाभ करके प्रकृतिस्थ होते
आहार हेतु तब गोचर भूमि जाते ।
खाद्यादि पान करते हृदयानुकूल
खोजी बने, व्रतति-गुल्म-वितान बीच ।।८१।।

खाइत्ता पाणियं पाउं,
वल्लरेहिं सरेहि य ।
मिगचारियं चरित्ताणं,
गच्छइ मिगचारियं।।८२।।

वल्ली निकुंज सलिलाशय में स्वतंत्र
पानादि भुक्ति करते अपनी विधा से ।
स्वाभाविकी प्रवृति से, फिर घूमते हैं
जाते स्ववास फिर वे, करने विहार ।।८२।।

तुहं पिया सुरा सीहू,
मेरओ य महूणि य ।
पाइओमि जलंतीओ,
वसाओ रुहिराणि य।।७१।।

सीधू सुरा रु मदिरा मधुपान मिष्ठ
प्रीति प्रभूत इनसे, हठ से दिखाके-
इच्छा विरुद्ध हमको जलती हुई-सी
चर्बी, विशेष बल से, छल से पिलाया ।।७१।।

णिच्चं भीएण तत्थेण,
दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुह संबद्धा,
वेयणा वेदित्ता मए।।७२।।

नित्य प्रधान परिवेदन भी सहा है
संत्रस्त भीत परिदुःख हमें मिले हैं ।
संवेदना न हम तो अब भूल पाए
जैसी मिली, न पर को मिल भी सकेगी ।।७२।।

तिव्व-चंड-प्पगाढाओ,
घोराओ अइ-दुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ,
णरएसु दुह वेइया मए।।७३।।

तीव्र प्रचण्ड अति दुष्कर वेदना भी
भीष्म प्रकर्ष दुख को हमने सहे हैं ।
संभ्रान्त युक्त यह मानस भी बना था
तो भी न दुःख विष से हम दूर से थे ।।७३।।

जारिसा माणुसे लोए,
ताया ! दीसंति वेयणा ।
एत्तो अणंत-गुणिया,
णरएसु दुक्ख-वेयणा।।७४।।

हे लाल ! नारक जहाँ पर वेदना से-
कम्प प्रकम्प अति दुःख गहे सहे हैं ।
मानुष्य लोक भव की परिपीडना भी-
कोई विशिष्ट कुछ भी, हम को मिली क्या?।।७४।।

सव्व-भवेसु अस्साया,
वेयणा वेइत्ता मए ।
णिमेसंतर-मित्तं ऽवि,
जं साया णत्थि वेयणा।।७५।।

हे पुत्र ! सत्य तव वेदन की कहानी-
इच्छानुसार धरना यति धर्म चाहे ।।७५।।

तं बिंतम्मा-पियरो,
छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
णवरं पुण सामण्णे,
दुक्खं णिप्पडि-कम्मया।।७६।।

श्रामण्य धर्म अति कष्ट भरे दुराप-
रोगादि की प्रतिकृती करना कठोर ।।७६।।

सो बिन्तम्मा-पियरो,
एवमेयं जहा-फुडं ।
पडिकम्मं को कुणइ,
अरण्णे मिय-पक्खिणं।।७७।।

हे तात ! लक्ष्य परिपूरित बात ये है
मानी विशेष हमने, न रही कुशंका ।
आश्चर्य तो यह हमें बस हो रहा है
कोई निदान करता, मृग पक्षियों का ? ।।७७।।

एगब्भूए अरण्णे वा,
जहा उ चरइ मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि,
संजमेण तवेण य।।७८।।

जैसे पृथक् विपिन में मृग है अकेला-
कोई न साथ उसको मिलता वहाँ है ।
वैसे सुमार्ग यति के गति रूप देके
आत्मीय शोध करने निकलूँ, समीहा ।।७८।।

जहा मिगस्स आयंको,
महारण्णम्मि जायइ ।
अच्छंतं रुक्ख-मूलम्मि,
को णं ताहे तिगिच्छिइ?।।७६।।

आतंक रोग मृग को जब हो रहा हो
कोई न सार करता, उसका मनुष्य ।
वृक्षादि पास निषदा करके विशेष
सीधा स्वयं, विहरता निज सौम्यता से ।।७६।।

को वा से ओसहं देइ,
को वा से पुच्छइ सुहं ?
को से भत्तं य पाणं वा,
आहरित्तु पणामए।।८०।।

भैषज्य कौन करता उनका विशेष
स्वास्थ्यादि लक्ष्य किसके मन से सुहाता ।
भक्तादि पान उपहार करे, न कोई
होके स्वतंत्र रहते, वन में अकेले ।।८०।।

जया य से सुही होइ,
तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए,
वल्लराणि सराणि य।।८१।।

स्वास्थ्यादि लाभ करके प्रकृतिस्थ होते
आहार हेतु तब गोचर भूमि जाते ।
खाद्यादि पान करते हृदयानुकूल
खोजी बने, व्रतति-गुल्म-वितान बीच ।।८१।।

खाइत्ता पाणियं पाउं,
वल्लरेहिं सरेहि य ।
मिगचारियं चरित्ताणं,
गच्छइ मिगचारियं।।८२।।

वल्ली निकुंज सलिलाशय में स्वतंत्र
पानादि भुक्ति करते अपनी विधा से ।
स्वाभाविकी प्रवृति से, फिर घूमते हैं
जाते स्ववास फिर वे, करने विहार ।।८२।।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू,
एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं,
उड्ढं पक्कमइ दिसं।।८३।।
जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेग-वासे धुव-गोयरे य ।
एवं मुणी-गोयरियं पविट्ठे,
णो हीलए णोवि य खिंसएज्जा।।८४।।

रूपादि मुक्त मुनि भी अपनी क्रिया में
उद्युक्त भिक्षु करते, श्रम साधना हैं ।
पूरा मृगेन्द्र सम वे, शम संयमी हो
मोक्ष प्रसाधक बने, जनि लाभ पाते ।।८३/८४।।

मिगचारियं चरिस्सामि,
एवं पुत्ता जहासुहं ।
अम्मा-पिऊहिं ऽणुण्णाओ,
जहाइ उवहिं तओ।।८५।।

ईहा यही मृग समान रमूँ यहाँ, मैं
स्वीकार आग्रह किया जननी पिता ने ।
जैसे सुशान्ति मन में तुमने विचारी-
आनन्द रूप विचरो, यह भावना है ।।८५।।

मिगचारियं चरिस्सामि,
सव्व-दुक्ख विमोक्खणिं ।
तुब्भेहिं अब्भ!ऽणुण्णाओ,
गच्छ पुत्त! जहा-सुहं।।८६।।

आदेश लाभ कर उत्तम कामना से-
दुःखादि हान करने मृग के समान ।
जैसे बने चरित पूत उसे बनाओ
आशा विशेष, हमको तुम से यही है ।।८६।।

एवं सो अम्मापियरो,
अणुमाणित्ताणं बहुविहं ।
ममत्तं छिंदइ ताहे,
महाणागोव्व कंचुयं।।८७।।

आत्मीय सर्वजन को अनुकूलता में-
लेके, ममत्व कुल का परिहार कारी ।
जैसे बिना श्रम सही अपनत्व पाने
नागाधिराज निज केंचुल छोड़ता है ।।८७।।

इड्ढिं वित्तं च मित्ते य,
पुत्तदारं य णायओ ।
रेणुयं व पडे-लग्गं,
णिद्धुणित्ताण णिग्गओ।।८८।।

ऋद्ध्यादि वैभव महा तनया कलत्र
जातीय जीव जनता समता-विशिष्ट
सारे ममत्व वसनाश्रित रेणु तुल्य
संयाम हेतु गृह जाति समग्र छोड़ा ।।८८।।

एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य । भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं।।६५।।	ज्ञानादि मार्ग पथ का अनुगाम होके सम्यक्त्व बोध निज में सविशेष पाके। भावादि शुद्ध अपना मन है सजा के- आत्म स्वभाव परिपूर्ण किया व्रती हो ।।६५।।
बहुयाणि उ वासाणि, सामण्ण-मणुपालिया । मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं।।६६।।	श्रामण्य धर्म धृति से बहु वर्ष पाला मासादि कल्प, अशनादिक छोड़ डाला। कैवल्य रूप विधि से मन में जगाके सिद्धत्व शान्ति-धन का अधिकार आया ।।६६।।
एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा । विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहा-रिसी।।६७।।	संबुद्ध पंडित विचक्षण आत्मभावी कामादि-मुक्त बनके, परिबोध पाते । त्यागी, महर्षि जन से, विनिवृत्त होते जैसे सुपुत्र मृग बद्ध बना हुआ था ।।६७।।
महाप्पभावस्स महाजसस्स, मियाइ पुत्तस्स णिसम्म भासियं । तवप्पहाणं-चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोग विस्सुयं।।६८।।	दीप्ति प्रधान, सुयशोधरा शान्तिदायी- मुक्ति प्रकर्ष धन में अतिसौम्यकारी । दुःखादि रूप धन की परिवर्जना से निर्वाण-भाजन विशेष बने, तपस्वी ।।६८।।
वियाणिया दुक्ख-विवद्धणं धणं, ममत्त-बंधं च महाभयावहं । सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह णिव्वाण-गुणावहं-महं।।६९।।	मोक्ष-प्रधान तप संभृत बोधकारी चारित्र पूत सुन के मृगपुत्र का ये । संसार मोह परिवर्जन की दिशा में उद्युक्त हो, सतत धर्म धुरा धुरीण ।।६९।।

२० अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' (महानियठिज्जं) है। महानिर्ग्रन्थ की चर्या तथा मौलिक सिद्धान्तो और नियमो से सम्बन्धित वर्णन होने के कारण इसका नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' रखा गया है।
- प्रस्तुत अध्ययन मे श्रेणिक नृप द्वारा मुनि से पूछे जाने पर उनके द्वारा स्वय को 'अनाथ' कहने पर चर्चा का सूत्रपात हुआ है और बाद मे मुनि द्वारा अपनी अनाथता और सनाथता का वर्णन करने पर तथा अन्त मे अनाथता के विविध रूप बताये जाने पर सनाथ–अनाथ का रहस्योद्घाटन हुआ है।
- मुनि की अनुभवपूत वाणी सुन कर राजा अत्यन्त सन्तुष्ट एव प्रभावित हुआ। वह सनाथ–अनाथ का रहस्य समझ गया। उसने स्वीकार किया कि वास्तव मे मै अनाथ हूँ और तब श्रद्धापूर्वक मुनि के चरणो मे वन्दना की, सारा राजपरिवार धर्म मे अनुरक्त हो गया। राजा ने मुनि से अपने अपराध के लिए क्षमा मागी। पुन वन्दना, स्तुति, भक्ति एव प्रदक्षिणा करके मगधेश श्रेणिक लौट गया।
- प्रस्तुत अध्ययन जीवन के एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को अनावृत करता है कि आत्मा स्वय अनाथ या सनाथ हो जाता है। बाह्य ऐश्वर्य, विभूति, धन–सम्पत्ति से, या मुनि का उजला वेष या चिह्न कितने ही धारण कर लेने से, अथवा मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि विद्याओ के प्रयोग से कोई भी व्यक्ति सनाथ नहीं हो जाता। बाह्य वैभवादि सब कुछ पा कर भी मनुष्य आत्मानुशासन से यदि रिक्त है तो अनाथ है।

२०. महानिर्ग्रन्थीय

सिद्धाणं णमो किच्चा,
संजयाणं च भावओ ।
अत्थ-धम्मगइं तच्चं,
अणुसिट्ठिं सुणेह मे।।१।।

सिद्धादि-संयत सदा अभिवन्दना से-
अर्थादि धर्म धरके परितोषकारी-।
शिक्षा प्रधान अनुरूप सुलाभकारी-
आनन्ददायक कथा, कहता निराली ।।१।।

पभूय-रयणो राया,
'सेणिओ' मगहाहिवो ।
विहारज्जत्तं णिज्जाओ,
'मण्डिकुच्छिंसि' चेइए।।२।।

अश्वादि नाग धन का पृथुलाधिकारी
माणिक्य-पूर्ण जिसकी नगरी महा थी ।
राजाधिराज पद का सुख भोगशाली
उद्यान में विहरने, सविशेष आया ।।२।।

णाणा दुम-लयाइण्णं,
णाणा पक्खि-णिसेवियं ।
णाणा कुसुम-संछण्णं,
उज्जाणं णंदणोवमं।।३।।

उद्यान पुष्प फल से शुचि शोभता था
पक्षी विशेष परिकूजित था, निराला ।
पुष्प प्रधानचय से परिवृत्त होके
आनन्द नन्दन समान मनोज्ञ भी था ।।३।।

तत्थ सो पासइ साहुं,
संजयं सुसमाहियं ।
णिसण्णं रूक्ख-मूलम्मि,
सुकुमालं सुहोइयं।।४।।

देखा, प्रबुद्ध नृप ने, वट-वृक्ष नीचे-
ज्ञान-प्रकर्ष-युत एक सुसंयती को ।
जो था सुखोचित विशेष सुनन्दकारी
आत्मीय भाव जिसमें परिपूर्ण से थे ।।४।।

तस्स रूवं तु पासित्ता,
राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंत-परमो आसी,
अउलो रूव विम्हओ।।५।।

रूपादि देख उसका नृप सोचता है
कैसा विशाल सुख सौम्य भरा हुआ है ।
पूरा विचित्र-परिकर्षण युक्त भी है
आश्चर्य मुग्ध मन विस्मय पूर्ण होता ।।५।।

अहो ! वण्णो, अहो ! रूवं,
अहो ! अज्जस्स सोमया ।
अहो ! खंती, अहो ! मुत्ती,
अहो ! भोगे असंगया।।६।।

आश्चर्य ! आकृति विभा नवरंग भी है
आश्चर्य ! पूर्ण भव भव्य सुरूप भी है ।
आश्चर्य ! आर्य शुभ शान्ति विबोधकारी
आश्चर्य ! लोभ-परिमुक्त-दशा मनोज्ञा ।।६।।

तस्स पाए उ वंदित्ता,
काऊण य पयाहिणं ।
णाइदूर-मणासण्णे,
पंजली पडिपुच्छइ।।७।।

भावादिपूर्ण परिवन्दन से गुणी को
आदक्षिणा कर विशेष पुनीत चेता ।
राजा न दूर अतिपास खड़ा विनीत-
पूछा, प्रसन्न मुनि से, करबद्ध होके ।।७।।

तरुणोसि अज्जो ! पव्वइओ,
भोग-कालम्मि संजया ।
उवट्ठिओऽसि सामण्णे,
एयमट्ठं सुणेमित्ता।।८।।

हे आर्य ! भाव मन में यह आ रहे हैं
तू हो युवा, फिर कहो यह योग कैसा ?
कामादि भोग तज के, मुनि पंथ पै हो-
रागी न हो, तुम बने सविराग युक्त ।।८।।

अणाहोमि महाराय !
णाहो मज्झ ण विज्जइ ।
अणुकंपगं सुहिं वावि,
कंचि णाभिसमे-महं।।६।।

स्वामित्व हीन मुझ पै, न सनाथता है
संरक्षक प्रवल भी, न मिला मुझे है ।
सौहार्द भाव परियुक्त मिले न, मित्र-
ऐसी दशा विषमयी दयनीय मेरी ।।६।।

तओ सो पहसिओ राया,
सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमंतस्स,
कहं णाहो ण विज्जइ।।१०।।

हास्य प्रवृत्ति युत भूपति, हो विशेष
बोला- महामति मुने ! कह भी रहे क्या ?
सौभाग्यशील लगते बहुऋद्धिता से
कैसे अनाथ तुमको ध्रुव मान लेवें ? ।।१०।।

होमि णाहो भयंताणं,
भोगे भुंजाहि संजया ।
मित्त-णाइ-परिवुडो,
माणुस्सं खु सुदुल्लहं।।११।।

मित्रादि वर्ग परिवार जनों समेत
उत्कृष्ट भोग परिभोग करो, विशिष्ट ।
मैं नाथ रूप बनता, मुनिदेव ! मानो
मानुष्य जन्म परिलब्धि दुराप ही है ।।११।।

अप्पणाऽवि अणाहोऽसि,
सेणिया मगहाहिवा ।
अप्पणा अणाहो संतो,
कहं णाहो भविस्ससि।।१२।।

पृथ्वीश ! हो, तुम अनाथ, सनाथता क्या ?
मेरा सनाथ बनना, शश शृंग-सा है ।
वाणी अनाथ सुनके, अपने लिए भी-
साश्चर्य भूपति बना कहने लगा यों-।।१२।।

एवं वुत्तो णरिंदो सो,
सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुय-पुव्वं,
साहुणा विम्हयण्णिओ।।१३।।

आश्चर्य युक्त नृप तो, वह पूर्व से था-
कैसे अनाथ कटु शब्द कहा गया है ।
मेरे लिये यह नियुक्त अयुक्त ही है
विश्वासयोग्य इसको, किस रूप मानें ? ।।१३।।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे,
पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे,
आणा इस्सरियं च मे।।१४।।

मेरे समीप गज अश्व विशेष भी हैं
अन्तःपुरी सुनगरी अधिकार में है ।
मानुष्य जन्म सुख से परिभोगता हूँ
कैसे अनाथ यह शब्द मुझे कहा है ? ।।१४।।

एरिसे सम्पयग्गम्मि,
सव्व-काम समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ,
मा हु भंते ! मुसं वए।।१५।।

पृथ्वी-प्रधान सुख के परिसाधनों से-
कामादि सौख्य सुख से, परिभोगता हूँ ।
स्वामित्व युक्त परिशासन को चलाता-
आर्य प्रधान ! किस रूप अनाथ मैं हूँ ? ।।१५।।

ण तुमं जाणे अणाहस्स,
अत्थं पोत्थं च पत्थिवा ।
जहा अणाहो भवइ,
सणाहो वा णराहिवा!।।१६।।

पृथ्वी प्रधान ! तुम नाथ अनाथता की-
व्याख्या प्रकृष्टि जिसकी परिवोधता न-।
होता मनुष्य किमि नाथ अनाथ भी तो-
सच्चा स्वरूप तुमको कहता विशेष ।।१६।।

सुणेह मे महाराय !
अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवइ,
जहा मेयं पवत्तियं।।१७।।

आत्मानुकूल मन में यह बात मेरी-
याथार्थ्य भाव परिलक्षित-सी विशेष ।
दत्तावधान सुनना अब जो कहूँगा-
होगा, अनाथपन का परिबोध सारा ।।१७।।

कोसम्बी णाम णयरी,
पुराण-पुर-भेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ,
पभूय-धण संचओ।।१८।।

प्राचीन है नगर भी अति सौख्यकारी
कौशाम्बि नाम जिसका सवितानकारी ।
तत्रस्थ थे मम पिता करुणा समुद्र
प्राचुर्य वैभव निधान, भरा हुआ था ।।१८।।

पढमे वए महाराय !
अउला मे अच्छि-वेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो,
सव्व गत्तेसु पत्थिवा।।१९।।

पृथ्वीश ! ये प्रथम यौवन में अतुल्य-
आंखें विशेष परिवेदन पा रही थीं ।
सारा शरीर यह तो, दुःख पा रहा था
पीडाभिभूत मम जीवन, हो चला था ।।१९।।

सत्थं जहा परम तिक्खं,
सरीर-विवरन्तरे ।
पविसेज्ज अरी कुद्धो,
एवं मे अच्छि-वेयणा।।२०।।

कुद्धारि रोग अति शूर समर्थकारी-
अत्यन्त तीक्ष्ण परिशस्त्र चला चलाके-।
घोंपा, हमें सकल जीवन आर्तियुक्त-
होता रहा, मन सवेदन यों कठोर ।।२०।।

तियं मे अन्त-रिच्छं च,
उत्तमंगं च पीडई ।
इंदासणि-समा घोरा,
वेयणा परम दारुणा।।२१।।

वज्र प्रहार सम पीडित था, समग्र
प्राणान्त दुःख उससे तव हो रहा था ।
मध्यस्थ भाग शिर मर्म रुजा परीत
दारुण्यपूर्ण दयनीय दशा वनी थी ।।२१।।

उवट्ठिया मे आयरिया,
विज्जा-मंत तिगिच्छया ।
अबीया सत्थ-कुसला,
मंत-मूल विसारया।।२२।।

मन्त्रादि विद्य गद कारण शोधकारी
भैषज्य दक्ष कुशली चरण क्रिया में-।
पीयूष पाणि विधि से करते दवा थे
तो भी न लाभ मुझको; कुछ भी मिला था ।।२२।।

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति,
चाउप्पायं जहाहियं ।
ण य दुक्खा विमोयंति,
एसा मज्झ अणाहया।।२३।।

रोगादिमुक्त करने, मन से चिकित्सा-
वैद्य प्रशस्त-अपना सहयोग देते ।
सेवादि कार्य करते, परिचारिकादि-
पाये, न पार मम रोग निवारने में ।।२३।।

पिया मे सव्व-सारं वि,
दिज्जाहि मम कारणा ।
ण य दुक्खा विमोएइ,
एसा मज्झ अणाहया।।२४।।

मेरे पिता तनुज हेतु विशेषता से-
पथ्यादि कार्य मन से करवा रहे थे ।
तोषार्थ वित्त बहुरत्न दिया गया था
हो ना सका, निरुज नैज अनाथता से ।।२४।।

मायाऽवि मे महाराय !
पुत्त सोग दुहट्टिया ।
ण य दुक्खा विमोएइ,
एसा मज्झ अणाहया।।२५।।

मेरी व्यथा मथित थी जननी अदभ्र
उत्पीडना न, वह भी सह पा रही थी ।
किन्तु प्रकर्ष युत पीडन की व्यथा से
मुक्ति प्रदान वह भी नहि दे सकी थी ।।२५।।

भायरो मे महाराय !
सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति,
एसा मज्झ अणाहया।।२६।।
भइणीओ मे महाराय !
सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति,
एसा मज्झ अणाहया।।२७।।

मेरे सहोदर सभी अनुज प्रधान ।
आत्मीय नेह परिपूरित भी स्वसायें ।।२६।
आपाद मस्तक सदा नितरां निमग्न ।
दुःखार्ति पार मुझको करना सके थे ।।२७।।

भारिया मे महाराय !
अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं णयणेहिं,
उरं मे परिसिंचइ।।२८।।

मेरी अनुव्रत शुभ प्रकृति-प्रधान
भार्याश्रुपूर्ण नयना व्यथितान्तरात्मा ।
स्वेद प्रखेद परिषिंचित गात्रयष्टि
रोती रही, सतत संभृत वेदना से ।।२८।।

अण्णं पाणं च ण्हाणं च,
गंध-मल्ल-विलेवणं ।
मए णाय-मणायं वा,
सा बाला णेव भुंजइ।।२६।।

बाला विशेष करती मम पास वास ।
अन्नादि पान परिलेपन हीन होके ।।२६।।

खणंऽवि मे महाराय !
पासाओ वि ण फिट्टइ ।
ण य दुक्खा विमोएइ,
एसा मज्झ अणाहया।।३०।।

किंचित् न काल मुझ से वह दूर होती ।
तो भी, न दुःख परिमुक्त अनाथता है ।।३०।।

तओऽहं एव-माहंसु,
दुक्खमाहु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे,
संसारम्मि अणंतए।।३१।।

अध्यात्म भाव मन में तब तीव्र आया
प्राणी प्रपीडित सदा परिवेदना से ।
संसार सागर अपार महोर्मिवाला-
मोहाभिषक्त जिसमें जनमज्जता है ।।३१।।

सइं च जइ मुंचेज्जा,
वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो णिरारम्भो,
पव्वइए अणगारियं।।३२।।

होऊँ, विमुक्त यदि जीवन वेदना से-
तो शान्त दान्त बन संसृति से विरागी ।
दीक्षा गृहीत करके अनगार वृत्ति-
शैव स्वरूप परिबोध विशेष पाऊँ ।।३२।।

एवं च चिंतइत्ताणं,
पसुत्तोमि णराहिवा ।
परीय-त्तंतीए राईए,
वेयणा मे खयं गया।।३३।।

राजन् ! विचार करके अतिगाढ़ निद्रा
सोया, सहर्ष मुझको फिर नींद आई ।
रात्री समग्र परिवर्तित जो हुई तो-
रोगादि शत्रु परिमुक्ति, मिली प्रभूत ।।३३।।

तओ कल्ले पभायम्मि,
आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो दंतो णिरारम्भो,
पव्वइओ अणगारियं।।३४।।

मित्रादि वन्धु जन से फिर पूछते ही-
क्षान्त प्रदान्त परिभावित हो सहर्ष-
होके समाधियुत भाविन साधु वृत्ति-
दीक्षा गृहीत करली, शुभ भावना से ।।३४।।

तोऽहं णाहो जाओ,
अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं,
तसाण थावराणं य।।३५।।
अप्पा णई वेयरणी,
अप्पा मे कूड-सामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू,
अप्पा मे णन्दणं वणं।।३६।।

स्वात्मातिरिक्त सब जीव विशेष का भी।
है नाथ नन्दन बना, त्रस-थावरों का ।।३५।।
आत्मा विशेष मम वैतरणी नदी है।
कूटस्थ शाल्मलि मनोरथ कामधेनु ।।३६।।

अप्पा कत्ता विकत्ता य,
दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठिय, सुपट्ठिओ।।३७।।

दुष्कृत्य में पतित संतत आत्म ही तो
बैरी तथा सुगतिवान् शुभ मित्र भी है।
कर्त्ता वही सकल कर्म कलाप का है
भोक्ता तथा सुख दुखादि विधान का भी ।।३७।।

इमा हु अण्णावि अणाहया णिवा!,
तमेग-चित्तो णिहुओ सुणेहि मे ।
णियण्ठधम्मं लहियाण वि जहा,
सीयंति एगे बहु कायरा णरा।।३८।।

राजन् ! अनाथपन की घटना विशेष
है एक और जिसको कहता सुनो तू !
निर्ग्रन्थ धर्म परिपालन से पृथक् हो
खिन्न प्रखिन्न बनके करते निवास ।।३८।।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
सम्मं च णो फासयई पमाया ।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
ण मूलओ छिण्णइ बंधणं से।।३९।।

सम्यक् व्रतादि परिपालन में अशक्ति
आसक्ति भाव रस में, न गृहीत आत्मा।
संमूलतः सकल राग विबन्धनों का-
उच्छेदकार वह साधक हो भला क्या ? ।।३९।।

आउत्तया जस्स य णत्थि कावि,
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाण-णिक्खेव-दुगुंछणाए,
ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं।।४०।।

ईर्यादि कर्म करते घवरा रहे हैं
आदान भावमन में न समा रहे हैं।
उच्चार पस्रवण लक्ष्य नसिद्ध होते
वीर प्रवीर पथ से गिरते रहे हैं ।।४०।।

चिरंऽपि से मुण्डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तव-णियमेहिं भट्ठे ।
चिरंऽपि अप्पाण किलेसइत्ता,
ण पारए होइ हु संपराए।।४१।।

प्राणातिपात विरती व्रत मे अशक्त
पूरे तपो-नियम से परिशून्य जो है ।
मुण्डी बने सतत साधन से विमुक्त
संसार पार करते नहि नामधारी ।।४१।।

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे,
अयन्तिए कूड-कहावणे वा ।
राढामणी वेरुलिय-प्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु।।४२।।

रिक्त प्रमुष्टि सम जो रुच सार हीन
प्रामाण्य हीन परिमुदित रूप्यशाली ।
वैडूर्य तुल्य चमके जिमि कांच रत्न
है वो परीक्षक-समीक्षण मूल्यहीन ।।४२।।

कुसील-लिंगं इह धारइत्ता,
इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता ।
असंजए संजय-लप्पमाणे,
विणिग्घाय मागच्छइ से चिरं पि।।४३।।

जो है कुशील परिवेष्टित तत्त्वहीन-
साधुत्व वेश धरके बनते कुशील-।
जीते, ऋषिध्वज पृथक् मुनि रूप धारी
वैषम्य कर्म कर वे गिरते कुगर्त ।।४३।।

विसं तु पीयं जह कालकूडं,
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसोऽवि धम्मो विसओव-वण्णो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो।।४४।।

पीत प्रगाढ़ जिमि जर्जर काल कूट-
वैषम्य रूप कर कल्पित शास्त्र जाल-।
बैताल ताल अनियन्त्रित हो विशेष-
वैसे विकार युत धर्म अनर्थकारी ।।४४।।

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणो,
णिमित्त-कोऊहल संपगाढे ।
कुहेड-विज्जासव-दार जीवी,
ण गच्छइ सरणं तम्मि काले।।४५।।

जो लक्षणादि विधि का करता प्रयोग
स्वप्न-प्रबोध फल को नित है बताता ।
कौतुक्य कर्म करने वन आत्मजीवी-
पाता, मनुष्य फल ही कृत का अनाथ ।।४५।।

तमं-तमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परिया-मुवेइ ।
संधावइ णरग-तिरिक्ख जोणिं,
मोणं विराहित्तु असाहुरूवे।।४६।।

शीलातिरिक्त वह साधु सदा दुखों मे
तीव्र प्रतीव परिवेदन लीन होता ।
साधुत्वहीन बनके विपरीतता में
पाता, [illegible] ।।४६।।

उद्देसियं कीयगडं णियागं,	उद्दिष्ट भोज्यचय की करता प्रयुक्ति
ण मुन्चइ किंचि अणेसणिज्जं ।	क्रीतादि नित्य परिपिण्ड सदा गृहीती ।
अग्गी विवा सव्व-भक्खी भवित्ता,	आहार पान पथ में, न गवेषणा है
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं।।४७।।	ऐसा कुभिक्षु गति नारक की सजाता ।।४७।।
ण तं अरी कंठ-छित्ता करेइ,	स्वात्म क्रिया पतनशील सदा रही है,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।	कण्ठादि छेदक विशेष कुशत्रु-जेता ।
से णाहिइ मच्चु-मुहं तु पत्ते,	संयामहीन नर तो अवसान में है-
पच्छाणुतावेण दया-विहूणो।।४८।।	संताप तप्त उसको फिर जान पाता ।।४८।।
णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स,	सर्वोत्तमार्थ पथ पै विपरीत दृष्टि-
जे उत्तमट्ठं विवियासमेइ ।	श्रामण्य में अभिरुचि प्रति भावना, न ।
इमेवि से णत्थि परेवि लोए,	सिद्ध प्रयोजन नहीं कुछ भी कहीं है
दुहओवि से झिज्झइ तत्थ लोए।।४९।।	चिन्ता उसे उभय लोक विहीनता से ।।४९।।
एमेवऽहाछंद कुसील-रूवे,	स्वच्छन्द वृत्ति, दलिताभ बना कुशील-
मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं ।	भोगाभिभूत जिनमार्ग विराधना से ।
कुररी विवा भोग-रसाणुगिद्धा,	शोकाभिशप्त कुररी इव ताप तप्त-
णिरट्ठसोया परियावमेइ।।५०।।	होता, विशेष परिचिन्तित साधु भी तो ।।५०।।
सोच्चाण मेहावी सुभासियं इमं,	पूर्वोक्त बोध गुण से परिपूर्ण शिक्षा-
अणुसासणं णाण-गुणोव-वेयं ।	शास्त्रागमादिचय की सुनके यथार्थ ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,	निर्ग्रन्थ पंथ पर ही गतिमान होवे
महाणियठाण वए पहेणं।।५१।।	मेधा विशिष्ट परिशोधक साधनार्थी ।।५१।।
चरित्त-मायार-गुणण्णिए तओ,	चारित्र वृत्ति समवेत विवोधकारी-
अणुत्तरं संजम पालियाणं ।	निर्ग्रन्थ युक्त पथ आश्रव से विहीन-।
णिरासवे संख-वियाण कम्मं,	संशुद्ध संयम गृहीत, विरक्त भावी
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं।।५२।।	कर्मादि शत्रुगण से परिमुक्त होता ।।५२।।

एवुग्ग-दंतेऽवि महा तवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे ।
महाणियंठिज्ज-मिणं महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं।।५३।।

उग्र प्रदान्त परिपूत तपो विशिष्ट
भीष्म प्रतिज्ञ यश कीर्ति गुणाश्रयी हो ।
निर्ग्रन्थ बुद्ध विधि को हित कामना से
विस्तार से, विनय से, मुनि ने कहा है ।।५३।।

तुट्ठो य सेणिओ राया,
इण-मुदाहु कयंजली ।
अणाहयं जहाभूयं,
सुट्ठु मे उवदंसियं।।५४।।

सन्तुष्ट हो, मुदित भी करबद्धता से
बोला, नरेश मन की शुभ भावना से ।
पूरे अनाथपन की, परिशुद्धता का-
संबोध आज मुनि से, मुझको मिला है ।।५४।।

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्स जम्मं,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी !
तुब्मे सणाहा य सबंधवा य,
जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं।।५५।।

सत्य प्रशान्त जिन मार्ग पदाधिरूढ
होके मनुष्य भव भी सफली हुआ है ।
सर्वोपलब्धि परिलाभमयी हुई है
सच्चे सनाथ तुम ही, जगबन्धु भी हो ।।५५।।

तंऽसि णाहो अणाहाणं,
सव्व-भूयाण संजया !
खामेमि ते महाभाग !
इच्छामि अणुसासिउं।।५६।।

हे संयते ! तुम अनाथ, नहीं सनाथ
सम्पूर्ण जीव पद के तुम एक नाथ ।
पूर्ण क्षमा अब मुझे अपराध की हो
शिष्यत्व भाव निधि की, करता समीहा ।।५६।।

पुच्छिऊण मए तुब्भं,
झाण-विग्घो य जो कओ ।
णिमंतिया य भोगेहिं,
तं सव्वं मरिसेहि मे।।५७।।

मैंने सगर्व तुमसे सविशेष पूछा-
ध्यानार्थ विघ्न मुनिदेव दिया सदा है ।
भोगादि कार्य करने विनिमन्त्रणा दी
एतत्समस्त कृति हेतु छमापना हो ।।५७।।

एवं थुणित्ताण स रायसीहो,
अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा।।५८।।

होके प्रसन्न मुनि की, उस राजसिंह-
ने भक्ति की स्तुति पुरस्सर भावना से-।
अन्तःपुरी परिजनादि समग्र संग-
धर्मानुरंजित विशिष्ट हुआ, नरेश ।।५८।।

ऊस-सिय-रोम-कूवो,
काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिऊण सिरसा,
अइयाओ णराहिवो।।५६।।

रोमांच पूर्ण नृप भी तब हो गया था
आनन्द उच्छ्वसित हो परिमोदशाली।
आदक्षिणा कर पुनः परिवन्दना भी-
की, और शान्ति-सुख से गृह लौट आया ।।५६।।

इयरोऽवि गुण-समिद्धो,
तिगुत्ति-गुत्तो तिदंड-विरओ य ।
विहग-इव विप्पमुक्को,
विहरइ वसुहं विगय-मोहो।।६०।।

योगीश भाव अनुरंजित साधना से
गुप्त्यादि गुप्त धन का अधिकार पाके।
मोहादि मुक्त मुनि भी अपना विहार-
पक्षी विशेष सम वे, करने लगे थे ।।६०।।
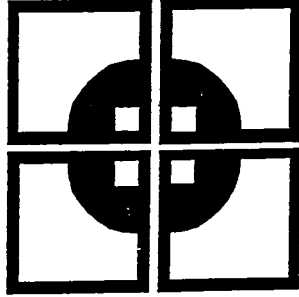
२१ अध्ययन : समुद्रपालीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत इक्कीसवें अध्ययन का नाम समुद्रपालीय (समुद्दपालीयं) है। इसमें समुद्रपाल के जन्म से लेकर मुक्तिपर्यन्त की जीवनघटनाओं से सम्बन्धित वर्णन होने के कारण इसका नाम 'समुद्रपालीय' रखा गया है।
- इस अध्ययन के उत्तरार्द्ध में अनगारधर्म के मौलिक नियमो और साध्वाचार की महत्त्वपूर्ण चर्चा है।
- प्रस्तुत अध्ययन में उस युग के व्यवहार (क्रय–विक्रय), वध्य व्यक्ति को दण्ड देने की प्रथा, वैवाहिक सम्बन्ध एवं मुनिचर्या मे सावधानी आदि तथ्यों का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।

२१. समुद्रपालीय

चंपाए पालिए णाम,
सावए आसी वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ,
सीसे सो उ महप्पणो।।१।।

चम्पापुरी नगर में इक पालि नाम-
था वो वणिक् जिन निदिष्ट पथानुरागी।
विश्वेश नाथ विभु वीर विनीत शिष्य
आत्मानुरूप करता करणीय कृत्य ।।१।।

णिग्गंथे पावयणे,
सावए सेऽवि कोविए ।
पोएण ववहरंते,
पिहुण्डं णगरमागए।।२।।

निर्ग्रंथ धर्म उसके मन में समाया
जीवादि तत्त्व चय का परिपूर्ण वेत्ता ।
पोताधिरूढ सहसार्थ बना प्रवासी
आया, विहुण्ड नगरी व्यवसाय हेतु ।।२।।

पिहुंडे ववहरंतस्स,
वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ,
सदेस-मह पत्थिओ।।३।।

व्यापार कार्य करते उसका विवाह-
कन्या सुसंग परिपूर्ण हुआ सहर्ष ।
व्यापार-लब्ध धन धान्य समेत लौटा
पत्नी द्वितीय, निज गर्भवती स्वदेश ।।३।।

अह पालियस्स घरिणी,
समुद्दम्मि पसवइ ।
अह दारए तहिं जाए,
समुद्दपालित्ति णामए।।४।।

जन्माभिराम सुत का तत नीरधी में
सम्पन्न था, इसलिये वणिजाभिधायी ।
माता पिता व परिवार जनादि ने भी-
रक्खा, सहर्ष अभिधान समुद्रपाल ।।४।।

खेमेण आगए चंपं,
सावए वाणिए घरं ।
संवड्ढई घरे तस्स,
दारए से सुहोइए।।५।।

आया, वणिक् कुशल से निज सद्म में यों
चम्पा विशाल नगरी अपनी सुहाई ।
सर्वोपचार विधि से सुकुमार जात
सानन्द वर्धित हुआ, गृह में विशेष ।।५।।

बावत्तरी-कलाओ य,
सिक्खिए णीइ-कोविए ।
जोव्वणेण य संपण्णे,
सुरूवे पियदंसणे।।६।।

सीखी बहत्तर विभिन्न कला कलाप
सम्पूर्ण नीति विद भी श्रम साधना से ।
होके युवा युवति कर्षण युक्त भी था
सर्वाभिसुन्दर सदा प्रिय था सभी का ।।६।।

तस्स रूववइं भज्जं,
पिया आणेइ रूविणिं ।
पासाए कीलए रम्मे,
देवो दोगुंदगो जहा।।७।।

भार्या सुरूपिणि हुई कमनीय कान्त
प्रासाद में निरत केलि विलास में था ।
दोगुन्द देव सम जो सहधर्मिणी का-
साथी बना रमण से, विरती कहाँ थी? ।।७।।

अह अण्णया कयाइ,
पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झ-मण्डण-सोभागं,
वज्झं पासइ वज्झगं।।८।।

वातायनस्थित विमुग्ध निहारता है-
वध्य क्रिया करण हेतु मनुष्य कोई-।
वध्यादि चिह्न परिलक्षित जा रहा है
संवेगपूर्ण करुणामृत हो कहा यों- ।।८।।

तं पासिऊण संविग्गो,
समुद्दपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुहाण कम्माणं,
णिज्जाणं पावगं इमं।।९।।
संबुद्धो सो तहिं भगवं,
परम-संवेग-मागओ ।
आपुच्छऽम्मा-पियरो,
पव्वए अणगारियं।।१०।।

आश्चर्य है अशुभ कर्म विपाक हैं ये ।
देते विशेष फल हैं सबसे निराले ।।९।।
वैराग्य युक्त परिबद्ध हुआ प्रवज्या-।
स्वीकार की, जनक की शुभ संमती से ।।१०।।

जहित्तु संगं य-महाकिलेसं,
महंत-मोहं कसिणं भयावहं ।
परियायधम्मं चभि-रोयएज्जा,
वयाणि सीलाणि परीसहे य।।११।।

दीक्षा, प्रसन्न मुनि संव्रत पालते हैं
क्लेशादि भाव सुख से सहते सदैव ।
आसक्ति मोह परिवर्जित भाग्यशाली
पर्याय धर्म परिपालन लीन होते ।।११।।

अहिंस सच्चं च अतेणगं च,
तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि,
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ।।१२।।

विद्वान् मुनि प्रबल भाव महाव्रतों को-
प्राणातिपात विरती सह सत्यता का-
अस्तेय बह्मचरणा परिगाहता भी-
पाले, जिनोक्त पथ पै चलते सहर्ष ।।१२।।

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकम्पी,
खंतिक्खमे संजय बंभयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो,
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि-इंदिए।।१३।।

सम्यक् प्रदान्त करके निज इन्द्रियों को-
जीवादि रक्षण विधान विशेषकारी-।
क्षान्ति प्रकृष्ट कटु-वाद सहे समग्र-
सावद्य भाव मुनि के मन में न होता ।।१३।।

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सद्देण ण संतसेज्जा,
वयजोग सुच्चा ण असब्भमाहु।।१४।।

आत्म-प्रधान बल से बन शक्तिशाली-
राष्ट्र-प्रदेश सुख से विचरे सदैव-।
सिंहादि तुल्य यदि दुःख मिले कभी तो-
ना भीति भाव मन में कुछ भी समावें ।।१४।।

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पिय-मप्पियं सव्वं तितिक्खएज्जा ।
ण सव्व सव्वत्थ-ऽभिरोयएज्जा,
ण यावि पूयं गरहं च संजए।।१५।।

संयाम में विहरते प्रिय अप्रियी न-
संभावपूर्ण दुख को सहते सदा हैं ।
कोई मनोज्ञ लख के न करे समीहा
पूजादि भाव हित में मन से न चाहे ।।१५।।

अणेग-च्छंदामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।
भय-भेरवा तत्थ उइंति भीमा,
दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा।।१६।।

संसार में मनुज की परिभावना की-
सीमा नहीं, दिख रही, भटका हुआ है ।
देवादि दत्त सब ही उपसर्ग सारे-
आत्मानुरूप सहता वह देव ही है ।।१६।।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयंति जत्था बहु-कायरा णरा ।
से तत्थ पत्ते ण वहिज्ज भिक्खू,
संगामसीसे इव नागराया।।१७।।

संप्राप्त हो अगर कष्ट सहे, न सोचें
आसक्ति भाव मन में, न कभी समाये ।
भिक्षु प्रकर्ष गति की परिधारणा से-
कष्टोपसर्ग सहते, न कभी दुखी हो ।।१७।।

सीओसिणा दंस-मस य फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं ।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा,
रयाइं खेवेज्ज पुरे कडाइं।।१८।।

शीतादि उष्ण तन में यदि तीर मारे-
होता विकार जिनसे, दुख भी सदा है ।
निन्दा न भूल करके, उनकी करे वो
शान्त प्रशान्त बन के रत धर्म में हो ।।१८।।

पहाय रागं य तहेव दोसं,
मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो ।
मेरुव्व वाएण अकम्पमाणो,
परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा।।१९।।

संलग्न भिक्षु नत हो परिसाधना से-
संमोह भाव मन में न कदापि लावे ।
मेरु स्वरूप बनके दृढ़ निश्चयी हो
आत्मादि गुप्त बनके रत साधना से ।।१९।।

अणुण्णए णावणए महेसी,
ण यावि पूयं गरहं च संजए ।
स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए,
णिव्वाण-मग्गं विरए उवेइ।।२०।।

पूजा प्रतिष्ठित सदा जिसमें न गर्हा
होवे परिस्थिति निपात झुके कभी न ।
निर्वाण लब्ध करता समता स्थितिज्ञ
सारल्य भाव परिसाधन लीनता से ।।२०।।

अरइ-रइ-सहे पहीण-संथवे,
विरए आय-हिए पहाणवं ।
परमट्ठ-पएहिं चिट्ठइ,
छिण्णसोए अममे अकिंचणे।।२१।।

ना राग रंग रत हो जग से पृथक् हो
मोहादि की विरतता जिसमें समायी ।
संयामशील, परिशोक ममत्त्वहीन
सम्यक् स्वरूप परिमोक्ष उसे मिलेगा ।।२१।।

विवित्त-लयणाइं भएज्ज ताई,
णिरोव-लेवाइं असंथडाइं ।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं,
काएण फासेज्ज परीसहाइं।।२२।।

त्राता यशस्वि ऋषि लेप विलेपहीन
मुक्त प्रमुक्त जग की परिभावना से ।
बीजादि दोष तज के रहता अकेला
होता परीषह सहा समता समेत ।।२२।।

संणाण-णाणोवगए महेसी,
अणुत्तरं चरिउं धम्म-संचयं ।
अणुत्तरे णाणधरे जस्संसी,
ओभासइ सूरिए वन्तलिक्खे।।२३।।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण-पावं,
णिरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं च महाभवोघं,
'समुद्दपाले' अपुणागमं गए।।२४।।

धर्मादि कार्य करता रहता सचेष्ट-
सद्ज्ञान से भरित हो बनता प्रबुद्ध ।
विज्ञान भाव उसमें बढ़ता अपूर्व-
सुर्यांशु-सा चमकता यति संघ में है ।।२३।।

कर्मक्षयी मुनि महेन्द्र समुद्रपाल
संयुक्त हो समरसी, शुभ-भावना से ।
संसार सागर अपार विशालता से-
संतीर्ण हो, परम धाम गए सहर्ष ।।२४।।
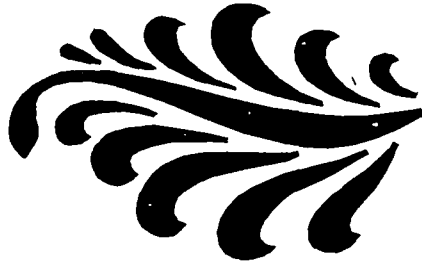
२२ अध्ययन : रथनेमीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम रथनेमीय (रहनेमिज्जं) है अध्ययन मे रथनेमि से सम्बन्धित वर्णन मुख्य होने से इसका नाम 'रथनेमीय' रखा गया है।
- वैसे इस अध्ययन का पूर्वार्द्ध तीर्थंकर अरिष्टनेमि और महासती राजीमती से सम्बन्धित होने के कारण प्रासगिक है।
- प्रस्तुत अध्ययन के उत्तरार्द्ध मे रथनेमि को राजीमती द्वारा दिया गया बोधवचन संकलित है, जिसका उल्लेख "दशवैकालिकसूत्र" के द्वितीय अध्ययन मे भी है। यह बोधवचन इतना प्रभावशाली एव प्रेरणादायक है कि संयमपथ से भ्रष्ट होते हुए साधक को जागृत एव सावधान कर देता है, भोगवासना को सहसा नियंत्रित कर देता है, पवित्र कुल का स्मरण करा कर साधक को भटकने से बचाता है। प्रत्येक साधक के लिए यह प्रकाशस्तम्भ है, जो उसकी जीवन–नौका को भोगवासना की चट्टानो से टकराने से बचाता है। यह बोधवचन शाश्वत सत्य है, अजर–अमर है।

२२. रथनेमीय

'सोरियपुरम्मि' णयरे,
आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेवेत्ति नामेणं,
राय-लक्खण-संजुए।।१।।

सौख्य प्रपूर्ण धन धान्य विशिष्टरम्य
सामर्थ्य सौरिपुर में जगती प्रसिद्ध ।
राजस्व भोग वसुदेव सदैव भोगे
आनन्दरामगृह में रमने सहर्ष ।।१।।

तस्स भज्जा दुवे आसी,
रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हं वि दुवे पुत्ता,
इट्ठा राम-केसवा।।२।।

भार्या विशेष गुण रोहिणि देवकी थी
लावण्यपूर्ण जिनके प्रिय पुत्र दो थे ।
कंसारि कृष्ण, बलदेव सुशोभते थे
आत्मीय भाव जिन पै परिपूर्ण भी था ।।२।।

सोरियपुरम्मि णयरे,
आसी राया महिड्ढिए ।
'समुद्दविजए' णामं,
राय-लक्खण-संजुए।।३।।

पूर्वोक्त दिव्य नगरी प्रथिताधिकारी-
सामुद्र लक्षण समेत समुद्र भूप-।
भार्या शिवा विपुल गौरव शालिनी थी
सौन्दर्य पूर्ण छवि से मन मोहती थी ।।३।।

तस्स भज्जा 'सिवा' णाम,
तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं 'अरिट्ठणेमि त्ति',
लोगणाहे दमीसरे।।४।।

सौम्यांग जात जनि से अति पुण्यशाली
तेजस्वि रूप विजितेन्द्रिय सत्त्व शोभी ।
सर्वोत्तम प्रथम लोक सनाथकारी
सूनू अरिष्टनमिनाथ हुए यशस्वी ।।४।।

सो अरिट्ठणेमि-णामो अ,
लक्खणस्सर-संजुओ ।
अट्ठ-सहस्स लक्खण-धरो,
गोयमो कालगच्छवी।।५।।

कण्ठ ध्वनि प्रसर कर्ण सुखप्रदायी
गाम्भीर्य लक्षण सुलक्षित था विशेष ।
संयुक्त था, सकल मंगल लक्षणों से
गौत्रार्य गौतम सुरूप सुकृष्ण भी था ।।५।।

वज्ज-रिसह-संघयणो,
सम-चउरंसो झसोयरो ।
तस्स रायमई-कण्णं,
भज्जं जायइ केसवो।।६।।

नाराच वज्र सम था जिनका निराला
संस्थान था, चतुर कोण विशेष शोभी ।
सर्वांश से उदर भी जिनका सुहाता
राजीमती प्रणयिनी उनके लिए थी ।।६।।

अह सा रायवर-कण्णा,
सुसीला चारु-पेहिणी ।
सव्व-लक्खण-संपण्णा,
विज्जु-सोयामणि-प्पभा।।७।।
अहाह जणओ तीसे,
वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहा-गच्छउ कुमारो,
जा से कण्णं ददामिऽहं।।८।।

श्रीकृष्ण ने निज मनोगत भाव सारे-
श्री उग्रसेन नृप पै प्रकटे यथार्थ ।।७।।
कन्या सुशील शुभ लक्षण संयुता है ।
आवें, यहाँ अवश मैं उपहार में दूँ ।।८।।

सव्वोसहीहिं ण्हविओ,
कय-कोउय-मंगलो ।
दिव्व-जुयल-परिहिओ,
आभरणेहिं विभूसिओ।।९।।

सर्वौषधि प्रखरता जिसमें मिली थी
स्नानादि कार्य परिपूर्ण हुआ विशिष्ट ।
कौतुक्य पूर्ण परिमंगल भी किया था
वस्त्रादि भूषण विभूषित भी हुए थे ।।९।।

मत्तं च गंधहत्थिं च,
वासुदेवस्स जेट्ठगं ।
आरूढो सोहइ अहियं,
सिरे चूडामणी जहा।।१०।।

सर्वोत्तमादि गुण संभृत गन्ध हस्ती
आरूढ हो, विपुल शोभित शीर्ष में थे ।।१०।।
सिंहासनस्थ पर चामर ढोलते थे-
दशार्ह चक्र परिमण्डित हो रहे थे ।।११।।

अह ऊसिएण छत्तेण,
चामराहि य सोहिए ।
दसार-चक्केण तओ,
सव्वओ परिवारिओ।।११।।

चउरंगिणीए सेणाए,
रइयाए जहक्कमं ।
तुडियाणं सण्णिणाएणं
दिव्वेणं गगणं फुसे।।१२।।

सेना समस्त चतुरंगिणि संग में थी
सज्जा विशेष जिसकी परिशोभती थी ।
वाद्यादि गीत गगनांगन गूँजते थे
श्रोतामृत प्रसवनामित मुग्धकारी ।।१२।।

एयारिसीए इड्ढिए,
जुईए उत्तमाइ य ।
णियगाओ भवणाओ,
णिज्जाओ वण्हि-पुंगवो।।१३।।
अह सो तत्थ णिज्जंतो,
दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च,
सण्णिरुद्धे सुदुक्खिए।।१४।।

ऋद्ध्यादि पूर्ण तन की परिदीप्ति पूरी ।
सज्जा सुशोभित विशेष विवाह हेतु ।।१३।।
प्रासाद से, निकलते, उनकी सुदृष्टि-।
संत्रस्त जीवचय पै, उमगी मनोज्ञा ।।१४।।

जीवियन्तं तु संपत्ते,
मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापण्णे,
सारहिं इण-मब्बवी।।१५।।

वे थे मुमूर्ष, घड़ियाँ गिन ही रहे थे
मांसार्थ लाकर वहाँ परिरुद्ध भी थे ।
देखा, दयार्द्र उनको महती कृपा से-
बोले, विनम्र रथवाहक से विवेकी ।।१५।।

कस्स अट्ठा इमे पाणा,
एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च,
सण्णिरुद्धा य अच्छहिं।।१६।।

ये आर्त जीव किस हेतु निरा निरुद्ध-
कोई यहाँ व्यथित है, पड़ पिंजरों में ।।१६।।
बोला विनीत नय से रथवान् सदुःख
श्रीमान के प्रणय वंधन मांस हेतु ।।१७।।

अह सारही तओ भणइ,
एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाह-कज्जम्मि,
भोयावेउं बहुं जणं।।१७।।

सोऊण तस्स वयणं,
बहु-पाणि-विणासणं ।
चिंतेइ से महापण्णे,
साणुक्कोसे जिएहि उ।।१८।।
जइ मज्झ कारणा एए,
हम्मंति सुबहू-जिया ।
ण मे एयं तु णिस्सेसं,
परलोगे भविस्सई।।१९।।

प्राणी विनाश सुनके सविचार बोले-
कारुण्य भाव भरके भगवान् कृपालु ।।१८।।
मेरे निमित्त यह हिंसन काम हो क्यों ?
श्रेयस्करी न, परलोक हिता प्रवृत्ति ।।१९।।

सो कुण्डलाण जुयलं,
सुत्तगं य महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि,
सारहिस्स पणामए।।२०।।
मण परिणामो य कओ,
देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा,
णिक्खमणं तस्स काउं जे।।२१।।

तत्काल ही मुदित हो, निज सारथी को-
सारा दिया, युगल कुण्डल भूषणादि ।।२०।।
उत्कृष्ट भाव मन के, तव जान के ही-
दीक्षार्थ देव ! विभवादिक संग आये ।।२१।।

देव-मणुस्स-परिवुडो,
सिबिया-रयणं तओ समारूढो ।
णिक्खमिय बारगाओ,
रेवययम्मि ठिओ भगवं।।२२।।

मानुष्य देव वृत हो, सबके समेत-
अच्छी महर्घ शिबिका पर बैठ के वे ।
द्वारावती नगर से, निकले सुपर्व-
धामाभिरम्य पहुंचे गिरि रैवताख्य ।।२२।।

अह ऊसिएण छत्तेण,
चामराहि य सोहिए ।
दसार-चक्केण तओ,
सव्वओ परिवारिओ।।११।।

चउरंगिणीए सेणाए,
रइयाए जहक्कमं ।
तुडियाणं सण्णिणाएणं
दिव्वेणं गगणं फुसे।।१२।।

सेना समस्त चतुरंगिणि संग में थी
सज्जा विशेष जिसकी परिशोभती थी ।
वाद्यादि गीत गगनांगन गूँजते थे
श्रोतामृत प्रसवनामित मुग्धकारी ।।१२

एयारिसीए इड्ढिए,
जुईए उत्तमाइ य ।
णियगाओ भवणाओ,
णिज्जाओ वण्हि-पुंगवो।।१३।।
अह सो तत्थ णिज्जंतो,
दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च,
सण्णिरुद्धे सुदुक्खिए।।१४।।

ऋद्ध्र्यादि पूर्ण तन की परिदीप्ति पूरी ।
सज्जा सुशोभित विशेष विवाह हेतु ।।१३
प्रासाद से, निकलते, उनकी सुदृष्टि-।
संत्रस्त जीवचय पै, उमगी मनोज्ञा ।।१४।

जीवियन्तं तु संपत्ते,
मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापण्णे,
सारहिं इण-मब्बवी।।१५।।

वे थे मुमूर्ष, घड़ियाँ गिन ही रहे थे
मांसार्थ लाकर वहाँ परिरुद्ध भी थे ।
देखा, दयार्द्र उनको महती कृपा से-
बोले, विनम्र रथवाहक से विवेकी ।।१५।

कस्स अट्ठा इमे पाणा,
एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च,
सण्णिरुद्धा य अच्छहिं।।१६।।

ये आर्त जीव किस हेतु निरा निरुद्ध-
कोई यहाँ व्यथित है, पड़ पिंजरों में ।।१६।।
बोला विनीत नय से रथवान् सदुःख
श्रीमान के प्रणय बंधन मांस हेतु ।।१७।।

अह सारही तओ भणइ,
एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाह-कज्जम्मि,
भोयावेउं बहुं जणं।।१७।।

सोऊण तस्स वयणं,
बहु-पाणि-विणासणं ।
चिंतेइ से महापण्णे,
साणुक्कोसे जिएहि उ।।१८।।
जइ मज्झ कारणा एए,
हम्मंति सुबहू-जिया ।
ण मे एयं तु णिस्सेसं,
परलोगे भविस्सई।।१९।।

प्राणी विनाश सुनके सविचार बोले-
कारुण्य भाव भरके भगवान् कृपालु ।।१८।।
मेरे निमित्त यह हिंसन काम हो क्यों ?
श्रेयस्करी न, परलोक हिता प्रवृत्ति ।।१९।।

सो कुण्डलाण जुयलं,
सुत्तगं य महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि,
सारहिस्स पणामए।।२०।।
मण परिणामो य कओ,
देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा,
णिक्खमणं तस्स काउं जे।।२१।।

तत्काल ही मुदित हो, निज सारथी को-
सारा दिया, युगल कुण्डल भूषणादि ।।२०।।
उत्कृष्ट भाव मन के, तब जान के ही-
दीक्षार्थ देव ! विभवादिक संग आये ।।२१।।

देव-मणुस्स-परिवुडो,
सिवया-रयणं तओ समारूढो ।
णिक्खमिय बारगाओ,
रेवययम्मि ठिओ भगवं।।२२।।

मानुष्य देव वृत हो, सबके समेत-
अच्छी महर्थ शिविका पर बैठ के वे ।
द्वारावती नगर से, निकले सहर्ष-
कामाभिरम्य पहुंचे गिरि रैवताख्य ।।२२।।

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाओ सीयाओ । साहस्सीए परिवुडो, अह णिक्खमइ उ चित्ताहिं।।२३।।	उद्यान में पहुँच के निज शीविका से नीचे वहाँ उतर के परिमोदमान-। साथी, हजार परिवार समेत दिव्य- दीक्षा गृहीत करली स्वपरोपकारी ।।२३।।
अह सो सुगंध-गंधिए, तुरियं मउअकुंचिए । सयमेव लुंचइ केसे, पंच-मुट्ठीहिं समाहिओ।।२४।।	होके समाहित अरिष्ट विशिष्टशाली- ने गन्ध पूर्ण निज केश सदा प्रसन्न । पंच प्रमुष्टि परिलोच किया मनोज्ञ- श्री वासुदेव क़हते, उनसे सहर्ष ।।२४।।
वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं । इच्छिय-मणोरहं तुरियं, पावसु तं दमीसरा!।।२५।।	हो लुप्त केश विजितेन्द्रिय भी अपूर्व जेता दमीश्वर सदा प्रभु देव नाथ । होवे अभीष्ट सब ही परिभावनाएँ गन्तव्य पै तुम चलो, यह कामना है ।।२५।।
णाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य । खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य।।२६।।	ज्ञानादि दर्शन सदा तुझ में सुहावे चारित्र चारु मग में क्षपणा क्रिया हो । शांति प्रकर्ष महिता लहरा रही है- निर्लोभिता सतत हो पुरतः प्रशस्त ।।२६।।
एवं ते राम-केसवा, दसारा य बहू जणा । अरिट्ठणेमिं वंदित्ता, अभिगया बारगापुरिं।।२७।।	सारे दशार्ह बलराम समेत कृष्ण- स्नेहानुसिक्त परिवन्दन सर्जना के-। पश्चात् स्वधाम सुख से परिमोदमान- लौटे, सभी सकल संभृत भावना से ।।२७।।
सोऊण रायकण्णा, पव्वज्जं सा जिणस्स उ । णीहासा य णिराणन्दा, सोगेण उ समुच्छिया।।२८।।	राजीमती सुन वृतान्त अरिष्टनेमि- का सौख्य छोड़, परिशोक सरिन्निमग्ना । मानो, सुतप्त नव भाजन मग्न कोई- पाती, व्यथा विवशदीन विपन्न मीन ।।२८।।

राईमई विचिंतेई,
धिरत्थु मम जीवियं ।
जाऽहं तेणं परिच्चत्ता,
सेयं पव्वइउं मम।।२९।।

कैसी विचित्र अपनी यह जिन्दगी है-
दूरस्थ आज मुझ से, पति हो गए हैं ।
त्यक्ता बनी, अब कु संसृति में रहूँ क्यों ?
दीक्षा गृहीत करना उपयुक्त होगा ।।२९।।

अह सा भमर-सण्णिभे,
कुच्च-फणग-प्पसाहिए ।
सयमेव लुंचइ केसे,
धिइमंता ववस्सिया।।३०।।

धीरा सतीकृत विनिश्चय भद्र भाव-
तैलादि सिक्त नव कुंचित केश का भी-।
सम्पन्न लोच करके, श्रमणी बनी है
वैराग्य भाव, भव वैभवहीन होके ।।३०।।

वासुदेवो य णं भणइ,
लुत्तकेसं जिइंदियं ।
संसार सायरं घोरं,
तर कण्णे लहुं-लहुं।।३१।।

श्रीकृष्ण ने तब कहा परिलुप्त केशी-
होना जितेन्द्रिय यहॉ, परिशोभकारी-।
कन्ये ! सदा सफल हो, यह संसृती भी
हो पार सागर, यही परिभावना है ।।३१।।

सा पव्वइया संति,
पव्वावेसी तहिं बहुं ।
संयणं परियणं चेव,
सीलवंता बहुस्सुया।।३२।।

शीला बहुश्रुतवती उसने स्वसंग-
आत्मीय और परिवार समूह लेके-।
दीक्षा गृहीत कर ली, शुभ भावना से-
रागादिरक्त नभ की पहली विजे थी ।।३२।।

गिरिं रेवतयं जंती,
वासेणुल्ला उ अंतरा ।
वासंते अंधयारम्मि,
अंतो लयणस्स सा ठिया।।३३।।

पार्वत्य पंथ पर थी, गतिशील शाली
संसिक्त वृष्टि जल से, परिधान युक्ता ।
गाढान्धकार वश गुप्त गुहा प्रविष्टा
विश्राम हेतु मग मध्य हुई अशक्त ।।३३।।

चीवराणि विसारंति,
जहा-जायत्ति पासिया ।
रहणेमी भग्गचित्तो,
पच्छा दिट्ठो य तीइऽवि।।३४।।

शुष्कार्द्र वस्त्र करती महती सती को
देखा, विनग्न रथनेमि सुधीयती ने ।
कामाभिभूत दयनीय हुए विशेष-
राजीमती तब वहाँ सहमी सलज्जा ।।३४।।

भीया य सा तहिं दट्ठुं,
एगंते संजयं तयं ।
बाहाहिं काउं संगोप्फं,
वेवमाणी णिसीयइ।।३५।।

एकान्त में जब उसे यह भान आया
संयाम में निरत साधक रूप कोई-।
संकम्पयुक्त बनके निज की भुजा से-
आश्लिष्ट देह करके स्थित हो गई थी ।।३

अह सोऽवि रायपुत्तो,
समुद्दविजयंगओ ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं,
इमं वक्क-मुदाहरे।।३६।।
रहणेमी अहं भद्दे!,
सुरूवे चारु भासिणी ।
ममं भयाहि सुयणु,
ण ते पीला भविस्सइ।।३७।।

स्नेहाभिषिक्त मन से, नृप पुत्र बोला-
"कम्पायमान किस हेतु बनी हुई है ।।३
भद्रे ! न भीत बनना रथनेमि हूँ मैं-
स्वीकार लो न, मुझको अपनी दया से" ।।३

एहि ता भुंजिमो भोए,
माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्त-भोगी तओ पच्छा,
जिणमग्गं चरिस्समो।।३८।।

अत्यन्त दुर्लभ निरा नर जन्म पाया
आओ, अनन्य बनके सुख भोगते हैं ।
भोगादि कर्म पहले करके प्रभूत-
दीक्षा ग्रही फिर कभी विधि से बनेंगे ? ।।३

दट्ठूण रहणेमिं तं,
भग्गुज्जोय पराजियं ।
राईमई असंभन्ता,
अप्पाणं संवरे तहिं।।३९।।

उत्साहहीन बनके जब संयमों में-
भोगाभितप्त रथनेमि हुए विसक्त-।
सम्भ्रान्त भी वह हुई न, अभीत बाला-
प्रच्छन्न अंग करके जित संग बोली ।।३

अह सा रायवर कण्णा,
सुट्ठिया णियम-व्वए ।
जाइ कुलं च सीलं च,
रक्खमाणी तयं वए।।४०।।

पूरी व्रत स्थित हुई, वह राजकन्या-
जात्यादि रूप कुल शील गुणानुकूल ।
बोली, प्रकर्ष परिभाव लिए अदम्य-
आवे, विकार परिपूर्ण विचार कैसे ? ।।४

जइऽसि रूवेण वेसमणो,
ललिएण णल-कुब्बरो ।
तहाऽवि ते ण इच्छामि,
जइसि सक्खं पुरंदरो।।४१।।

तू है, कुबेर सम सुन्दर सौम्य रूप-
लालित्य है, नल कुबेर समान दिव्य-।
साक्षात्सुरेन्द्र यदि शक्ति विशेषशाली-
चाहूँ नहीं, मन विकार, न आ सकेगा ।।४१।।

पक्खंदे जलियं जोइं,
धूमकेउं दुरासयं ।
णेच्छंति वन्तयं भोत्तुं,
कुले जाया अगंधणे।।४२।।

ज्वालावली वलित धूम समूहशाली-
वह्नि प्रवेश अहि शर्मद मानता है ।
उत्पन्न हो, जग अगन्धन वंश केतु-
वान्तोल्वण स्वविष का करता न, पान ।।४२।।

धिरत्थु तेऽजसो कामी !,
जो तं जीविय कारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं,
सेयं ते मरणं भवे।।४३।।

है भ्रान्ति युक्त अयशी अनुकूल काम-
धिक्कार है, यदि सुभोग पुनः रमा है ।
वान्तादि लेह रुचि भी अनुरूप है क्या ?
श्रेयस्करी प्रमद मृत्यु विमुग्धकारी ।।४३।।

अहं च भोगरायस्स,
तं चऽसि अंधग-वण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो,
संजमं णिहुओ चर।।४४।।

मैं भोगराज नृप की दुहितात्मजा हूँ
तू अन्धवृष्णि नृप का परमार्थ पौत्र ।
क्या शोभता कुल विनाश कलंककारी-
संयाम में दृढ़ बनों कल कामना से ।।४४।।

जइ तं काहिसी भावं,
जा जा दिच्छसि णारिओ ।
वाया विद्धोव्व-हडो,
अट्ठिअप्पा भविस्ससि।।४५।।

योषित्प्रसंग यदि तू करता रहेगा
रागादि मान मन में जलते रहेंगे ।
वायु प्रकम्पित वनस्पति-सा बनोगे
आत्म स्थिती अचल रूप नहीं बनेगी ।।४५।।

गोवालो भण्डवालो वा,
जहा तद्दव्व-ऽणिस्सरो ।
एवं अणिस्सरो तंऽपि,
सामण्णस्स भविस्ससि।।४६।।

गोपाल भाण्ड परिरक्षक दास जैसे-
वाणिज्य कार्य उनका न कभी कहाता-।
वैसे सदाचरण हीन विनम्र साधु-
श्रामण्य धर्म परिपाल कभी न होता ।।४६।।

तीसे सो वयणं सोच्चा,
संजयाइ सुभासियं ।
अंकुसेण जहा णागो,
धम्मे संपडिवाइओ।।४७।।

तू त्याग मान ममता अरु लोभ माया-
जेता विशेष बनना, चल इन्द्रियों का-।
नैर्मल्य भाव सरिता मन में बहाके
आचार पूत बनके विजयी बनोगे ।।४७।।

कोहं माणं णिगिण्हित्ता,
मायं लोहं य सव्वसो ।
इंदियाइं वसे काउं,
अप्पाणं उवसंहरे।।४८।।

जैसे द्विपेन्द्र खर अंकुश से प्रभूत
होता वशी, विवश वर्त्तुल वृत्तिधारी ।
राजीमती वचन को, सुन के समग्र
चांचल्य हीन, रथनेमि हुए तथैव ।।४८।।

मणगुत्तो वयगुत्तो,
कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्णं णिच्चलं फासे,
जावज्जीवं दढव्वओ।।४९।।

कायादि गुप्त करके व्रत रूप लेके
अन्तर्विशुद्धि दृढता परिबद्ध होके ।
आजीवन प्रबल निश्चय भावशाली
श्रामण्य में स्थिर विशेष हुए, मुनीन्द्र ।।४९।।

उग्गं तवं चरित्ताणं,
जाया दोण्णिऽवि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं,
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं।।५०।।

उग्रादि ताप तप में अनुरंजना की-
कर्मादि शत्रु दल की परिमन्थना की-।
सिद्धि स्वरूप अपना प्रभु तत्त्व काम-
राजीमती, सुरथनेमि हुए प्रबुद्ध ।।५०।।

एवं करेंति संबुद्धा,
पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु,
जहा से पुरिसुत्तमो।।५१।।

सम्बुद्ध पण्डित विचक्षण दिव्य चेता-
संसार मुक्त बनते परिभोग-हीन-।
संसाधना परक जीवन को बनाते
श्री मानवोत्तम यती रथनेमि तुल्य ।।५१।।

२३ अध्ययन : केशि-गौतमीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम केशी–गौतमीय (केसि–गोयमिज्ज) है। इसमें पार्श्वापत्य केशी कुमारश्रमण और भगवान् महावीर के पट्टशिष्य गणधर गौतम (इन्द्रभूति) का जो संवाद श्रावस्ती नगरी मे हुआ, उसका रोचक वर्णन है।
- एक बार केशी श्रमण अपनी शिष्यमण्डली सहित विचरण करते हुए श्रावस्ती पधारे। वे तिन्दुक उद्यान में विराजे। संयोगवश उन्ही दिनों गणधर गौतम भी अपने शिष्यवर्गसहित विचरण करते हुए श्रावस्ती पधारे और कोष्ठक उद्यान में विराजे। जब दोनो के शिष्य भिक्षाचरी, आदि को नगरी मे जाते तो दोनों को दोनों परम्पराओं के क्रियाकलाप मे प्रायः समानता और वेष में असमानता देखकर आश्चर्य तथा जिज्ञासा उत्पन्न हुई। दोनो के शिष्यों ने अपने–अपने गुरुजनों से कहा। अत: दोनों पक्ष के गुरुओं ने निश्चय किया कि हमारे पारस्परिक मतभेदों तथा आचारभेदो के विषय में एक जगह बैठकर चर्चा कर ली जाए। केशी कुमारश्रमण पार्श्वपरम्परा के आचार्य होने के नाते गौतम से ज्येष्ठ थे इसलिए गौतम ने विनयमर्यादा की दृष्टि से इस विषय मे पहल की। वे अपने शिष्यसमूहसहित तिन्दुक उद्यान में पधारे, जहाँ केशी श्रमण विराजमान थे। गौतम को आए देख, केशी श्रमण ने उन्हें पूरा आदरसत्कार दिया, उनके बैठने के लिए पलाल आदि प्रस्तुतकिया और फिर क्रमशः बारह प्रश्नोत्तरों मे उनकी धर्मचर्चा चली।
- सबसे मुख्य प्रश्न थे दोनों के परम्परागत महाव्रतधर्म, आचार और वेष में जो अन्तर था, उसके सम्बन्ध में गौतम ने आचार–विचार अथवा धर्म एवं वेष के अन्तर का मूल कारण बताया– साधकों की प्रज्ञा। बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार भ. महावीर

ने देशकालानुसार धर्मसाधना का व्यावहारिक विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया है। वे आज के फैले हुए घोर अज्ञानान्धकार में दिव्य प्रकाश करने वाले जिनेन्द्रसूर्य है।

- गौतमस्वामी द्वारा दिये गए समाधान से केशी कुमारश्रमण सन्तुष्ट और प्रभावित हुए। उन्होंने गौतमस्वामी को संशयातीत एव सर्वश्रुतमहोदधि कह कर उनकी प्रज्ञा की भूरि–भूरि प्रशंसा की है तथा कृतज्ञताप्रकाशनपूर्वक मस्तिष्क झुका कर उन्हे वन्दन–नमन किया। इतना ही नहीं, केशी कुमार ने अपने शिष्यों सहित हार्दिक श्रद्धापूर्वक भ महावीर के पंचमहाव्रतरूप धर्म को स्वीकार किया है। वास्तव में इस महत्त्वपूर्ण परिसंवाद से युग–युग के सघन संशयों और उलझे हुए प्रश्नो का यथार्थ समाधान प्रस्तुत हुआ है।
- अन्त में–इस संवाद की फलश्रुति दी गई है कि इस प्रकार के पक्षपातमुक्त, समत्वलक्षी परिसंवाद से श्रुत और शील का उत्कर्ष हुआ, महान् प्रयोजनभूत तत्त्वो का निर्णय हुआ।
- वस्तुत. समदर्शी तत्त्वद्रष्टाओं का मिलन, निष्पक्ष चिन्तन एवं परिसंवाद बहुत ही लाभप्रद होता है। वह जनचिन्तन को सही मोड़ देता है, युग के बदलते हुए परिवेष में धर्म और उसके आचार–विचार एव नियमोपनियमों को यथार्थ दिशा प्रदान करता है, जिससे साधकों का आध्यात्मिक विकास निराबाधरूप से होता रहे। सघ एव धार्मिक साधकवर्ग की व्यवस्था सुदृढ बनी रहे।

२३. केशि-गौतमीय

जिणे पासित्ति णामेणं,
अरहा लोग-पूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वण्णू,
धम्म-तित्थयरे जिणे।।१।।

पार्श्वाख्य लोक परिपूजित बुद्ध आत्मा-
सर्वज्ञ धर्म धन के सतत प्रवर्ती-।
रागादिहीन जग के परिरक्षकर्त्ता-
श्रौत प्रवाह जिनका सतत बहा था ।।१।।

तस्स लोग-पईवस्स,
आसी सीसे महायसे ।
केसी-कुमार-समणे,
विज्जा-चरण-पारगे।।२।।

लोक प्रदीप भगवान् विभु पार्श्व के ही-
चारित्र संवलित केशि महायशस्वी ।
शिष्यत्व लक्ष्य धरके विचरे, धरा पै-
श्रामण्य कृत्य करते, परिशोभमान ।।२।।

ओहि-णाण सुए बुद्धे,
सीस संघ-समाउले ।
गामाणुगामं रीयंते,
सावत्थिं पुरिमागए।।३।।

थे वे प्रबुद्ध अवधि श्रुत बोधशाली-
शिष्य प्रशिष्य परिवार समेत शुभ्र-।
ग्रामानुगाम करते सुविहार आये
श्रावस्ति नाम नगरी जगती प्रसिद्ध ।।३।।

तिन्दुयं णाम उज्जाणं,
तम्मि णयर-मंडले ।
फासुए सिज्ज-संथारे,
तत्थ वास-मुवागए।।४।।

उद्यान तिन्दुक जहाँ परिदिव्यमान {परिशोभता था}
जीवत्व सत्त्व परिहीन अदोषकारी-।
संस्तार पीठ फलकादि सुलाभकारी-
ऐसे पुनीत गृह में, मुनि थे विराजे ।।४।।

अह तेणेव कालेणं,
धम्म तित्थयरे जिणे ।
भगवं वद्धमाणोत्ति,
सव्व-लोगम्मि विस्सुए।।५।।

थे तीर्थकार अधिनायक बोधकारी-
ख्याति प्रकर्ष जिनका चहुँ ओर फैला-।
श्री वर्धमान भगवान् विबुध प्रपूज्य-
प्रख्यात थे, विमल कीर्ति, समग्र लोक ।।५।।

तस्स लोग-पईवस्स,
आसी सीसे महायसे ।
भगवं गोयमे णामं,
विज्जा चरण पारगे।।६।।

धर्मादि तीर्थधन के कमनीय कर्त्ता-
श्री वीतराग जिन वीर महाप्रतापी ।
लोक प्रदीप विभु के भगवान् यशस्वी-
विद्या, चरित्र युत गौतम थे सुशिष्य ।।६।।

बारसंग-विऊ बुद्धे,
सीस-संघ-समाउले ।
गामाणुगामं रीयंते,
सेऽवि सावत्थि-मागए।।७।।

आप्त प्रणीत विविधागम तत्त्ववेदी-
संबुद्ध गौतम सुशिष्य सुसाधु संघ ।
ग्रामादि में विचरते, नगरी श्रवस्ती-
आए, प्रबोध चरितामृत नीरधी से ।।७।।

कोट्ठगं णाम उज्जाणं,
तम्मि णगर मंडले ।
फासुए सिज्ज-संथारे,
तत्थ वास-मुवागए।।८।।

उद्यान कोष्ठक समीप सुरम्य रूप-
शय्यादि से सुलभ शुद्ध मनोज्ञ भी था ।
संस्तारिकादि परिपूत वहाँ विराजे-
आत्मोन्नति प्रखर साधक संयमी वे ।।८।।

केसी-कुमार समणे,
गोयमे य महायसे ।
उभओवि तत्थ विहरिंसु,
अल्लीणा सुसमाहिया।।९।।

केशी कुमार समनार्चित पाद पद्म-
गौत्रार्य गौतम महा यमवान् यशस्वी-।
दोनों त्रिरत्न परिपालन पूत कर्म-
आलीन और सुसमाहित वे बने थे ।।९।।

उभओ सीस-संघाणं,
संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ चिंता समुप्पण्णा,
गुणवंताण ताइणं।।१०।।

संयाम युक्त गुणवान् तप दीप्तिशाली-
षट्काय रक्षक विशेष चरित्र पूत-।
दोनों विनेय कुल में शुभ भावना से-
ऐसी विचार सरणी सुख से चली थी ।।१०।।

केरिसो वा इमो धम्मो,
इमो धम्मो व केरिसो ?
आयार-धम्म-प्पणिही,
इमा वा सा व केरिसी?।।११।।

ये धर्म भी किस विधि प्रतिबोध से है
ये भी कहो किधर से परिमान्यता है।
आचार धर्म उनका कुछ अन्य ही है-
आचार धर्म अपना कुछ भिन्न-सा है ।।११।।

चाउज्जामो य जो धम्मो,
जो इमो पंच-सिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण,
पासेण य महामुणी।।१२।।

चातुर्यम प्रवचनी प्रभु पार्श्व की है-
पंच प्रशिक्षण यहाँ प्रभु वीर का है-।
दोनों विशेष बहुधा प्रतिभा धनी थे-
आपात भेद परिलक्षित हो रहा यों ? ।।१२।।

अचेलओ य जो धम्मो,
जो इमो संत-रूत्तरो ।
एग-कज्ज पवण्णाणं,
विसेसे किं णु कारणं?।।१३।।

वस्त्रादि हीन पथ को प्रभु ने बताया
व्याख्या महर्ध पट की प्रभु पार्श्व ने की।
दीखे महाव्रत विषै परिभेद है क्यों ?
अज्ञात तत्त्व परिशंकित चित्त नित्य ।।१३।।

अह ते तत्थ सीसाणं,
विण्णाय पवितक्कियं ।
समागमे कय-मई,
उभओ केसी-गोयमा।।१४।।

शिष्य प्रशिष्य गण का भ्रम विघ्नकारी
शंका समन्वित विचार विमर्श जान ।
केशी मुनि श्रमण, गौतम ने विचारा
शंका समाहित बने मिलना सहर्ष ।।१४।।

गोयमो पडिरूवण्णू,
सीस-संघ-समाउले ।
जेट्ठं कुल-मवेक्खन्तो,
तिंदुयं वण-मागओ।।१५।।

केशी मुनी विमल वंश सुधांशु तुल्य
चर्या विशेष परिपूत चरित्र भी है [illegible]
ऐसा यथोचित जगद् व्यवहार [illegible]
शिष्यों समेत यति गौतम [illegible]

केसी-कुमार समणे,
गोयमं दिस्स-मागयं ।
पडिरूवं पडिवत्तिं,
सम्मं संपडिवज्जइ।।१६।।

आते हुए श्रमण गौतम [illegible]
केशी कुमार यति [illegible]
सम्मान आदर [illegible]
निर्दोष आसन [illegible]

पलालं फासुयं तत्थ,
पंचमं कुस-तणाणि य ।
गोयमस्स णिसिज्जाए,
खिप्पं संपणा-मए।।१७।।

केसी कुमार समणे,
गोयमे य महायसे ।
उभओ णिसण्णा सोहंति,
चंद-सूरसम-प्पभा।।१८।।
समागया बहू तत्थ,
पासंडा कोउगा-सिया ।
गिहत्थाणं अणेगाओ,
साहस्सीओ समागया।।१६।।

केशी कुमार विनयी, मुनि गौतम श्री ।
शोभायमान परिलक्षित चन्द्र-सूर्य ।।१८।।
आये अनेक पथ के निज-भावना से ।
तीर्थान्तरीय जन कौतुक देखने को ।।१६।।

देव दाणव-गंधव्वा,
जक्ख रक्खस्स-किन्नरा ।
अदिस्साणं च भूयाणं,
आसी तत्थ समागमो।।२०।।

गन्धर्व देव अरु किन्नर यक्ष रूप
आलोक-शून्य पहुँचे कितनेक भूत-।
द्रष्टा पिशाच गण भी संग शोभते थे-
मानो ! समागम वहाँ सब का हुआ हो ।।२०।।

पुच्छामि ते महाभाग !
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।२१।।

केशी सुभाव भृत हो, कहते सहर्ष-
मैं पूछना, विनय से कुछ चाहता हूँ ।
गोत्रार्य ! गौतम मुनी सुन, बात बोले-
भन्ते ! “अवश्य कहिये अपनी अभीप्सा” ।।२१।।

पुच्छ भंते! जहिच्छं ते,
केसिं गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं अणुण्णाए,
गोयमं इण-मब्बवी।।२२।।

आज्ञा-अवाप्त करके मुनि देव केशी-
वोले प्रसन्न मुनि गौतम से मनस्वी ।।२२।।
यामादि चार धरना यति पार्श्व की है
पंच प्रकृष्टि विमु वीर महाव्रती की ।।२३।।

चाउज्जामो य जो धम्मो,
जो इमो पंच-सिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण,
पासेण य महामुणी।।२३।।

एग-कज्ज-पवण्णाणं,
विसेसे किण्णु कारणं ?
धम्मे दुविहे मेहावी !
कहं विप्पच्चओ ण ते?।।२४।।

मेधावि ! एक परिलक्ष्य विशेष में भी-
क्यों भेदभाव हमको दिखता बतावें-।
दोनों प्रकार यदि धर्म विचार में हैं
सन्देह की स्थिति वहाँ बनती नहीं है ? ।।२४।।

तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी ।
पण्णा समिक्खए धम्मं,
तत्तं तत्त विणिच्छियं।।२५।।

केशीकुमार परिभाव सुने सहर्ष-
श्री गौतम प्रवर ने उनको कहा यो ।
धर्मादि तत्त्वचय की करने समीक्षा
प्रज्ञा प्रधान बनती परिशुद्धता से ।।२५।।

पुरिमा उज्जु-जड्डा उ,
वक्क जडा य पच्छिमा ।
मज्झिमा उज्जु-पण्णा उ,
तेण धम्मे दुहा कए।।२६।।

तीर्थंकर प्रथम के ऋजु और जाड्य
श्री वीर देव जिन के मुनि वक्र मूढ़ ।
मध्याप्त तीर्थचय के सरलात्म विज्ञ
धर्म प्रकार उभयात्मक की व्यवस्था ।।२६।।

पुरिमाणं दुव्वि-सोज्झो उ,
चरिमाणं दुरणु-पालओ ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु,
सुवि-सोज्झो सुपालओ।।२७।।

तीर्थंकर प्रथम कल्प कठोर जानो
वैसा अपश्चिम जिनेश्वर का विचारों ।
मध्यस्थ तीर्थकर कल्प विशिष्ट रूप-
सारल्य युक्त परिपालन योग्य [illegible]

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा।।२८।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है [illegible]
सन्देह दूर करता [illegible] ।
है एक और [illegible]
सम्यक् [illegible] है [illegible]

अचेलगो य जो धम्मो,
जो इमो संत-रूत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण,
पासेण य महाजसा।।२९।।
एग-कज्ज-पवण्णाणं,
विसेसे किं णु कारणं ?
लिंगे दुविहे मेहावी !
कहं विप्पच्चओ ण ते?।।३०।।

सद्धर्म अल्प वसनी जिन वीर का है।
पार्श्वाख्य देव जिन का सुविशिष्ट वस्त्र ।।२९।।
अद्वैत में फिर कहो यह भेद कैसे-
क्यों आपको न इसमें मत भेद होता ? ।।३०।।

केसिमेवं बुवाणं तु,
गोयमो इण-मब्बवी ।
विण्णाणेण समागम्म,
धम्म-साहण-मिच्छियं।।३१।।

केशीकुमार परिभाव सुने सहर्ष-
बोले, महामति मुनीश्वर इन्द्रभूति-।
सम्यक् प्रकार परिबोधता विशिष्ट-
धर्म व्यवस्थितिमयी परिमान्यता है ।।३१।।

पच्च-यत्थं च लोगस्स,
णाणाविह विगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च,
लोगे लिंग-पओयणं।।३२।।

नाना प्रकार परिसाधन लोक में है-
सम्यक् प्रतीति उनसे हितकारिणी हैं।
संसाधुता पथिक के परिवाहनार्थ-
लिंग-प्रयोजन यहाँ अनिवार्य-सा है ।।३२।।

अह भवे पइण्णा उ,
मोक्ख-सब्भूय-साहणा ।
णाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं चेव णिच्छए।।३३।।

दोनों जिनेन्द्र विभु का परमोपकारी
सिद्धान्त तत्त्व महिमा विधि से समान।
ज्ञान क्रिया नियत साधन रूप ही है
मोक्षार्थ दिव्य पथ के गुरुता विशिष्ट ।।३३।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।३४।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।३४।।

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ! ते य ते अहिगच्छंति, कहं ते णिज्जिया तुमे?।।३५।।	हो तूँ खड़े, सदल शत्रु सहस्र बीच- तो भी अजेय बन के स्थित वीरता से। पाई वहाँ विजय भी किस रीति से है- देना, प्रबोध मुझ को यह भावना से ।।३५।।
एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस । दसहा उ जिणित्ताणं, सव्व-सत्तू जिणामहं।।३६।। सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयम-मब्बवी । तओ केसिं बुवन्तं तु, गोयमो इण-मब्बवी।।३७।। एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य । ते जिणित्तु जहा-णायं, विहरामि अहं मुणी!।।३८।।	आत्मा विजेय पहला जय हो उसी का- चारों कषाय तदनन्तर जेय होते ।।३६-३७।। पंचेन्द्रियाँ विजित हो, वश मध्य होती चिन्ता नहीं अरिकदम्ब कहाँ कहाँ हैं ।।३८।।
साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो । अण्णोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!।।३९।।	प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य सन्देह दूर करता अपकारकारी । है एक और परिचर्चित चित्त शंका सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।३९।।
दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो । मुक्कपासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसि मुणी?।।४०।।	संसार में बहुत जीव बंधे हुए हैं कैसे मुने ! न तुम पै प्रतिबद्धता है । कैसे विमुक्त बनके सबसे पृथक् हो श्री इन्द्रभूति हमको प्रतिबोध देना ।।४०।।

ते पासे सव्वसो छित्ता,
णिहन्तूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ,
विहरामि अहं मुणी।।४१।।

सारे प्रमुक्त परिबन्धन से हुआ हूँ-
आत्मार्थ यत्न करना मुझ को पड़ा है।
आत्म स्थिति प्रबलता रहता सदैव-
संयाम में विहरता निज रूप में हूँ ।।४१

पासा य इइ के वुत्ता,
केसी गोयम-मब्बवी ।
केसिमेवं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।४२।।
राग-द्दोसा-दओ तिव्वा,
णेहपासा भयंकरा ।
ते छिंदित्तु जहाणायं,
विहरामि जहक्कमं।।४३।।

रागादि तीव्र परिकर्म विशेष भारी-
प्रेम प्रसिक्त दृढ बन्धनपूर्ण भी हैं ।।४२।
तीव्र प्रयत्न करके उनसे हटाके-
धर्मार्यनीति पथ पै चलता सहर्ष ।।४३।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।४४।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।४४।।

अंतो-हियय-संभूया,
लया चिट्ठइ गोयमा !
फलेइ विस-भक्खीणि,
सा उ उद्धरिया कहं?।।४५।।

उत्पन्न खेत मन में विष की लता है-
फैली हुई सुदृढ को किस चेतना से ।
कैसे उखाड़ करके मन शान्ति पाता-
सम्यक् प्रबोध रुचि की कल कामना है ।।४५।।

तं लयं सव्वसो छित्ता,
उद्धरित्ता समूलियं ।
विहरामि जहाणायं,
मुक्कोमि विस-भक्खणं।।४६।।

सम्पूर्ण शक्ति हरती भृश तर्ष वल्ली-
मैंने समूल उसको विधि से निकाला ।।४६।।

लया य इइ का वुत्ता,
केसी गोयम-मब्बवी ।
केसिमेवं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।४७।।
भवतण्हा लया वुत्ता,
भीमा भीम-फलोदया ।
तमुच्छित्तु जहाणायं,
विहरामि महामुणी।।४८।।

धर्मादि नीति पथ पै सुख से गती से-
हाला हली फल मुझे मिलता नहीं है ।।४७-४८।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।४९।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।४९।।

संपज्जलिया घोरा,
अग्गी चिट्ठइ गोयमा !
जे डहन्ति सरीरत्था,
कहं विज्झाविया तुमे?।।५०।।

घोर प्रचण्ड जलती यह आग भारी-
जीवादि आ जल रहे, इसमें अशक्त ।
कैसे बचें यह हमें प्रतिबोध देवें-
संयाम में प्रगति हो, परिकामना है ।।५०।।

महामेह-प्पसूयाओ,
गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
सिंचामि सययं ते उ,
सित्ता णो व डहंति मे।।५१।।
अग्गी य इइ के वुत्ता,
केसी गोयम-मब्बवी ।
केसिमेवं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।५२।।

सारे कषाय जग के बहु वह्नियाँ हैं
देती समग्र जग की परिवेदना है ।
ज्ञान प्रसूत जल की परिसेचना से
ज्वाला प्रशान्त करता परिवेदना क्या ? ।।५१-५३।।

कसाया अग्गिणो वुत्ता,
सुय-सील-तवो जलं ।
सुयधाराभिहया संता,
भिण्णा हु ण डहंति मे।।५३।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।५४।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।५४।।

अयं साहस्सिओ भीमो,
दुट्ठस्सो परिधावइ ।
जंसि गोयम ! आरूढो,
कहं तेण ण हीरसि?।।५५।।

दुष्टाश्व चित्त पर साहस युक्त वेगी-
आरूढ हो गमन भी करते प्रशस्त ।
आश्चर्य है विरस हो, तुमको कभी वो-
उन्मार्ग पै नयन भी करता न कैसे ? ।।५५।।

पहावन्तं णिगिण्हामिं,
सुयरस्सी समाहियं ।
ण मे गच्छइ उम्मग्गं,
मग्गं च पडिवज्जइ।।५६।।
आसे य इइ के वुत्ते,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।५७।।
मणो साहस्सिओ भीमो,
दुट्ठस्सो परिधावइ ।
तं सम्मं तु णिगिण्हामि,
धम्म-सिक्खाइ कन्थगं।।५८।।

ज्ञान श्रुतादि दृढ है मुख में खलीन-
उन्मार्ग पै न, जिससे गति हो रही है ।।५६।।
धर्म-प्रधान परिशिक्षण से वशी हो-
सन्मार्ग पै गमन मानस अश्व का है ।।५७-५८।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।५९।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।५९।।

कुप्पहा बहवे लोए,
जेहिं णासंति जन्तुवो ।
अद्धाणे कहं वट्टन्तो,
तं ण णाससि गोयमा!।।६०।।
जे य मग्गेण गच्छंति,
जे य उम्मग्ग-पट्ठिया ।
ते सव्वे वेइया मज्झं,
तो ण णस्सामहं मुणी!।।६१।।
मग्गे य इइ के वुत्ते,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।६२।।
कुप्पवयण पासंडी,
सव्वे उम्मग्ग पट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं,
एस मग्गे हि उत्तमे।।६३।।

सन्मार्ग पै गमन से भटका नहीं मैं
उन्मार्ग पै न गति की विधि जानता हूँ ।
कैसे कुमार्ग पथ पै अब मैं चलूंगा-
मिथ्या दिशा न अब तो मुझ में रही है ।।६०-६३।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।६४।।

महाउदग-वेगेणं,
वुज्झ-माणण पाणिणं ।

सरणं गई पइट्ठा य,
दीवं कं मण्णसी मुणी!।।६५।।

कैसे सुरक्षित रहे, निज रूप में ही-
आलम्बनार्थ इसमें किस की गृहीति ? ।।६५

अत्थि एगो महादीवो,
वारि-मज्झे महालओ ।
महाउदग-वेगस्स,
गई तत्थ ण विज्जइ।।६६।।
दीवे य इइ के वुत्ते,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।६७।।
जरा-मरण वेगेणं,
वुज्झ-माणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य,
गई सरण-मुत्तमं।।६८।।

संसार तीव्र जलपूर निपातमग्न-
उन्मज्जनादि परिपीडित जन्तुओं का-।
धर्म स्वरूप अनपाय विबोधकारी-
द्वीप प्रतिष्ठ-पद उत्तम आसरा है ।।६६-६८।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।६६।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।६६।।

अण्णवंसि महोहंसि,
णावा विपरि-धावइ ।
जंसि गोयम-मारूढो,
कहं पारं गमिस्ससि?।।७०।।

तीव्र प्रवाहमय सागर में विरुद्ध
आशा विशेष गमनोन्मुख सत्तरी पै ।
आरूढ हो तुम चले शिव लब्धि हेतु
आश्चर्य पार गति लाभ न हो सकेगा? ।।७०।।

जा उ अस्साविणी णावा,
ण सा पारस्स गामिणी ।

नौका सछिद्र भव वीच सदा गिराती-
निश्छिद्र नांव हमको भव से वचाती ।

जा णिरस्साविणी णावा,
सा उ पारस्स गामिणी।।७१।।
णावा य इइ का वुत्ता,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।७२।।
सरीरमाहु णावत्ति,
जीवो वुच्चइ णाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो,
जं तरंति महेसिणो।।७३।।

नौका स्वरूप सबने यह देह माना-
मल्लाह जीव सम है कहते मनीषी ।।७१-७३।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।७४।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।७४।।

अंधयारे तमे घोरे,
चिट्ठंति पाणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं,
सव्व-लोगम्मि पाणिणं।।७५।।

है अन्धकार जग में वितत प्रकीर्ण-
प्राणी, जहाँ भटकते, निज रूप खोके ।
कैसे सुरक्षण विधी उनकी बनेंगी ?
आधार भूत भव में फिर कौन होगा ? ।।७५।।

उग्गओ विमलो भाणू,
सव्वलोय-प्पभंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं,
सव्व-लोयम्मि पाणिणं।।७६।।
भाणू य इइ के वुत्ते,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु,
गोयमो इण मब्बवी।।७७।।

संसार शान्त परिरक्षित जीव वृन्द-
सर्वज्ञ सर्वहित साधन सन्निविष्ट-।
भास्वान् जिनेन्द्र नित भास्कर के उदै से-
पूर्ण प्रकाश सुतरा सबको मिलेगा ।।७६-७८।।

उग्गओ खीण-संसारो,
सव्वण्णू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं,
सव्व लोयम्मि पाणिणं।।७८।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोवि संसओ मज्झं,
तं मे कहसु गोयमा!।।७६।।

प्रज्ञा-प्रकर्ष विभु गौतम है अनन्य
सन्देह दूर करता अपकारकारी ।
है एक और परिचर्चित चित्त शंका
सम्यक् समाहित बने विनिवेदना है ।।७६।।

सरीर-माणसे दुक्खे,
बज्झ-माणाण पाणिणं ।
खेमं सिव-मणाबाहं,
ठाणं किं मण्णसि मुणी?।।८०।।
अत्थि एगं धुवं ठाणं,
लोग्गम्मि दुरारुहं ।
जत्थ णत्थि जरा-मच्चू,
वाहिणो वेयणा तहा।।८१।।
ठाणे य इइ के वुत्ते,
केसी गोयम-मब्बवी ।
तओ केसिं बुवन्तं तु,
गोयमो इण-मब्बवी।।८२।।

वैविध्य दुःख परिपीडित मानवों को-
बाधा विहीन शिव मंगलकार है क्या ?
सुस्थान देव ! निरपाय हमें बताये-
सन्देह दूर करना द्रुत चाहता हूँ ।।८०-८२।।

णिव्वाणंति अबाहं-ति,
सिद्धी लोगग्ग-मेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं,
जं चरंति महेसिणो।।८३।।

लोकाग्र दिव्य परिशोभित है विशेष-
व्याधी जरा मरण वेदन शून्यता भृत् ।
सुस्थान है परम रम्य सदा द्वितीय-
संप्राप्ति, किन्तु उसकी वहुधा कठोर ।।८३-८४।।

तं ठाणं सासयं वासं,
लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जं संपत्ता ण सोयंति,
भवो-हन्तकरा मुणी।।८४।।

साहु गोयम ! पण्णा ते,
छिण्णो मे संसओ इमो ।
णमो ते संसयातीत,
सव्व-सुत्त महोयही।।८५।।
एवं तु संसए छिण्णे,
केसी घोर-परक्कमे ।
अभिवंदित्ता सिरसा,
गोयमं तु महायसं।।८६।।
पंच महव्वय धम्मं,
पडिवज्जइ भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि,
मग्गे तत्थ सुहावहे।।८७।।

शंका-प्रहीन बनके मुनि केशि ने भी-
भावाभिभूत बनके परिवन्दना की-।
आद्यान्त्य तीर्थकर दिष्ट महाव्रतों को-
स्वीकार के रत हुए, निज साधना में ।।८५-८७।।

केसी-गोयमओ णिच्चं,
तम्मि आसि समागमे ।
सुय सील समुक्करिसो,
महत्थऽत्थ विणिच्छओ।।८८।।

उद्यान तिन्दुक जहाँ मुनि इन्द्रभूति-
केशीकुमार परिशुद्ध मिले मनस्वी-।
शील श्रुतादि उपयोगि-महानतत्त्वों-
का मान्य निश्चय हुआ परमोपकारी ।।८८।।

तोसिया परिसा सव्वा,
सम्मग्गं समुवट्ठिया ।
संथुया ते पसीयंतु,
भयवं केसि-गोयमे।।८९।।

होती प्रसन्न, परिषद् सुन धर्म चर्चा-
सन्मार्ग में गमन की विधि धारणा से-।
केशीकुमार अरु गौतम की सहर्ष-
संगीति गान गुण से स्तुति की प्रकृष्ट ।।८९।।

२४ अध्ययन : प्रवचनमाता

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'प्रवचनमाता' (पवयणमाया) अथवा 'प्रवचनमात' है।
- शास्त्रो में यत्र–तत्र पॉच समितियों (ईर्या, भाषा, एषणा, अदाननिक्षेप और उत्सर्ग) और तीन गुप्तियों (मनोगुप्ति, वाग्गुप्ति और कायगुप्ति) को 'अष्टप्रवचनमाता' कहा गया है।
- प्रेरणा देती है माता, उन्मार्ग पर जीने से रोकती है, बालक के रक्षण और चारित्र–निर्माण का सतत ध्यान रखती है। ये आठों प्रवचनमाताएँ प्रत्येक प्रवृत्ति करते समय साधक की देखभाल करती हैं, सतत उपयोगपूर्वक सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है, असत्प्रवृत्ति में जाने से रोकती है, साधक की आत्मा का दुष्प्रवृत्तियों से रक्षण तथा उसके चारित्र (अशुभ से निवृत्ति एवं शुभ मे प्रवृत्ति) के विकास का ध्यान रखती है। इसलिए ये आठों प्रवचन (सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप) की, अथवा प्रवचन के आधारभूत संघ (श्रमणसंघ) की मातृ स्थानीय है।
- इन आठो में समस्त द्वादशांगरूप प्रवचन समा जाता है, इसलिए इन्हे 'प्रवचनमाता' भी कहा गया है।
- 'समिति' का अर्थ है–सम्यक्प्रवृत्ति, अर्थात् साधक की गति सम्यक् (विवेकपूर्वक) हो, भाषा सम्यक् (विवेक एवं संयम से युक्त) हो, सम्यक् एषणा (आहारादि का ग्रहण एवं उपयोग) हो, सम्यक् आदान–निक्षेप (लेना–रखना सावधानी से) हो और मलमूत्रादि का परिष्ठापन सम्यक् (उचित स्थान में विसर्जन) हो।
- गुप्ति का अर्थ है–असत् से या अशुभ से निवृत्ति, अर्थात् मन से अशुभ–असत् चिन्तन न करना, वचन से अशुभ या असत् भाषा न बोलना तथा काया से अशुभ या असत् व्यवहार एवं आचरण न करना।

- यह अध्ययन साध्वाचार का अनिवार्य अग है। प्रवचनमाताओ का पालन साधु के लिए नितान्त आवश्यक है। पांच समितियों एवं तीन गुप्तियों के पालन से पंचमहाव्रत सुरक्षित रह सकते है और साधक अपने परमलक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।
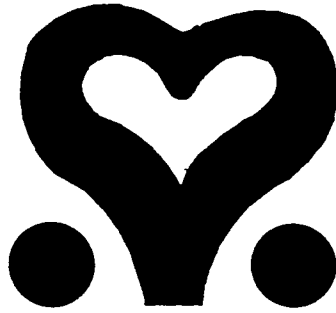
२४. प्रवचनमाता

अट्ठ पवयण-मायाओ,
समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ,
तओ गुत्तीउ आहिया।।१।।

दैदीप्यमान जिसमें परिशोभता है
आप्त-प्रणीत सकलांग समग्र रूप ।
ये अष्ट हैं प्रवचनात्मक मातृ-तत्त्व-
पांचों समित्यपर गुप्ति मिला त्रयी हैं ।।१।।

ईरिया-भासेसणा-दाणे,
उच्चारे समिई इय ।
मण-गुत्ती वय-गुत्ती,
काय-गुत्ती य अट्ठमा।।२।।
एयाओ अट्ठ समिईओ,
समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खायं,
मायं जत्थ उ पवयणं।।३।।

ईर्या समित्यपर भाषण संयुता है
है एषणा त्रितय शोधन कार्यकारी ।
आदान और परिथापन की विशेष-
ये पाँच हैं, समितियाँ जिन देव दिष्ट ।।२-३।।

आलम्बणेण कालेण,
मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारण परिसुद्धं,
संजए ईरियं रिए।।४।।
तत्थ आलम्बणं णाणं,
दंसणं चरणं तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते,
मग्गे उप्पह वज्जिए।।५।।

आलम्बना समय मार्ग सुयत्न रूप-
ये चार कारण सुसंयम के प्रसिद्ध ।
सद्ज्ञान दर्शन चरित्र सदावलम्ब
उत्पंथ का सुपरिवर्जन मार्ग शुद्ध ।।४-५।।

दव्वओ खेत्तओ चेव,
कालओ भावओ तहा ।
जयणा चउव्विहा वुत्ता,
तं मे कित्तयओ सुण।।६।।

चार प्रकाश यतना प्रभु ने बताई
द्रव्यादि काल गण की गणना हुई है ।
क्षेत्र प्रकर्ष अरु भाव सरूप भी है
शास्त्रानुसार जिनका परिबोध इष्ट ।।६।।

दव्वओ चक्खुसा पेहे,
जुगमित्तं च खेत्तओ ।
कालओ जाव रीइज्जा,
उवउत्ते य भावओ।।७।।

दृष्टि प्रसार युग मात्र चले, मुनीन्द्र
काल प्रशस्तपन की परिपालना हो ।
भाव स्वरूप उपयोग समेत जाने-
उन्मार्ग वर्जन करे, सविवेक जीव ।।७।।

इंदियत्थे विवज्जित्ता,
सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे,
उवउत्ते रियं रिए।।८।।

स्वाध्याय पंच विधि की परिवर्जना से
पंचेन्द्रिय स्ववश हो अनुकूलकारी ।
तल्लीन संगमन हो, यतना विशिष्ट
सम्यक् महत्त्व गति का उपयोग संग ।।८।।

कोहे माणे य मायाए,
लोभे य उवउत्त या ।
हासे भए मोहरिए,
विकहासु तहवे य।।९।।
एयाइं अट्ठं ठाणाइं,
परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले,
भासं भासिज्ज पण्णवं।।१०।।

क्रोधारिमान परिलोभ विशेष, माया-
हास्यादि भीति मुखरी त्रिकथा कथा है ।
वाचालता विषय में उपयोग युक्त-
हो विज्ञ वाच निरवद्य वदे विशुद्ध ।।९-१०।।

गवेसणाए गहणे य,
परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहि-सेज्जाए,
एए तिण्णि विसोहए।।११।।

आहार एषण सदा परिशुद्ध होवे
ग्राहैषणा उपधि में सहकारकारी-।
शय्या विशुद्ध परिभोग, लहे मुनीश
सम्यक् व्रतादि परिपालन लीनता हो ।।११।।

उग्गमुप्पायणं पढमे,
बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयम्मि चउक्कं,
विसोहेज्ज जयं जई।।१२।।

सोपान आद्य परिशोधन उद्गमादि-
उत्पाद दोष चय को, अनिवार्य जानो।
आहार के ग्रहण में उपकारकारी-
दूजा, तृतीय, नित दोष, चतुष्क शोधी ।।१२

ओहोवहो-वग्गहियं,
भण्डगं दुविहं मुणी ।
गिण्हंतो णिक्खिवंतो वा,
पउंजेज्ज इमं विहिं।।१३।।

सामान्य और निज वस्तु विशेष रूप
भाण्डादि के ग्रहण की यदि हो अपेक्षा।
आदान और परिरक्षण का प्रयोग-
दान्त प्रशान्त मुनि का अनिवार्य कार्य ।।१३।

चक्खुसा पडिलेहित्ता,
पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए णिक्खिवेज्जा वा,
दुहओ-वि समिए सया।।१४।।

यत्ना विशेष करके उन वस्तुओं का-
दृष्टि प्रसार करके अवधानता से-।
सम्यक् प्रमार्जन तथा प्रतिलेखना से-
लेवें, मुनीन्द्र निज की परिसाधना में ।।१४।।

उच्चारं पासवणं,
खेलं सिंघाण-जल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं,
अण्णं वावि तहाविहं।।१५।।

उच्चार खेल उपधीकफ और जल्ल-
सिंघान भोजन तथा द्रव मूत्र आदि ।
उत्सर्ग योग्य विधि से बन सावधान-
हो यत्नशील, परिथंडिल भूमि में ही ।।१५।।

अणावाय-मसंलोए,
अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवाय-मसंलोए,
आवाए चेव संलोए।।१६।।
अणावाय-मसंलोए,
परस्स-ऽणुव-घाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि,
अचिर-काल-कयम्मि य।।१७।।

विस्तीर्ण पास परिदूर अचित्त छिद्र-
संहीन सूक्ष्म परिजीव विहीन बीज ।
शून्य प्रदिष्ट वसुधा उपयुक्त मानो-
उत्सर्ग हेतु मल आदि सुसंयमी के ।।१६-१८।।

वित्थिण्णे दूर-मोगाढे,
णासण्णे बिल-वज्जिए ।
तस-पाण-बीय-रहिए,
उच्चा-राईणि वोसिरे।।१८।।

एयाओ पंच समिईओ,
समासेण वियाहिया ।
एत्तो य तओ गुत्तीओ,
वोच्छामि अणुपुव्वसो।।१९।।

आख्यान वीर कहते इन पांच का है
गुप्तित्रयी क्रम विशेष निरूपणा है ।
चित्तावधान करना परमोपयोगी
होवे सुपार भव कूप निपातना तो ।।१९।।

सच्चा तहवे मोसा य,
सच्चमोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य,
मण-गुत्तिओ चउव्विहा।।२०।।

सत्यामृषा अपर मिश्र मनोनुगुप्ति-
है लोक की व्यवहृति क्रम से चतुर्थी ।
चारों प्रकार परिभाषण छोड़ना हैं ।
दत्तावधान इनकी करके समीक्षा ।।२०।।

संरंभ समारंभे,
आरंभे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु,
णियत्तेज्ज जयं जई।।२१।।

यत्न प्रपन्न यति नित्य विमर्शपूर्व-
संरम्भ और विविधा कुलताप्रसक्त ।
आरम्भ लीन मन की विनिवर्तना भी
दान्त प्रशान्त विधि से करणीय माने ।।२१।।

सच्चा तहेव मोसा य,
सच्चमोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य,
वइगुत्ती चउव्विहा।।२२।।
संरंभ-समारंभे,
आरंभे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु,
णियत्तेज्ज जयं जई।।२३।।

सत्यामृषा वचन गुप्ति चतुष्टयी है
संरम्भ और विविधा कुलता प्रसक्त ।
आरम्भ लीन वच की विनिवर्तना की-
यत्न प्रयत्न यति तो वरणीय माने ।।२२-२३।।

ठाणे णिसीयणे चेव,
तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघण-पल्लंघणे,
इंदियाण य जुंजणे।।२४।।
संरंभ-समारंभे,
आरंभम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु,
णियत्तेज्ज जयं जई।।२५।।

स्थान प्रसीदन तथा त्वग वर्तनों में-
उल्लंघनादि परिलंघन में विशेष ।
शब्दादि में, गमन में, भ्रमणादि में भी
काया निवर्तन करे, वपु गुप्ति पालें ।।२४-२५।।

एयाओ पंच समिईओ,
चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती णियत्तणे वुत्ता,
असुभत्थेसु सव्वसो।।२६।।
एयाओ पवयण-माया,
जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्पं सव्व संसारा,
विप्पमुच्चइ पंडिए।।२७।।

ये पॉच है, समिति रूप चरित्र हेतु
गुप्तित्रयी अशुभ योग निवृत्तिकारी ।
जो पण्डित प्रवर हैं, वचनामृतों का-
सम्यक् प्रयोग करके ध्रुव मोक्ष पाते ।।२६-२७।।

२५ अध्ययन : यज्ञीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'यज्ञीय' (जन्नइज्ज) है। इसका मुख्य प्रतिपादित विषय यज्ञ से सम्बन्धित है।
- भगवान् महावीर के युग मे हिंसाप्रधान एव लौकिककामनामूलक अथवा स्वर्गादि कामनाओं से प्रेरित यज्ञो की धूम थी। यज्ञ का प्रधान सचालक यायाजी (याज्ञिक) वेदो का पाठक ब्राह्मण हुआ करता था। ये यज्ञ ब्राह्मणसस्कृति–परम्परागत होते थे।
- श्रमणसस्कृति तप, सयम, समत्व आदि में यतना करने को, त्यागप्रधान, नियमों को यज्ञ कहती थी। ऐसे यज्ञ को भावयज्ञ कहा जाता था। ब्राह्मणसस्कृति के प्रतिनिधि को ब्राह्मण और श्रमणसंस्कृति के प्रतिनिधि को श्रमण कहते थे। ब्राह्मणसंस्कृति उस समय कर्मकाण्ड पर जोर देती थी, जब कि श्रमणसंस्कृति सम्यग्ज्ञान, दर्शन, तप, त्याग, सयम आदि पर। श्रमणो के ज्ञान–दर्शन–चारित्र के कारण श्रमणसस्कृति का प्रभाव साधारण जनता पर सीधा पड़ता था।

२५. यज्ञीय

माहण-कुल संभूओ,
आसी विप्पो महायसो ।
जायाई जम्म-जण्णम्मि,
'जयघोसि त्ति' णामओ।।१।।

विप्र-प्रकर्ष कुल में जयघोष नाम
ज्ञान क्रिया वलित था करुणा प्रकृष्ट ।
जो हिंस्त्र कर्म यम रूप वियज्ञ में था
यायाजि कल्प अनुरक्त विधानुसारी ।।१।।

इंदिय-ग्गाम-णिग्गाही,
मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंते,
पत्तो वाणारसिं पुरिं।।२।।

जेता विशिष्ट वह था, निज इन्द्रियों का-
सन्मार्ग गामि मुनि धर्म पथानुयायी ।
वासानुवास विधि से, करते विहार-
वाराणसी नगर में, इक बार आये ।।२।।

वाणारसीए बहिया,
उज्जाणम्मि मणोरमे ।
फासुए सेज्ज-संथारे,
तत्थ वास-मुवागए।।३।।

वाराणसी नगर के उपकूल लग्न-
उद्यान था अनुपमेय मनोज्ञ रम्य-।
निर्दोषवास निज संयम साधनार्थ-
संस्तारकादि परिपूर्ण किया वहीं पै ।।३।।

अह तेणेव कालेणं,
पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति णामेणं,
जण्णं जयइ वेयवी।।४।।
अह से तत्थ अणगारे,
मासक्खमण पारणे ।

वेदाभिराम विधि से नित यज्ञकारी-
वेदान्त विद् विजय घोष जहाँ व्रती थे ।
भिक्षार्थ मास तप के परिपारणे को-
संयाम धाम जय-घोष गये, वहाँ पै ।।४-५।।

विजयघोसस्स जण्णम्मि,
भिक्खमट्ठा उवट्ठिए।।५।।

समुवट्ठियं तहिं सन्तं,
जायगो पडिसेहए ।
ण हु दाहामि ते भिक्खं,
भिक्खू ! जायाहि अण्णओ।।६।।

अन्यत्र भिक्ष फल हेतु सवेग जावों
यज्ञादि कर्तृहित अन्न रखे यहाँ हैं ।
मैं दूँ नहीं, अशन शुद्ध विशिष्ट पक्व-
कैसे किया विपुल साहस याचना का ? ।।६।।

जे य वेयविऊ विप्पा,
जण्णट्ठा य जे दिया ।
जोइसंग-विऊ जे य,
जे य धम्माणं पारगा।।७।।

वेद-प्रधान जिनका मन है प्रपूर्ण
यज्ञीय कर्म करना जिनको सुहाता ।
ज्योतिर्विधी सफलता जिनको मिली है
धर्मांग शास्त्र धन के परिपूर्ण वेत्ता ।।७।।

जे समत्था समुद्धत्तुं,
परमप्पाण-मेव य ।
तेसिं अण्णमिणं देयं,
भो भिक्खू! सव्व-कामियं।।८।।

होता समर्थ अपने पर को विकासी
भिक्षो ! लहे सब रसादि अभीष्ट अन्न-।
संसाधनापरक याजक के लिये है
लाया गया, अशन विप्र विशेष हेतु ।।८।।

सो तत्थ एवं पडिसिद्धो,
जायगेण महामुणी ।
ण वि रुट्ठो ण वि तुट्ठो,
उत्तमट्ठ-गवेसओ।।९।।

तत्रस्थ याचक निषेध किया गया तो-
क्रोधादि भाव परिमुक्त रहे, मुनीश ।
मोद प्रमोद मन में, न विशेष आया
आत्मार्थ शोध रमते, अपनी क्रिया में [illegible]

णण्णट्ठं पाणहेउं वा,
ण वि णिव्वाहणाय वा ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए,
इमं वयण-मब्बवी।।१०।।

ना अन्न हेतु, जल हेतु, नहीं स्वकीय
निर्वाह हेतु, परिमोचन के लिए [illegible]
बोले, यति प्रवर याचक, विप्र [illegible]
तू वेद का, मुख विशेष, न [illegible]

ण वि जाणासि वेयमुहं,
ण वि जण्णाण जं मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं जं च,
जं च धम्माण वा मुहं।।११।।

जे समत्था समुद्धत्तुं,
परमप्पाणमेव य ।
ण ते तुमं वियाणासि,
अह जाणासि तो भण।।१२।।

जो है, समर्थ निज अन्य सुरक्षणा में
तूँ जान भी न सकता, उनको समग्र ।
हो जानते, यदि सहर्ष, हमें बताओं
न्यूनातिनून परिबोध नहीं मिला है ।।१२।

तस्सऽक्खेव-पमोक्खं तु,
अचयन्तो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजली होउं,
पुच्छइ तं महामुणिं।।१३।।

प्रश्न प्रमोक्ष परितोष किया गया, न
आत्मीय वर्ग सँग ले, विनतांजली हो ।
सामर्थ्यहीन बनके, द्विज ने कहा यों-
सद्यः महामुनि हमें प्रतिबोध देवें ।।१३।।

वेयाणं च मुहं बूहि,
बूहि जण्णाण जं मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं बूहि,
बूहि धम्माण वा मुहं।।१४।।

क्या वेद, यज्ञ मुख है, कहिये रहस्य ?
नक्षत्र धर्म धन का मुख भी बतावें ?
ऐसा न बोध, मुझको सच बात भी है
बोधार्थ आत्महित में, विनिवेदना है ।।१४।।

जे समत्था समुद्धत्तुं,
परमप्पाण-मेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं,
साहू ! कहसु पुच्छिओ।।१५।।

उद्धार रूप निज अन्य, समग्र का है
शंका अशान्त मन में, वह कौन मेरे ?
प्रत्युत्तरादि इसका, कुछ चाहता हूँ
संपूर्ण देव करना, मन की अभीप्सा ।।१५।।

अग्गिहुत्त-मुहा वेया,
जण्णट्ठी वेयसा मुहं ।
णक्खत्ताणं मुहं चंदो,
धम्माणं कासवो मुहं।।१६।।

श्री वेद का मुख सदाशय अग्निहोत्र
यज्ञ-प्रकर्ष मुख है, निज यज्ञकर्त्ता ।
नक्षत्र का मुख विशेष शशी निरभ्र
धर्मस्थ काश्यप महामुनि आदिनाथ ।।१६।।

जहा चन्दं गहाईया,
चेट्ठंति पंजलीउडा ।
वंदमाणा णमंसंता,
उत्तमं मणहारिणो।।१७।।

सौन्दर्य पूर्ण शशि है नभ मध्य जैसे-
सस्नेह वन्दित सदा ग्रह मण्डली से-।
वैसे विशिष्ट ऋषभेन्दु समक्ष सारे
श्रद्धाभिभूत नत है, सुरता सदैव ।।१७।।

अजाणगा जण्णवाई,
विज्जा-माहण-संपया ।
मूढा सज्झाय-तवसा,
भासच्छण्णा इवऽग्गिणो।।१८।।

विद्या-प्रपूर्ण दिज की निज सम्पदा है
होता, न विज्ञ इससे यह अल्पता है ।
स्वाध्याय और तप का बहिरावृती है
भस्मावछादित सरूप यथा शिखी का ।।१८।।

जो लोए बम्भणो वुत्तो,
अग्गीव महिओ जहा ।
सया कुसल-संदिट्ठं,
तं वयं बूम माहणं।।१९।।

लोक-प्रसिद्ध पुरुषोक्त सरूप विप्र-
अग्नि प्रतुल्य परिपूज्य विशेष होता ।
वर्चस्व दीप्त जग में सब जानते हैं
ब्राह्मण्ययुक्त उसको हम मानते हैं ।।१९।।

जो ण सज्जइ आगन्तुं,
पव्वयंतो ण सोयइ ।
रमइ अज्ज-वयणम्मि,
तं वयं बूम माहणं।।२०।।

आत्मीय के मिलन में, जिनको न हर्ष
होता न शोक बिछुड़े, अणुमात्र को भी ।
अर्हद्-प्रणीत पथ पै चलते गुणज्ञ
ब्राह्मण्ययुक्त उनको, हम मानते हैं ।।२०।।

जायरूवं जहा-मट्ठं,
णिद्धंत-मल-पावगं ।
राग-द्दोस-भयाईयं,
तं वयं बूम माहणं।।२१।।

दग्ध प्रदग्ध मल शुद्ध समान हेम-
पूरे, कसे निकष पै, भय शुक्ति मुक्त-।
द्वेषादि राग परिहीन, तपो विशिष्ट-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते है ।।२१।।

तवस्सियं किसं दन्तं,
अवचिय-मंस-सोणियं ।
सुव्वयं पत्त-णिव्वाणं,
तं वयं बूम माहणं।।२२।।

जो हैं तपोधन तथा कृश शान्त दान्त-
मांसादि रक्त अपचै जिनमें विशेष-।
पूर्ण व्रती विमल चित्त सहिष्णु, मुक्त-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२२।।

तसपाणे वियाणेत्ता,
संगहेण य थावरे ।
जो ण हिंसइ तिविहेणं,
तं वयं बूम माहणं।।२३।।

षट्काय को समझ के, उनकी सुरक्षा-
हेतु प्रमुक्त मन वाचिक काय से भी-।
जो स्थावरादि तस की करता न हिंसा-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२३।।

कोहा वा जइ वा हासा,
लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं ण वयइ जो उ,
तं वयं बूम माहणं।।२४।।

जो क्रोध लोभ अथवा भय भाव से भी
मिथ्या प्ररूपण कभी करता नहीं हैं ।
कौत्कुच्य हास्य नट नाट्य सभाव शून्य
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२४।।

चित्तमंत-मचित्तं वा,
अप्पं वा जइ वा बहुं ।
ण गिण्हइ अदत्तं जे,
तं वयं बूम माहणं।।२५।।

जीवादियुक्त अथवा उनसे विहीन-
न्यूनातिरिक्त धन की करते, न चौर्य-।
लेते, सुवस्तु अपने हित याचना से-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२५।।

दिव्व-माणुस्स-तेरिच्छं,
जो ण सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं,
तं वयं बूम माहणं।।२६।।

तिर्यंच देव मनुजादिभवस्थ होके-
होते न मैथुन-सुसक्त विमर्श पूर्व-।
वाङ्मानसादि अरु काय सहायता से-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२६।।

जहा पोमं जले जायं,
णोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं,
तं वयं बूम माहणं।।२७।।

निर्लिप्त पंकज समान सदा विरक्त-
कामादिमुक्त जिनकी परिभावना है ।
सर्वांश शुद्ध चरतावलि चारु चारी-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२७।।

अलोलुयं मुहाजीविं,
अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं।।२८।।

निर्दोष भिक्षुक, रसादि विहीन वृत्ति-
त्यागी समग्र विभवादिक का मनस्वी-।
आसक्ति हीन जग से, धन धान्य शून्य-
ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२८।।

जहित्ता पुव्व-संजोगं,	संयोग मुक्त बन, जाति विशेष से हैं-
णाइ-संगे य बंधवे ।	बन्धुत्व बन्ध न, विविक्त रहे सदैव-।
जो ण सज्जइ भोगेसु,	आसक्ति दैन्य दुख पीन नहीं कदाचित्-
तं वयं बूम माहणं।।२६।।	ब्राह्मण्ययुक्त उनको हम मानते हैं ।।२६।।
पसुबंधा सव्व-वेया,	दुःशील जन्तु वध बन्धन भीतिकारी-
जट्ठं च पावकम्मुणा ।	यज्ञार्थ पाप परिकर्म सदा विहारी-।
ण तं तायंति दुस्सीलं,	का यज्ञ वेद विधि से कृत नैव रक्षी-
कम्माणि बलवंति हि।।३०।।	कर्म-प्रधान जग में सब मानते हैं ।।३०।।
ण वि मुंडिएण समणो,	श्रामण्य-युक्त नहि मुण्ड शिरस्क होता
ण ओंकारेण बम्भणो ।	ओंकार जाप करता, नहिं विप्र होता ।
ण मुणी रण्ण-वासेणं,	कान्तार वास विधि से मुनि भी न होता
कुस-चीरेण ण तावसो।।३१।।	त्वग् वल्कलादि परिधान तपी न होता ।।३१।।
समयाए समणो होइ,	साम्य स्वरूप शुचि साधक संयमी है
बम्भचेरेण बम्भणो ।	ब्रह्मत्व रूप धन है द्विज का अनूठा-।
णाणेण य मुणी होइ,	ज्ञान-प्रधान भव में मुनि रूपता है-
तवेण होइ तावसो।।३२।।	बाह्यान्तरादि तप से तपसी विशिष्ट ।।३२।।
कम्मुणा बम्भणो होइ,	कर्मानुसार बनता द्विज है मनुष्य-
कम्मुणा होइ खत्तिओ ।	क्षात्र स्वरूप मिलता नित कर्म से ही-।
वइसो कम्मुणा होइ,	वैश्य स्थिती सुलभ कर्म विशेष से है-
सुद्दो हवइ कम्मुणा।।३३।।	शूद्रत्व की परिणती बस कर्म से ही ।।३३।।
एए पाउकरे बुद्धे,	तत्त्व प्ररूपण किया अरिहन्त ने हैं
जेहिं होइ सिणायओ ।	होता विशिष्ट इनसे परिपूर्ण जीव ।
सव्वकम्म विणिम्मुक्कं,	होते सुसाधक जभी परिकर्म मुक्त-
तं वयं बूम माहणं।।३४।।	ब्राह्मण्ययुक्त उनको, हम मानते हैं ।।३४।।

एवं गुण समाउत्ता,	ऐसे समाधिपन से द्विज रूपता में-
जे भवंति दिओत्तमा ।	अध्यात्म साधन जहाँ रहता सदैव ।
ते समत्था समुद्धत्तुं,	उद्धारशील बनते, निज अन्य के भी-
परमप्पाण-मेव य।।३५।।	सामर्थ्य शैव सुख का, वरते अवश्य ।।३५।।
एवं तु संसए छिण्णे,	शंका समूल परिनष्ट हुई विशेष-
विजयघोसे य माहणे ।	स्वीकार की, विजय ने, जय घोष वाणी ।
समुदाय तओ तं तु,	संतुष्ट हो, विनत भाव सहर्ष बोला-
जयघोसं महामुणिं।।३६।।	सम्पूर्ण विप्र, धन का उपदेश पाया ।।३६-३७।।
तुट्ठे य विजयघोसे,	
इण-मुदाहु कयंजली ।	
माहणत्तं जहाभूयं,	
सुट्ठु मे उवदंसियं।।३७।।	
तुब्भे जइया जण्णाणं,	यज्ञ स्वरूप तुमने परिपूर्ण जाना-
तुब्भे वेयविऊ विऊ ।	वेदांग के फलित अर्थ हमें बताये ।
जोइ-संग-विऊ तुब्भे,	दैवज्ञ बोध तुमसे, न विलुप्त भी है
तुब्भे धम्माण पारगा।।३८।।	धर्मादि वस्तु धन के तुम पारगामी ।।३८।।
तुब्भे समत्था समुद्धत्तुं,	उद्धार में स्वपर के तुम हो समर्थ-
परेमप्पाण-मेव य ।	आओ, सहर्ष हमपै उपकारकारी-।
तमणुग्गहं करेहम्हं,	भिक्षा गृहीत करके, हम पै दया हो-
भिक्खेणं भिक्खू उत्तमा।।३९।।	सौभाग्यशील करना, महती कृपा से ।।३९।।
ण कज्जं मज्झ भिक्खेण,	भिक्षा-प्रयोजन नहीं द्विज शीघ्र आओ
खिप्पं णिक्खमसू-दिया ।	दुःखार्तरूप भय से, तुम दूर जाओ !
मा भमिहिसि भयावट्टे,	संसार में भ्रमण के अवरोध हेतु-
घोरे संसार-सागरे।।४०।।	श्रामण्य में विहरना अनुकूल होगा ।।४०।।

उवलेवो होइ भोगेसु,
अभोगी णोवलिप्पइ ।
भोगी भमइ संसारे,
अभोगी विप्पमुच्चई।।४१।।

कर्मोपलिप्त जग के परिभोग सारे-
भोगा विरक्ति उनसे, नहि युक्त होती ।
भोगी करे, भ्रमण संसृति मध्य पाती
भोग प्रहीन उनसे, परिमुक्त होता ।।४१।।

उल्लो सुक्को य दो छूढा,
गोलया मट्टिया-मया ।
दोवि आवडिया कुड्डे
जो उल्लो सोऽत्थ लग्गइ।।४२।।

आर्द्राक्त शुष्क परिगोलक मृत्तिका के-
क्षिप्त प्रक्षिप्त करते जिनको विशेष-।
भित्ति प्रदेश पर आर्द्र हुआ प्रलिप्त-
नीचे गिरा, गगन से परिशुष्क जो था ।।४२।।

एवं लग्गंति दुम्मेहा,
जे णरा काम-लालसा ।
विरत्ता उ ण लग्गंति,
जहा से सुक्क गोलए।।४३।।

दुर्बुद्धिशील पड़ता, परिमोह में हैं
आसक्त भाव उसमें, सब देखते हैं ।
वैराग्य युक्त भव में, न कदापि लिप्त
होता प्रशुष्क परिगोलक के समान ।।४३।।

एवं से विजयघोसे,
जयघोसस्स अंतिए ।
अणगारस्स णिक्खंतो,
धम्मं सोच्चा अणुत्तरं।।४४।।

सम्यक्व्रती विजय ने, जयघोष से है-
आप्त प्रणीत पथ का शुभ भाव पाया ।
दीक्षा गृहीत करके, मुनि से सहर्ष-
प्राप्तव्य की, सुगम लब्धि हुई विचित्र ।।४४।।

खवित्ता पुव्व कम्माइं,
संजमेण तवेण य ।
जयघोस विजयघोसा,
सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं।।४५।।

संप्राप्ति से निज तपश्चरण क्रिया की
सम्यक्त्व युक्त परिसंयम भावना से-।
श्रामण्य युक्त जयघोष तथा विजै ने-
पाया, विमुक्ति पद, कर्म निरासना से ।।४५।।
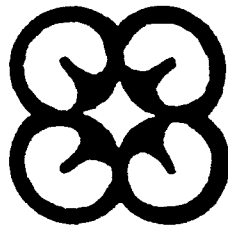
२६ अध्ययन : समाचारी

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'समाचारी' (सामायारी) है।
- इसमे साधुजीवन की उस व्यवस्था एवं चर्या का वर्णन है, जिससे साधु परस्पर सम्यक् व्यवहार, आचरण और कर्त्तव्य का यथार्थ पालन करके समस्त शारीरिक–मानसिक दु:खों से मुक्त एव सिद्ध, बुद्ध हो सके।
- आचार के दो अंग है–व्रतात्मक और व्यवहारात्मक। सघीयजीवन को सुव्यवस्थित ढंग से यापन करने के लिए न तो दूसरों के प्रति उदासीनता, रुक्षता एवं अनुत्तरदायिता होनी चाहिए और न अपने या दूसरों के जीवन (शरीर–इन्द्रिय, मन आदि) के प्रति लापरवाही, उपेक्षा या आसक्ति होनी चाहिए। इसलिए स्थविरकल्पी साधु के जीवन मे व्रतात्मक आचार की तरह व्यवहारात्मक आचार भी आवश्यक है। जिस धर्मतीर्थ (संघ) में व्यवहारात्मक आचार का सम्यक् पालन होता है, उसकी एकता अखण्ड रहती है, वह दीर्घजीवी होता है और ऐसा धर्मतीर्थ साधु–साध्वियो को तथा श्रावक–श्राविकाओं को संसारसागर से तारने में समर्थ होता है।
- प्रस्तुत अध्ययन में व्यवहारात्मक शिष्टजनाचरित 10 प्रकार की ओघ सामाचारी का वर्णन है। ओघसामाचारी के 10 प्रकार ये है – (1) आवश्यकी, (2) नैषेधिकी, (3) आपृच्छना, (4) प्रतिपृच्छना, (5) छन्दना, (6) इच्छाकार, (7) मिथ्याकार, (8) तथाकार, (9) अभ्युत्थान और (10) उपसम्पदा।
- यह साधु–सामाचारी शारीरिक मानसिक शान्ति, व्यवस्था एवं स्वस्थता के लिए अत्यन्त लाभदायक है। यथा (1–2) आवश्यकी और नैषेधिकी से निष्प्रयोजन गमनागमन पर नियन्त्रण का अभ्यास होता है, (3–4) आपृच्छा और प्रतिपृच्छा से

श्रमशील और दूसरो के लिए उपयोगी बनने की भावना पनपती है, (5) इच्छाकार से दूसरों के अनुग्रह का सहर्ष स्वीकार तथा स्वच्छन्दता में प्रतिरोध आता है, (6) मिथ्याकार से पापों के प्रति जागृति बढती है, (7) तथाकार से हठाग्रहवृत्ति छूटती है और गम्भीरता एवं विचारशीलता पनपती है, (8) छन्दना से अतिथिसत्कार की प्रवृत्ति बढ़ती है, (9) अभ्युत्थान से गुरुजनभक्ति एवं गुरुता बढ़ती है एवं (10) उपसम्पदा से परस्पर ज्ञानादि के आदान–प्रदान से उनकी वृद्धि होती है।

२६. समाचारी

सामायारिं पवक्खामि,
सव्व-दुक्ख विमोक्खणिं ।
जं चरित्ताण णिग्गंथा,
तिण्णा संसार-सागरं।।१।।

दुःखार्त मुक्त बनते परिपालना से-
निर्ग्रन्थ भाव परिशुद्ध रहा क्रिया में ।
संसार के पतन में अवरोध होता
ऐसे समाचरण को कहता यहाँ हूँ ।।१।।

पढमा आवस्सिया णाम,
बिइया य णिसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया,
चउत्थी पडिपुच्छणा।।२।।
पंचमी छंदणा णाम,
इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छाकारो उ,
तहक्कारो य अट्ठमो।।३।।
अब्भुट्ठाणं य णवमं,
दसमी उवसंपया ।
एसा दसंगा साहूणं,
सामायारी पवेइया।।४।।

छन्द-धनाक्षरी
आवश्यकी नैषेधिकी अरु प्रतिपृच्छना है
छन्दना है, इच्छाकार, मुनिमनहारी है ।
मिथ्याकार, तथाकार, उपदेश मानता है
अभ्युत्थान अरु उपसम्पदा सुखारी है ।
परिभाषा जाननी है, शास्त्र बात माननी है
अणगार जीवन की, साधु बलिहारी है ।
पालना है, अनिवार्य, आत्म रूप रक्षा हेतु
विमल दशांग रूप साधु समाचारी है ।।२-४।।

गमणे आवस्सियं कुज्जा,
ठाणे कुज्जा णिसीहियं ।

वाहर स्वस्थान से निकलते आवासस्सिय करे
स्थान में, प्रवेशते निस्सिहियं कहा करे ।

आपुच्छणा सयं-करणे,
परकरणे पडिपुच्छणा।।५।।
छंदणा दव्व-जाएणं,
इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य णिंदाए,
तहक्कारो पडिस्सुए।।६।।

निज काज हेतु राय, गुरु की आपृच्छना है
पर काज हेतु, प्रतिपृच्छना लिया करे ।
स्वीकृत द्रव्यार्थ, गुरु, आमन्त्रण छन्दना है
उपकार करे, स्वार्थ बिनती किया करे ।
इच्छाकार, समाचारी, दोष के निवृत्त हेतु
आत्मनिंदा मिथ्याकार, सतत दिया करे ।।५-६।।

अब्भुट्ठाण गुरुपूया,
अच्छणे उवसंपया ।
एवं दु-पंच-संजुत्ता,
सामायारी पवेइया।।७।।

गुरु उपदेश माने, तथाकार समाचारी
छक् छक् प्रेम प्याला, भर के पिया करे ।
गुरुजन पूजा हेतु, स्थित होना अभ्युत्थान
सावधान चूक बिना चौकस किया करे ।
सामाचारी उपसम्पदा में, अन्य गुरु पार्श्व
स्वकीय विशिष्ट कार्य हेतु से जिया करे ।
अनुकूल शास्त्र से प्ररूपित दशांग ये हैं
आत्मा के विकास हेतु मानस दिया करें ।।७।।

छन्द-बसन्ततिलका

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए,
आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भण्डयं पडिलेहित्ता,
वंदित्ता य तओ गुरुं।।८।।

सूर्यादि के उदय पै निज पात्रकादि-
तुर्यादि भाग नियत प्रतिलेखना को-।
सम्पूर्ण हो चरण वन्दन संग पूछे-
आदेश शीघ्र मुझको, अब देव ! देवें ।।८।।

पुच्छिज्ज पंजलिउडो,
किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं णिओइउं भंते!,
वेयावच्चे व सज्झाए।।९।।
वेयावच्चे णिउत्तेणं,
कायव्वं अगिलायओ ।

स्वाध्याय में रत रहूँ, कहिये भदन्त !
सेवादि तत्पर बनूं अथवा यहाँ पै ।
स्वाध्याय के हित हुई, यदि देशना है-
ग्लान्यादि दोष तज के, उसको निभाले ।।९-१०।।

सज्झाए वा णिउत्तेणं,
सव्वदुक्ख विमोक्खणे।।१०।।

दिवसस्स चउरो भागे,
भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा,
दिणभागेसु चउसु वि।।११।।

दक्षाग्र भिक्षु दिन के, कर चार भाग-
निर्दिष्ट में निरत हो, रस से सदैव-।
स्वाध्याय दिव्य गुण की, करके मनोज्ञ-
आराधना विजय को, सफली बनावें ।।११।।

पढमं पोरिसि सज्झायं,
बीयं झाणं झियायइ ।
तईयाए भिक्खायरियं,
पुणो चउत्थीइ सज्झायं।।१२।।

स्वाध्याय कर्म करना, पहले समोद-
ध्यान क्रिया द्वितय की, परिसाधना है।
भिक्षाचरी त्रितय में, कर एषणा से-
स्वाध्याय ही फिर करे, शुभ साधना है ।।१२।।

आसाढे मासे दुपया,
पोसे मासे चउप्पया ।
चित्तासोएसु मासेसु,
तिप्पया हवइ पोरिसी।।१३।।

आषाढ़ मास दुपदा, क्ल पौरुसी है
आ पौष वृद्धि चय, चारु चतुष्पदी है।
चैत्राश्विनादि मधि है, त्रिपदी स्वरूपा-
सम्यक् स्वरूप इनका, समझे, मुनीन्द्र ।।१३।।

अंगुलं सत्तरत्तेणं,
पक्खेणं य दुरंगुलं ।
वड्ढए हायए वावि,
मासेणं चउरंगुलं।।१४।।
आसाढ-बहुल-पक्खे,
भद्दवए कत्तिए य पोसे य ।
फग्गुण-वइसाहेसु य,
बोद्धव्वा ओमरत्ताओ।।१५।।
जेट्ठामूले आसाढ-सावणे,
छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा ।

छन्द-धनाक्षरी
पुरुष प्रमाण पौरुषी का, रूप नियत है
चौबीस अंगुल शंकु लेके, नाप पारे है।
दक्षिण उत्तर एन, काल का विभाग होत
प्रथम में वृद्धि हास, अन्य में सुधारे है।
आषाढ़ पूनम दिन, चौबीस अंगुल शंकु
षट्मास मध्य वाने, दुगुन उचारे है ।
परिज्ञान पौरुषी को, साधुजन राखे नित
या ही पौरुषी रहस्य, बुधजन सारे है ।।१४-१६।।

अट्ठहिं बीय-तइयम्मि,
तइए दस अट्ठहिं चउत्थे।।१६।।

बसन्ततिलका

रइंवि चउरो भागे,
भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा,
राइभाएसु चउसुऽवि।।१७।।

उत्सर्ग रात्रि कृति को, करणार्थ साधु
चारों विभाग उसका, करके प्रसन्न ।
स्वाध्याय को प्रथम में, करणीय माने
ध्यानस्थ संयम करे, नित दूसरे में ।।१७।।

पढमं पोरिसि सज्झायं,
बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए णिद्द-मोक्खं तु,
चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं।।१८।।
जं णेइ जया रइं,
णक्खत्तं तम्मि णह चउब्भाए ।
सम्पत्ते विरमेज्जा,
सज्झायं पओस कालम्मि।।१६।।
तम्मेव य णक्खत्ते,
गयण-चउब्भाग-सावसेसम्मि ।
वेरत्तियंपि कालं,
पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा।।२०।।

निद्रा लहे, त्रितय में, निज लाभकारी
चौथा प्रवास पठनार्थ, अवश्य माने ।
किन्तु प्रदोष, रजनीमुख में, पढ़े न
विद्यार्थ हेतु, नियमादिक पालना हो ।।१८-२०।।

पुव्वि-ल्लम्मि चउब्भाए,
पडिलेहित्ताण भंडयं ।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं,
कुज्जा दुक्ख-विमोक्खणं।।२१।।

है दैन्यकृत्य अनिवार्य विशेष रूप-
पात्रादि का, सुपरिलेखन कार्य पश्चात्-।
आचार्य वन्दन करे, विनयानती हो-
स्वाध्याय हो, दुख निवृत्ति सहायकारी ।।२१।।

पोरिसीए चउब्भाए,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।

अर्धार्ध पौरुष गये, गुरु वन्दन हो
कालादि का, प्रति-निरीक्षण के विना ही ।

अपडिक्कमित्ता कालस्स,
भायणं पडिलेहए।।२२।।

संभाजनादि परिलेखन बाद में हो
पाले, विशेष, दिनकृत्य सदा तपस्वी ।।२२।।

मुहपत्तिं पडिलेहित्ता,
पडिलेहिज्ज गोच्छगं ।
गोच्छग-लइयंगुलिओ,
वत्थाइं पडिलेहए।।२३।।

जाने, सदैव परिलेखन के, विधी को
पूर्वम् विलेखन करे मुखवस्त्रिका का ।
पश्चात् रजोहरण की प्रतिलेखना हो
सद्यः विधान उसका वसनादि का है ।।२३।।

उड्ढं थिरं अतुरियं,
पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे,
तइयं च पुणो पमज्जिज्जा।।२४।।

सर्वत्र पूर्व परिलेखन के, विधी को-
हो, एक रूप उकडू थिर आसनों से ।
वस्त्रादि ऊपर उठा, थिरता लिये ही
दृष्टि-प्रचार झटके, बिन वस्त्र देखे ।।२४।।

अणच्चावियं अवलियं,
अणाणुबंधिं अमोसलिं चेव ।
छ-प्पुरिमा णव खोडा,
पाणी पाणि-विसोहणं।।२५।।

वस्त्रादिकाय, परिनर्तन को बचावे
मोड़े न, वास परिदृष्ट रहे समक्ष ।
संस्पृष्ट भित्ति चय से, न कदापि होवे
संसक्त जीव परिलक्षित हो हटाये ।।२५।।

छन्द-धनाक्षरी

प्रतिलेखना के दोष :-

आरभडा सम्मद्दा,
वज्जेयव्वा य मोसली तइया ।
पप्फोडणा चउत्थी,
विक्खिता वेइया छट्ठी।।२६।।
पसिढिल-पलम्ब-लोला,
एगा-मोसा अणेग-रूव धुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं,
संकिय-गणणोवगं कुज्जा।।२७।।

तेरा दोष होते प्रतिलेखन के त्यजनीय
आरभटा विपरीत सम्मर्द तजि दीजै ।
मोसली प्रस्फोटना विक्षिप्ता वेदिका को छोड़े
विधि रूप जान के भाव, भरि भजि लीजे ।
शिथिल प्रलम्ब लोल, एक मर्श दशवी है
दोष हानिकारक है, सुधारस समी जे ।
विविध विधूनना प्रमाण में, प्रमाद कार्य
गणनोपगणना सव हेतु, कानि कीजे ।।२६-२७।।

अणूणाइ रित्त-पडिलेहा,
अविवच्चासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं,
सेसाणि उ अप्पसत्थाइं।।२८।।

प्रस्फोटना न कम नाधिक रूप से है
सम्यक् प्रमार्जन विधान गृहीत माना ।
अन्यून औ अविपरीत विभेद तीन
अष्ट प्रभेद मधि आद्य विकल्प शुद्ध ।।२८।।

पडिलेहणं कुणंतो,
मिहो कहं कुणई जणवय-कहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं,
वाएइ सयं पडिच्छइ वा।।२६।।

वार्त्ता करे न परिलेखन मध्य काल
देश प्रदेश विकथा परिवर्जना है ।
अध्यापनाध्ययन भी करना न युक्त
एतत्सुकृत्य पचखान नहीं करावे ।।२६।।

पुढवी-आउक्काए,
तेऊ-वाऊ-वणस्सइ तसाणं ।
पडिलेहणा-पमत्तो,
छण्हं वि विराहओ होइ।।३०।।

पूर्वोक्त कार्य यदि मत्त मुनी करे तो
पृथ्व्यप् सुतेजस वनस्पति वायुकाय-।
त्रसकायकादि परिरूप विभाजनात्त
षट्काय का नियत हिंसक है अवश्य ।।३०।।

पुढवी-आउक्काए,
तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणा-आउत्तो,
छण्हं संखओ होइ।।३१।।
तइयाए पोरिसीए,
भत्तं पाणं गवेसए ।
छण्हं अण्ण-तराए,
कारणम्मि समुट्ठिए।।३२।।

सुव्यक्त कार्य जिसमें मुनि अप्रमत्त
पृथ्वी सुतेजस, वनस्पति, वायुकाय-।
सारे त्रसादि परिमुक्त बने, तपस्वी-
षट्कायिकादि सबकी परिपालना है ।।३१-३२।।

वेयण[1] वेयावच्चे
इरियट्ठाए[3] य संजमट्ठाए[4] ।
तह पाणवत्तियाए[5],
छट्ठं पुण धम्मचिंताए[6] ।।३३।।

क्षुद् वेदना शमन हेतु, तथा सुसेवा-
ईर्यादि पालन कृते, निज संयमार्थ-।
प्राण प्ररक्षण, निदान तथा स्वधर्म-
निर्दोष भक्त, परिपानक याचना हो ।

णिग्गंथो धिइमंतो,
णिग्गंथी वि ण करेज्ज छहिं चेव ।
ठाणेहिं उ इमेहिं,
अणइक्क-मणाइ से होइ।।३४।।
आयंके उवसग्गे,
तितिक्खया बम्भचेर-गुत्तीसु ।
पाणिदया तव-हेउं,
सरीर-वोच्छेयणट्ठाए।।३५।।

रोगार्त और उपसर्ग समृद्धि में, भी-
गुप्त्यर्थ ब्रह्मचर जीव दया हितार्थ-।
बाह्यान्तरादि तप कार्य, विलोप हेतु-
षट् हेतु भक्त, चय की, न करे गवेषा ।।३४-३५।।

अवसेसं भण्डगं गिज्झा,
चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्ध जोयणाओ,
विहारं विहरए मुणी।।३६।।

पात्रादि का सुपरिलेखन चक्षु से हो-
अर्धादि योजन चले, परिभक्त हेतु-।
वासादि सन्निधि मिले, न हि गोचरी हो-
पूर्वोक्त दूर तक ही, मुनि कल्प रूप ।।३६।।

चउत्थीए पोरिसीए,
णिक्खिवित्ताण भायणं ।
सज्झायं च तओ कुज्जा,
सव्व-भाव-विभावणं।।३७।।

तुर्यादिकाल परिलेखन पात्र बाँधे
आत्मार्थ चिन्तन करे, शुभ भावना से ।
जीवादि भाव परिरक्षक, भक्ति पूर्ण
स्वाध्याय में, सुपरिमज्जित हो सदैव ।।३७।।

पोरिसीए चउब्भाए,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स,
सेज्जं तु पडिलेहए।।३८।।

चौथे विभाग करके, गुरु वन्दना को-
उत्सर्ग काय विधि को करते विधिज्ञ ।
शय्यादि का नित करे परिलेखना भी
ये कृत्य हैं, नियत, अन्तिम पौरुषी का ।।३८।।

पासवणुच्चार भूमिं च,
पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा,
सव्व-दुक्ख-विमोक्खणं।।३९।।

यत्न प्रयत्न करके, मुनि साधना में
उच्चार पस्रवन के हित, लेखना हो ।
पश्चात् समग्र दुख से, विनिमुक्त साधु-
उत्सर्ग काय विधि का, विचरे विधान ।।३९।।

देवसियं य अइयारं,
चिंतिज्जा अणुपुव्वसो ।
णाणे य दंसणे चेव,
चरित्तम्मि तहेव य।।४०।।

ज्ञानादि दर्शन चरित्र समाधिबद्ध
दोषादि कर्म अपना, गुरु के समक्ष-।
आलोचना विधि करे, शुभ भावना से-
संचिन्तना, फिर करे, परिपूरणार्थ ।।४०।।

पारिय-काउस्सग्गो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
देवसियं तु अइयारं,
आलोएज्ज जहक्कम्मं।।४१।।

उत्सर्ग पूर्ण करके, गुरु वन्दना को-
संशुद्ध भाव धरके, अतिचारणा की-।
आलोचना मुनि करे, जिन पास में हो
जो आत्म कार्य हित है, अनिवार्य रूप ।।४१।।

पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा,
सव्व-दुक्ख-विमोक्खणं।।४२।।

आत्म प्रतिक्रमण शल्य विमुक्तकारी
सम्यक्-प्रधानपन से, गुरु वन्दना हो-।
बाधा विहीन दुख मुक्त, सुलाभकारी-
उत्सर्ग कायरत हो, सुसमाधिवन्त ।।४२।।

पारिय-काउस्सग्गो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
थुइ-मंगलं च काऊणं,
कालं संपडिलेहए।।४३।।

उत्सर्गकाय फिर पार करे, मुनीश
हो वन्दना, चरण में, परिकामना से-।
सिद्ध-स्तुति प्रबल भाव, विशेष से है
कालादि में फिर करे, प्रतिलेखना को ।।४३।।

पढमं पोरिसि सज्झायं,
बिइयं झाणं झियायइ ।
तइयाए णिद्दमोक्खं तु,
सज्झायं तु चउत्थिए।।४४।।

स्वाध्याय हो, प्रथम में, निज बोध हेतु
ध्यानादि कार्य करना, तब दूसरे में ।
निद्रा तृतीय परियाम लहे अवश्य
स्वाध्याय ही फिर करे, प्रहरे तुरीय ।।४४।।

पोरिसीए चउत्थीए,
कालं तु पडिलेहिया ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा,
अबोहंतो असंजए।।४५।।

तुर्यादि काल पहले, प्रतिलेखना हो
स्वाध्याय में निरत हो, शुभ साधना से ।
योगी असंयत जगा, न तजे विवेक
आराधना फिर करे, धृति भावना से ।।४५।।

पोरिसीए चउब्भाए,
वंदिऊण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स,
कालं तु पडिलेहए।।४६।।

तुर्यादि काल जिसका, कर भाग चौथा
हो वन्दना, गुरु समक्ष, विनीतकारी ।
काल प्रतिक्रमण भी, करके मनोज्ञ
कालादि की फिर करे, प्रतिलेखना को ।।४६।।

आगए काय-वोस्सग्गे,
सव्व-दुक्ख-विमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा,
सव्व-दुक्ख-विमोक्खणं।।४७।।

दुःख प्रकर्ष परिमोचक भव्य रूप
उत्सर्ग के समय में, परिदुःख मुक्त ।
उत्सर्ग कर्म वृति को, करके गुणज्ञ
हो मुक्त, बुद्ध, परिमुक्त, विनम्र साधु ।।४७।।

राइयं च अइयारं,
चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
णाणंमि दंसणंमि य,
चरित्तंमि तवंमि य।।४८।।

रात्री विशेष जिसमें, अनुचिन्तना हो
संबोध दर्शन चरित्र विशेष बद्ध ।
हो दोष और अतिचार लगे, कदापि
तो चिन्तना सहित ही, करना समीक्षा ।।४८।।

पारिय-काउस्सग्गो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अईयारं,
आलोएज्ज जहक्कम्मं।।४९।।

उत्सर्ग पूर्ण करके, गुरु पादपद्म-
भक्ति-प्रधान विनयी, कर वन्दना को-।
रात्रि-प्रदोष जिसकी, अतिचारणा की-
आलोचना फिर करे, उनके समक्ष ।।४९।।

पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा,
सव्वं-दुक्ख-विमोक्खणं।।५०।।

सम्यक् प्रतिक्रमित हो, परिमुक्त शल्य
हो वन्दना, चरण में सुसमाधिवन्त ।
बाह्य क्रियादि परिमोचन, शोधदायी
उत्सर्ग कर्म करना, मुनि योग्य माना ।।५०।।

किं तवं पडिवज्जामि,
एवं तत्थ विचिंतए ।
काउस्सग्गं तु पारित्ता,
करिज्जा जिणसंथवं।।५१।।

उत्सर्ग काय जिसमें, अनुचिन्तना हो
"मैं कौन-सा तप विशेष करूँ मनोज्ञ" ।
उत्सर्ग मुक्त बनके, गुरु वन्दना से-
स्वीकार, ताप तप को, स्तुति गान गाए ।।५१-५२।।

पारिय-काउस्सग्गो,
वंदित्ताण तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जित्ता,
कुज्जा सिद्धाण संथवं।।५२।।

एसा सामायारी,
समासेण वियाहिया ।
जं चरित्ता बहू जीवा,
तिण्णा संसार-सागरं।।५३।।

संक्षिप्त आचरण की, विधि को बनाये
ऐसे समाचरण जो, परिबोध भव्य-।
पाले, विवेकपन से, तप रूप में वो
संसार तीर्ण करता, भव से गुणज्ञ ।।५३।।
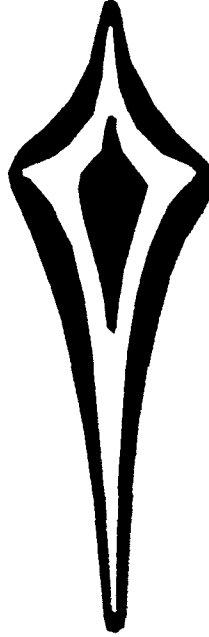
२७ अध्ययन : खलुंकीय

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम है–खलुंकीय (खलुंकिज्ज)।
- खलुंक का अर्थ है–दुष्ट बैल। उसकी उद्दण्ड एवं अविनीत शिष्य से उपमा दी गई और ऐसे शिष्य की दुर्विनीतता का चित्रण किया गया है।
- अनुशासन और विनय ये दो रत्नत्रय की ग्रहणशिक्षा और आसेवनाशिक्षा के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनके बिना साधक ज्ञानादि में खोखला रह जाता है, उसके चारित्र की नीव सुदृढ नहीं होती। अनुशासनविहीन एवं दुर्विनीत शिष्य या तो उच्छृंखल एवं स्वच्छन्द हो जाता है, अथवा वह संयम से ही भ्रष्ट हो जाता है।
- अनुशासनहीन दुर्विनीत शिष्य भी खलुंक (दुष्ट बैल) की तरह संघ रूपी शकट और उसके स्वामी संघाचार्य की हानि करता है। थोडी–सी प्रतिकूलता या प्रेरणा का ताप आते ही संत्रस्त हो जाता है। जुए और चाबुक की तरह वह महाव्रत–भार और अंकुश को भंग कर डालता है और विपथगामी हो जाता है।
- अविनीत शिष्य खलुंक–सा दुष्ट, दंशमशक के समान कष्टदायक, जौंक की तरह गुरु के दोष ग्रहण करने वाला, वृश्चिक की तरह वचन–कंटकों से बीधने वाला, असहिष्णु, आलसी और गुरुकथन न मानने वाला होता है।
- वह गुरु का प्रत्यनीक, चारित्र में दोष लगाने वाला, असमाधि उत्पन्न करने वाला और कलहकारी होता है।
- वह चुगलखोर, दूसरों को सताने वाला, मर्म प्रकट करने वाला, दूसरों का तिरस्कार करने वाला, श्रमणधर्म के पालन में खिन्न और मायावी होता है।
- आत्मार्थी मुनि के लिए यही कर्त्तव्य है कि समाधि और साधना समूह से भंग होती हो या कोई निपुण या गुण में अधिक या सम सहायक न मिले तो अपने सयम की रक्षा करता हुए एकाकी रह कर साधना करे। अपने जीवन में पापवासना, विषमता, आसक्ति आदि रूप स्थान को न आने दे।

२७. खलुंकीय

थेरे गणहरे गग्गे,
मुणी आसि विसारए ।
आइण्णे गणि-भावम्मि,
समाहिं पडिसंधए।।१।।

उद्भूत गर्ग कुल में जगती प्रसिद्ध
गर्गाभिधान मुनि वृद्ध गणी मनस्वी ।
निष्णात आगम विशारद थे गुणज्ञ
शिष्यादि-पाठक, सुधीर, समाधियुक्त ।।१।।

वहणे वहमाणस्स,
कंतारं अइवत्तई ।
जोगे वहमाणस्स,
संसारो अइवत्तई।।२।।

कान्तार में शकटवाहन बैल से है-
काठिन्य मार्ग सुख पूर्वक पार होता ।
वैसे समाधि परियुक्त सुसंयमी भी-
संसार पार करता सुख से मुनीश ।।२।।

खलुंके जो उ जोएइ,
विहम्माणो किलिस्सइ ।
असमाहिं च वेएइ,
तोत्तओ य से भज्जइ।।३।।

जो दुष्ट बैल निज वाहन जोतता है
संक्लेशपूर्ण उसकी गतिशीलता है ।
वो मारता दुखित हो निरुपाय होके
होता समाधि परिहीन कशाविहीन ।।३।।

एगं डसइ पुच्छम्मि,
एगं विंधइ-ऽभिक्खणं ।
एगो भंजइ समिलं,
एगो उप्पह-पट्ठिओ।।४।।

क्षुब्ध प्रकृष्ट परिवाहक, देख वृत्ति
उत्खिन्न भाव मन से, फिर पूंछ काटे ।
बींधे, उसे हृदय में, परिदुःख देवे
तोड़े जुए, वह कुमार्ग विशेष जाता ।।४।।

एगो पडइ पासेणं,
णिवेसइ णिवज्जइ ।
उक्कुद्दइ उप्फिडइ,
सढे बालगवी वए।।५।।

कोई गिरा, वृषभ पार्श्व विषादशील
बैठे व लेट परिकूर्दन शीलता से ।
मारे उछाल, अथवा वह गाय पीछे-
भागे, विशेष सबको परिदुःख देता ।।५।।

माई मुद्धेण पडइ,
कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं ।
मय लक्खेण चिट्ठइ,
वेगेण य पहावई।।६।।

मायादि रूप शिर को, कर के निढ़ाल
पृथ्वी निकृष्टिपन से, गिरता अवश्य ।
उन्मार्ग में कुपित हो, भगता वराक
निश्चेष्ट भूमि पड़ता, परिवेग बैल ।।६।।

छिण्णाले छिंदइ सेल्लिं,
दुद्दंतो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुया-इत्ता,
उज्जहित्ता पलायए।।७।।

छिन्नाल मानस बना, वह रास तोड़े
दुर्दान्त होकर जुआ, परिनाशता है ।
सूँ-सूँ पुकार कर, वाहन छोड. नैज-
उन्मार्ग पै गमन ही, परिरोचता है ।।७।।

खलुंका जारिसा जोज्जा,
दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्म-जाणम्मि,
भज्जंति धिइ-दुब्बला।।८।।

जैसे अयोग्य वृष वाहन, तोड़ता है
दुःशिष्य भी, धरमयान विखण्डता है ।
धैर्यादिमुक्त, नय हीन, विरुद्ध दुष्ट
होता नहीं, वृषभ तुल्य अभीष्टकारी ।

इड्ढी-गारविए एगे,
एगेऽत्थ रसगारवे ।
साया-गारविए एगे,
एगे सुचिर कोहणे।।९।।

ऐश्वर्य गौरव करे, अभिमान युक्त
एवम् रसादि चय की, कर तीव्र चिन्ता ।
सौख्यादि चाह करके, अविनीत शील
कोप, प्रकोप करता, चिरकाल शिष्य ।।

भिक्खा-लसिए एगे,
एगे ओमाण भीरुए ।
थद्धे एगे-अणुसासम्मि,
हेऊहिं कारणेहिं य।।१०।।

आलस्य युक्त करता, वह गोचरी को
लोकापवाद भय से, डरता सदैव-।
हेत्वादि कारण कहे, गुरु देशना तो-
तो भी, न वोध वुधता, उसमें समाती ।।१

सोवि अंतर-भासिल्लो,
दोसमेव पकुव्वइ ।
आयरियाणं तु वयणं,
पडिकूलेइ-ऽभिक्खणं।।११।।

वादी प्रवाद करता, गुरु वाक्य में भी
आचार्य के वचन में, फिर दोष देखे ।
जो बार बार वचनादिक, टालता है
दुश्शील शिष्य, जिसकी यह भावना है ।।११।।

ण सा ममं वियाणाइ,
णवि सा मज्झ दाहिई ।
णिग्गया होहिइ मण्णे,
साहू अण्णोऽत्थ वज्जउ।।१२।।

भिक्षार्थ के समय, शिष्य कहे गणी से
संबुद्धहीन मुझ से, गृहिणी रही है ।
देगी न, वस्तु, मुझको अनभिज्ञ है वो
मैं मानता, घर नहीं, पर को पठावे ।।१२।।

पेसिया पलि उंचन्ति,
ते परियंति समन्तओ ।
रायवेट्ठिं च मण्णंता,
करेंति भिउडिं मुहे।।१३।।

भव्य-प्रयोजन निदान, विशेष भेजा-
लौटा, न कार्य, करके अपलापकारी ।
घूमे, सदा इधर तो, फिर और तत्र
बेगार रूप, समझे गुरु कार्य सारा ।।१३।।

वाइया संगहिया चेव,
भत्तपाणेण पोसिया ।
जाय-पक्खा जहा हंसा,
पक्कमंति दिसो दिसिं।।१४।।

दीक्षा प्रशिक्षण, विधान समग्र युक्त
भक्तादि पान, विधि से, परिपुष्ट गात्र ।
ऐसा, कुशिष्य गुरु से, विपरीत जाता
ज्यों, हंस पक्ष मिलने पर, दूर भागे ।।१४।।

अह सारही विचिंतेइ,
खलुंकेहिं समागओ ।
किं मज्झ दुट्ठ-सीसेहिं,
अप्पा मे अवसीयइ।।१५।।

खिन्न प्रकृष्ट बनते, गुरु सारथी भी
सोचे, विशेष मन में, यदि शिष्य दुष्ट ।
कोई न लाभ इनसे, परिषद् खलुंक
सन्ताप नित्य, मिलता खल संगती से ।।१५।।

जारिसा मम सीसाउ,
तारिसा गलि-गद्दहा ।
गलि-गद्दहे जहित्ताणं,
दढं पगिण्हइ तवं।।१६।।

ये मूर्ख शिष्य, गलिगर्दभ के समान
दिग्भ्रान्त से, भटकते परियाम में है ।
ऐसे कुशिष्य तज के, निज साधना में-
आचार्य गर्ग, परिलीन हुए अकेले ।।१६।।

मिउ-मद्दव संपण्णो,
गम्भीरो सुसमाहिओ ।
विहरइ महिं महप्पा,
सील भूएण अप्पणा।।१७।।

कौशल्य, मार्दव, समाहित शीलवन्त-
गाम्भीर्य से, सुपरिलक्षित हो, मुनीन्द्र ।
आत्मस्थ वे, तब हुए, निज शिष्य छोड़
संपृक्त, भूरि करते, वसुधासुधा से ।।१७।।

२८ अध्ययन : मोक्षमार्गगति

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्गगति' (मोक्खमग्गगई) है।
- मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य है और मार्ग उसको पाने का उपाय। गति साधक का अपना यथार्थ पुरुषार्थ है। साध्य हो, किन्तु साधन न मिले तो साध्य प्राप्त नही किया जा सकता। इसी प्रकार साध्य भी हो, साध्यप्राप्ति का उपाय भी हो, किन्तु उसकी ओर चरण न बढे तो वह प्राप्त नही हो सकता।
- प्रस्तुत अध्ययन मे मोक्षप्राप्ति के चार उपाय (साधन) बताए है–ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग बताया गया है और यहाँ तप को अधिक बताया है, किन्तु यह विवक्षाभेद के कारण ही है। चारित्र मे ही तप का समावेश हो जाता है। इस चतुरंग मोक्षमार्ग मे गति करने वाले साधक ही उस चरम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।
- मोक्षप्राप्ति का प्रथम साधन सम्यग्ज्ञान है। बिना ज्ञान के कोरी क्रिया अधी है और क्रिया के बिना ज्ञान पंगु है। अत सर्वप्रथम ज्ञान के निरूपण के सन्दर्भ मे 5 ज्ञान और उसके ज्ञेय द्रव्यगुण–पर्याय तथा षट्द्रव्य का प्रतिपादन है।
- दूसरा साधन दर्शन है, जिसका विषय है–नौ तत्त्वो की उपलब्धि–वास्तविक श्रद्धा। वे तत्त्व यहाँ स्वरूपसहित बनाए है। फिर दर्शन को निसर्गरुचि आदि 10 प्रकारों से समझाया गया है।
- तृतीय मार्ग है–चारित्र। उसके सामायिक आदि 5 भेद है, जिनका प्रतिपादन यहाँ किया गया है।
- अन्त मे मोक्ष के चतुर्थ साधन तप के दो रूप–ब्राह्य और आभ्यन्तर बता कर प्रत्येक के 6–6 भेदो का संगोपांग निरूपण किया है।

- कुछ अनिवार्यताएँ बताई हैं–दर्शन के बिना ज्ञान सम्यक् नहीं होता, सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्र असम्यक् है और चारित्र नहीं होगा, तब तक मोक्ष नहीं होता। मोक्ष के बिना आत्मसमाधि, समग्र आत्मगुणों का परिपूर्ण विकास या निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

२८. मोक्षमार्गगति

मोक्ख-मग्ग-गइं तच्चं,
सुणेह जिण-भासियं ।
चउ-कारण संजुत्तं,
णाण-दंसण-लक्खणं।।१।।

ज्ञानादि चार पटु कारण जान के ही-
संबुद्ध साधक, जिनेन्द्र पथानुगामी-।
मुक्ति-प्रधान धन की, उपलब्धि हेतु-
सम्यक् विवेचन सुनो, सुख से मनोज्ञ ।।१।।

णाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो,
जिणेहिं वर-दंसिहिं।।२।।
णाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्ग-मणुप्पत्ता,
जीवा गच्छंति सोग्गइं।।३।।

संबोधि, दर्शन, चरित्र, तपस्वरूप-
की देशना प्रभु जिनेन्द्र निदिष्टपूर्ण ।
आरूढ हो गमन जो करता उसे ही-
मोक्ष प्रशस्त, मिलता निरपाय धाम ।।२-३।।

तत्थ पंचविहं णाणं,
सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहि-णाणं तु तइयं,
मण-णाणं च केवलं।।४।।
एयं पंचविहं णाणं,
दव्वाण य गुणाण य ।
पज्जवाणं च सव्वेसिं,
णाणं णाणीहिं देसियं।।५।।

हैं, ज्ञान पांच मतिपूर्वक बोधकारी-
सम्यक् श्रुतादि अवधी मनपर्यवादि-।
कैवल्य युक्त अववोधक, दाव संग-
पर्याय सयुत, गुणोच्चय के विशिष्ट ।।४-५।।

गुणाण-मासओ दव्वं,
एग-दव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु,
उभओ अस्सिया भवे।।६।।

है द्रव्य आश्रय, गुणादि समूह के ये-
प्रत्येक में, निवसना, गुण का स्वभाव-।
पर्याय आश्रय सदा गुण दव्व दोनों-
तीनों विशिष्ट परिलक्षण युक्त जानों ।।६।।

धम्मो अहम्मो आगासं,
कालो पुग्गल-जंतवो ।
एस लोगो-त्ति पण्णत्तो,
जिणेहिं वर-दंसिहिं।।७।।

षड्द्रव्य रूप परिकल्पित लोक सारा-
ऐसा जिनेन्द्र परिरूपण शास्त्र में है ।
आकाशकाल परिपुद्गल जीव रूप-
धर्माद्य धर्म-युत दव्व सरूप सिद्ध ।।७।।

धम्मो अहम्मो आगासं,
दव्वं इक्किक्क-माहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि,
कालो पुग्गल-जंतवो।।८।।
गइ-लक्खणो उ धम्मो,
अहम्मो ठाण-लक्खणो ।
भायणं सव्व-दव्वाणं,
णहं ओगाह-लक्खणं।।९।।

धर्माद्यधर्म नभ एक विशेष जानों
जीवादि काल अरु पुद्गल है अनन्त ।
हैं हेतु ये, युगल यान गती निरोध-
में, द्रव्य आश्रय सदा, वह एक मात्र ।।८-९।।

वत्तणा-लक्खणो कालो,
जीवो उवओग-लक्खणो ।
णाणेणं दंसणेणं च,
सुहेण य दुहेण य।।१०।।
णाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य,
एयं जीवस्स लक्खणं।।११।।

है, काल वर्तन गुण, उपयोग जीव-
दुःखादि रूप सुख दर्शन लक्षणाक्त-।
है, ज्ञान दर्शन चरित्र तप स्वरूप-
वीर्योपयोग गुण लक्षण युक्त जीव ।।१०-११।।

सद्दन्धयार-उज्जोओ,
पभा छाया ऽऽतवो-इ वा ।
वण्ण-रस-गंध-फासा,
पुग्गलाणं तु लक्खणं।।१२।।

शब्दान्धकार नभ पूरित दीप्ति रूप-
छायादि आतप विभा रस वर्ण गन्ध-।
स्पर्शादि पुद्गल सरूप समक्षदृष्ट-
सर्वज्ञ दिष्ट जिन शासन में गृहीत ।।१२।।

एगत्तं च पुहुत्तं च,
संखा संठाण-मेव य ।
संजोगा य विभागा य,
पज्जवाणं तु लक्खणं।।१३।।

एकत्व भेद रु पृथक् परिसंख्य आदि-
संस्थान आकृति विभाग तथा सयोग-।
पर्याय लक्षण निदिष्ट किया गया है
स्याद्वाद दर्शन विधायक देव दृष्ट ।।१३।।

जीवाजीवा य बंधो य,
पुण्णं पावाऽसवो तहा ।
संवरो णिज्जरा मोक्खो,
सन्त्येए तहिया णव।।१४।।

जीवाद्यजीव परिपुण्य अथाश्रवादि-
बन्धादि संवर तथा परिनिर्जरादि-।
ये तत्त्व मोक्ष पद हेतु, विशेष योग्य-
आराधना कर, पुनीत बने मनुष्य ।।१४।।

तहियाणं तु भावाणं,
सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स,
सम्मत्तं तं वियाहियं।।१५।।

तथ्य स्वरूप चय की, धृति धारणा से
श्रद्धान भक्ति करता, नित भाव पूर्ण ।
सम्यकृत्व बीज वपनादिक कृत्य रूप
मोक्ष-प्रधान फल की, उपलव्धि होती ।।१५।।

णिसग्गुवएस-रुई,
आणारुई सुत्त-बीयरुइ मेव ।
अभिगम-वित्थार रुई,
किरिया-संखेव धम्मरुई।।१६।।

सम्यकृत्व के दस, सरूप निसर्ग आदि-
आज्ञोपदेश, अनुरञ्जित, सूत्र-बीज-।
संक्षेप-विस्तृत-रुचीकृति धर्मधारी-
श्रद्धा सदा, अभिगमादि विबोधशील ।।१६।।

भूयत्थे-णाहि-गया,
जीवाजीवा य पुण्ण-पावं च ।
सह सम्मइयाऽसव-संवरो य,
रोएइ उ णिसग्गो।।१७।।

प्राप्तव्य वोध निज से, करके समीक्षा-
नौ तत्त्व के विषय में, अनुभूतिपूर्व-।
श्रद्धा स्वरूप विधि से, परिपालना से-
नैसर्ग रूप, रुचि को, समझे गुणज्ञ ।।१७।।

जो जिणदिट्ठे भावे,
चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव णण्णह त्ति य,
स णिसग्गरुइ त्ति णायव्वो।।१८।।

सर्वज्ञ दिष्ट उपदिष्ट विशेष तत्त्व
में, अन्यथा न रखना, निज भावना को।
वस्तु स्वरूप नित सत्य, विशिष्ट भाव
नैसर्ग रूप रुचि को, समझे गुणज्ञ ।।१८।।

एए चेव उ भावे,
उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणेण व,
उवएसरुइ त्ति णायव्वो।।१९।।
रागो दोसो मोहो,
अण्णाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो,
सो खलु आणारुई णामं।।२०।।

छद्मस्थ अन्य जिन दिष्ट पदार्थ जीव-
श्रद्धान पूर्ण उपदेश, रुचि कहीं है ।
द्वेषादि राग परिमोह अबुद्धता भी-
हो दूर पूर्ण, उनकी रुचि रूप आज्ञा ।।१९-२०।।

जो सुत्त-महिज्जंतो,
सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व,
सो सुत्तरुइ त्ति णायव्वो।।२१।।

अंग प्रविष्ट मत का, कर बोध सारा-
अंगादि बाह्य पर भी, अवगाहना हो ।
सम्यक्त्व बोध धन की, उपलब्धि से ही-
सूत्राख्य रूप रुचि को, कहते मनीषी ।।२१।।

एगेण अणेगाइं पयाइं,
जो पसरइ उ सम्मत्तं ।
उदए व्व तेल्लबिंदू,
सो बीयरुई त्ति णायव्वो।।२२।।

सम्यक्त्व एक पद से, वह तत्त्व में भी-
प्रत्न प्रयास बिन, साहज पद्धती से-।
विस्तारशील बनती, रुचि बीज रूप-
पानीय मध्यगत तैल, समान भव्य ।।२२।।

सो होइ अभिगम रुई,
सुयणाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाइं,
पइण्णगं दिट्ठिवाओ य।।२३।।

एकादशांग गत, विस्तृत से प्रकीर्ण
सम्वद्ध दृष्टि परिवाद समग्र पूर्ण ।
श्रोतादि वोध विधि से उपलब्धि रूप
षष्ठ प्रभेद निहिताभिगमारुची है ।।२३।।

दव्वाण सव्वभावा,	प्रत्यक्ष सम्यगभिधेय नियोगकारी-
सव्व पमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।	लिंगादि से, विदित मान परोक्ष रूप ।
सव्वाहिं णय-विहीहिं,	सातों, नयादिचय से, सम वस्तु बोध
वित्थाररुइ त्ति णायव्वो।।२४।।	विस्तार रूप रुचि को, समझें गुणज्ञ ।।२४।।
दंसण-णाण-चरित्ते,	ज्ञानादि दर्शन चरित्र तपस्वरूप-
तव-विणए सच्च-समिइ-गुत्तीसु ।	सत्यक्रिया समिति गुप्ति विनीत भाव-।
जो किरियाभाव-रुई,	पै हो, रुची करण से, कर धारणा को
सो खलु किरियारुई णाम।।२५।।	वो ही क्रिया रुचि, विशेष कही गयी है ।।२५।।
अणभिग्ग-हिय-कुदिट्ठी,	निर्ग्रन्थ के वचन में, अनभिज्ञपूर्ण
संखेवरुइ-त्ति होइ णायव्वो ।	मिथ्या प्रभाषण विधान, रहस्य शून्य-।
अविसारओ पवयणे,	दृष्टि-प्रदोष जिसमें, कुछ भी नहीं है
अणभिग्गहिओ य सेसेसु।।२६।।	संक्षिप्त रूप रुचि, अल्प विबोधशाली ।।२६।।
जो अत्थिकाय-धम्मं,	धर्मास्तिकाय परिबोध, विशेष युक्त-
सुय-धम्मं खलु चरित्त-धम्मं च ।	श्रद्धा स्वरूप करता, चरण क्रिया में-।
सद्दहइ जिणाभिहियं,	श्रौत क्रिया वरण हो, परिपूर्ण जानें-
सो धम्मरुइत्ति णायव्वो।।२७।।	वो धर्म रूप रुचि है, जिन धर्मनिष्ठ ।।२७।।
परमत्थ संथवो वा,	सम्यक् स्वरूप परमार्थ, विशेष जानें
सुदिट्ठ परमत्थ-सेवणा वावि ।	व्यापन्न दर्शन समेत, कुदर्शना से-।
वावण्ण कुदंसण-वज्जणा,	तत्त्व प्रदर्शनमयी, परिसेवना को-
य सम्मत्त सद्दहणा।।२८।।	जो दूर, वो समकिती, शुचि रूप में हैं ।।२८।।
णत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं,	सम्यक्त्वहीन चरणादिक है न शक्य
दंसणे उ भइयव्वं ।	चारित्र मुक्त वह तो रहता अवश्य ।
सम्मत्त-चरित्ताइं,	सम्यक्त्व और चरणादिक साथ होते
जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं।।२९।।	चारित्रपूर्ण समभाव सुलाभकारी ।।२९।।

णादंसणिस्स णाणं,
णाणेण विणा ण हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो,
णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।।३०।।

सम्यक्त्वरिक्त परिबोध न शोभता है
बोधित्वहीन चरणादिक सम्भवी क्या ?
चारित्र शून्य परिमोक्ष, मिला किसे है ?
निर्वाण रिक्त, शुभ सौख्य, मिले कहीं क्या ? ।।३०।।

णिस्संकिय-णिक्कंखिय-
णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उवबूह-थिरीकरणे,
वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ।।३१।।

धनाक्षरी-

शंकाओं आकांक्षाओं को भव भाव विषयक
धर्मफल संशय को भूरि-भूरि त्यागना ।
देव गुरु शास्त्र, अरु लोक मूढ़ता से मुक्त
गुणिजन परशंसा नित प्रति भावना ।
गुण नित प्रति बढ़े, थिरीकरणादिक से
बात सत्य भाव भव्य सतत विकासना ।
प्रतीत-प्रभावना यह, अष्ट सम्यक्त्व अंग
जैन-शास्त्र संरहस्य, श्रद्धा युत जानना ।।३१।।

सामाइ-यत्थ पढमं,
छेओ-वट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहार-विसुद्धीयं,
सुहुमं तह संपरायं च।।३२।।

छन्द-बसन्ततिलका

चारित्र पंचविध है, प्रभु से प्रदिष्ट
सामायिक प्रथम, छेदन दूसरा है ।
औ है तृतीय, फिर भी परिहार शुद्धि
चौथा, स्वरूप परिसूक्ष्म, कहा गया है ।।३२।।

अकसाय-महक्खायं,
छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं,
चारित्तं होइं आहियं।।३३।।

है जो कषाय, परिमुक्त चरित्र रूप
याथाख्य भाव, परिलक्षित हो सदैव ।
छद्मस्थ केवल, जिसे करते गृहीत
चारित्रकर्म चयरिक्त, कहा गया है ।।३३।।

तवो य दुविहो वुत्तो,
बाहि-रब्भंतरो तहा ।

है दो प्रकार, तप का, परिगान भव्य
आन्तर्य वाह्य, उनकी परिदेशना है ।

बाहिरो छव्विहो वुत्तो,
एव-मब्भंतरो तवो।।३४।।

बाह्यादि ताप तप है, विध षट् स्वरूप
है दूसरा, सदृश ही, अभिधान युक्त ।।३४।।

णाणेण जाणेइ भावे,
दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण णिगिण्हाइ,
तवेण परिसुज्झइ।।३५।।

आत्म प्रबोध धन से जग जानता हूँ
श्रद्धान दर्शन सरूप, कहा गया है ।
चारित्र से क्षय करे, निज कर्मबन्ध-
होता, विशुद्ध करके, तप को विशिष्ट ।।३५।।

खवित्ता पुव्व कम्माइं,
संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्ख-पहीणट्ठा,
पक्कमंति महेसिणो।।३६।।

दुःख प्रमुक्त बनने, हित साधना से
संयाम और तप से, निज कर्म सारे ।
पूरा, विनष्ट करके, अति भव्य रूप-
मोक्ष स्वरूप पथ पै, चलते महर्षि ।।३६।।
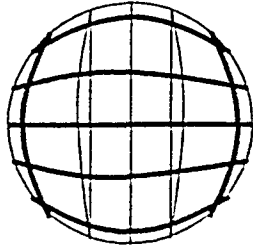
२९ अध्ययन : सम्यक्त्वपराक्रम

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम सम्यक्त्व–पराक्रम है। इससे सम्यक्त्व में पराक्रम करने का, अथवा सम्यक्त्व अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप के प्रति सम्यक्रूप में श्रद्धा करने का दिशानिर्देश मिलता है, इसलिए यह गुणनिष्पन्न नाम है। कई आचार्य इसे 'वीतरागश्रुत' अथवा 'अप्रमादश्रुत' भी कहते हैं।
- इसमें अध्यात्मसाधना अथवा मोक्षप्राप्ति की साधना का सम्यक् दृष्टिकोण, महत्त्व, परिणाम और लाभ सूचित किया गया है। इसमें सम्पूर्ण उत्तराध्ययनसूत्र के सार का समावेश हो जाता है।
- प्रस्तुत अध्ययन में 73 प्रश्न और उनके उत्तर हैं। 73 बोलों की फलश्रुति बहुत ही गहनता के साथ बताई गई है।
- अन्त में योगनिरोध एवं शैलेशी अवस्था का क्रम एवं मुक्त जीवो की गति–स्थिति आदि का निरूपण किया गया है। अतः सम्यक्रूप से पूर्ण श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, स्पर्शन, पालन करने से, गइराई से जानने से, इसके गुणोत्कीर्त्तन से, शोधन से, आराधन से, आज्ञानुसार, अनुपालन से साधक परिपूर्णता के–मुक्ति के–शिखर पर पहुँच सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

२९. सम्यक्त्वपराक्रम

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु सम्मत्त-परक्कमे णामं अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

छन्द-धनाक्षरी

काश्यप गोत्रीय भगवान महावीर स्वामी-
सम्यक्त्व-पराक्रम अध्याय को उचारे हैं ।
बाकी सम्यक् श्रद्धा से, प्रतीति रुचि फर्शना से
परिबोध गाम्भीर्य से, भक्ति युक्त पारै हैं ।
कीर्तन से, शुद्धि रूप, भावना आराधना से
आज्ञा अनुकूल, अनुपालना विचारे हैं ।
जीव सिद्ध बुद्ध परिमुक्त, होके मायाहीन-
परिनिरवाण पाय, दु:ख जारि डारै हैं ।

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ, तंजहा-

संवेगे[1] णिव्वेए[2] धम्मसद्धा[3] गुरु-साहम्मिय-सुस्सूसणया[4] आलोयणया[5] णिंदणया[6] गरिहणया[7] सामाइए[8] चउव्वीसत्थवे[9] वंदणे[10] पडिक्कमणे[11] काउस्सग्गे[12] पच्चक्खाणे[13] थव'थुईमंगले[14] कालपडिलेहणया[15] पायच्छित्तकरणे[16] खमावयणया[17] सज्झाए[18] वायणया[19] पडिपुच्छणया[20] परियट्टणया[21] अणुप्पेहा[22] धम्मकहा[23] सुयस्स आराहणया[24]

एगग्ग-मण-संणिवेसणया[२५] संजमे[२६] तवे[२७] वोदाणे[२८] सुहसाए[२९] अप्पडिबद्धया[३०] विवित्त- सयणासण-सेवणया[३१] विणियट्टणया[३२] संभोग- पच्चक्खाणे[३३] उवहि- पच्चक्खाणे[३४] आहार- पच्चक्खाणे[३५] कसाय- पच्चक्खाणे[३६] जोग-पच्चक्खाणे[३७] सरीर - पच्चक्खाणे[३८] सहाय- पच्चक्खाणे[३९] भत्त-पच्चक्खाणे[४०] सब्भाव - पच्चक्खाणे[४१] पडिरूवणया[४२] वेयावच्चे[४३] सव्वगुण - संपण्णया[४४] वीयरागया[४५] खंती[४६] मुत्ती[४७] मद्दवे[४८] अज्जवे[४९] भावसच्चे[५०] करणसच्चे[५१] जोगसच्चे[५२] मणगुत्तया[५३] वयगुत्तया[५४] कायगुत्तया[५५] मण-समाधारणया[५६] वय-समाध ारणया[५७] काय- समाधारणया[५८] णाण-संपण्णया[५९] दंसण-संपण्णया[६०] चरित्त- संपण्णया[६१] सोइंदिय-णिग्गहे[६२] चक्खुंदिय - णिग्गहे[६३] घाणिंदिय- णिग्गहे[६४] जिब्भिंदिय-णिग्गहे[६५] फासिंदिय - णिग्गहे[६६] कोह-विजए[६७] माण-विजए[६८] माया-विजए[६९] लोह-विजए[७०] पेज्ज-दोस-मिच्छादंसण विजए[७१] सेलेसी[७२] अकम्मया[७३]।

(१) संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ। अंणताणुबंधि- कोह-माण-माया-लोहे खवेइ। णवं च कम्मं ण बंधइ । तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ।

संवेग से जीव, सर्वश्रेष्ठ-धर्म श्रद्धा लहै
जाके परिपालन से, मोक्ष रुचि छावै है ।
अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया अरु लोभ
करे क्षय, नूतन, करम न बंधावै है ।
अनन्तानुवन्धी तीव्र, कषाय की क्षीणता से-
मिथ्यात्व विशुद्ध रूप, दर्शन को जावै है ।

दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं णाइक्कमइ ।

होके जीव शुद्धं कछु, उसी भव मोक्ष जावे
कछु शुद्ध तीजे भव, मोक्ष पद पावे है ।।१।।

(२) णिव्वेएणं भंते ! जीवे किं जणयइ? णिव्वेएणं दिव्व-माणुस- तेरिच्छिएसु कामभोगेसु णिव्वेयं हव्व-मागच्छइ। सव्व-विसएसु विरज्जइ। सव्व-विसएसु विरज्जमाणे आरम्भ परिच्चायं करेइ, आरम्भ-परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धिमग्गं पडिवण्णे य हवइ।

निर्वेद से जीव देव, नर तिर्यंक् भोगादि से-
विषय विरक्त, सक्त, शीघ्र बनि जावै है ।
विरक्त हो, विषयो से, आरम्भ का त्याग करें
सर्वारम्भ त्याग कर, त्यागी रूप पावै है ।
भव मार्ग उच्छेद से, आतम सरूप बोध
अनन्त सुखों में लीन, सिद्धी पद पावै है ।
अपुनरावृत्ति रूप, होवे जाकी दिव्य गति
निरवेदी, अव्याबाध, सुख में समावै है ।।२।।

(३) धम्म-सद्धाए णं भंते जीवे किं जणयइ ? धम्मसद्धाए णं साया-सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ। आगारधम्मं च णं चयइ । अणगारिए णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयण-भेयण संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं णिव्वत्तेइ ।

धरम श्रद्धा से साता, वेदनीय कर्मजन्य
वैषयिक सुखों से, आसक्ति सब टारै है ।
आगार धरम त्यागि, श्रमणत्व नित्य पाले
होके अणगार रूप, दश धर्म धारै है ।
छेदन भेदन आदि, शारीरिक संयोगादि
मानसिक दुःखों को, समूल जारि डारै है ।
रत्नत्रय प्राप्त कर, कृत्स्न कर्म क्षय करि
अव्याबाध मुक्ति सुख, सुधा सनिसारै है ।।३।।

(४) गुरु- साहम्मियसुस्सूसणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गुरु-साहम्मिय सुस्सूसणयाए णं विणय-पडिवत्तिं जणयइ । विणय पडिवण्णे य णं जीवे अणच्चा सायण-सीले नेरइय-तिरिक्ख जोणिय मणुस्स-देव-दुग्गइओ णिरुम्भइ।

गुरु तथा साधार्मिक, शुश्रूषा से जीव सदा
विनै प्रतिपत्ति रत, लाभान्वित होवै है ।
आशातना परिवादादिक रूप दोष मुक्त
तिर्यक् नारक, देव नर दुर्गति निरोधै है ।
श्लाघा, संज्वलन भक्ति, बहुमान [illegible]
दिव्य देव, मानव की. सुगति [illegible] है ।

वण्ण-संजलण-भत्ति-बहुमाणयाए मणुस्स-देवसुग्गइओ णिबंधइ, सिद्धिं-सोग्गइं च विसोहेइ। पसत्थाइं च णं विणय-मूलाइं सव्व कज्जाइं साहेइ । अण्णे य बहवे जीवे विणिइत्ता भवइ।

श्रेष्ठ गति रूप सिद्धि, पाके हो प्रशस्तकारी
अन्य भव जीवों को भी, विनयी प्रबोधै है ।।४।।

(५) आलोयणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
आलोयणाए णं माया-णियाण-मिच्छा-दंसण-सल्लाणं, मोक्खमग्ग-विग्घाणं, अणंत-संसार-बंधणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभावं च जणयइ । उज्जुभाव पडिवण्णे य णं जीवे अमाई इत्थीवेय णपुंसगवेयं च ण बंधइ । पुव्वबद्धं य णं णिज्जरेइ ।

आलोचना मोक्ष मार्ग विघ्नकारी फलाकांक्षा
माया मिथ्या दर्शन को, दूर छिटकावै है।
ऋजु भाव धारणा से, माया को निवारपा है
जाया वेद कीव वेद मूलि ना बँधावै है।
पूर्वबद्ध करमों की जीव करे, निज्जरण-
आत्मशोध हेतु या ही पंथ अपनावै है।
आचार्य समक्ष दोष, परकाश करि जीव
मिथ्या दर्शन रूप शल्य, दूर करि पावै है ।।५।।

(६) णिंदणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
णिंदणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ। पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ । करणगुण-सेढी पडिवण्णे य णं अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ।

छन्द-बसन्ततिलका
निन्दा प्रभाव पछताव लहै सुजीव
आती सुतापचय से भव से विरक्ति ।
होती विशिष्ट करणादिक रूप दृष्टि
गौणादि संवरण से परिमोह नष्ट ।।६।।

(७) गरहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
गरहणयाए णं अपुरक्कारं जणयइ । अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो णियत्तेइ, पसत्थे य पडिवज्जइ। पसत्थ-जोग पडिवण्णे य णं अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ।

गर्हा विशेष कृति से मिलती अवज्ञा
वैसा अकर्म, परिवर्जनशील होता ।
कार्यादि रिक्त बनता, शुभ कार्यकारी
कर्मादि का क्षय करे, गुण दीप्तिकारी ।।७।।

(८) सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ?
सामाइएणं सावज्ज जोग-विरइं जणयइ।
(९) चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे किं जणयइ ?
चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ।

सामायिकादि करके परिभोग मुक्त-
सावद्य कार्य विधि से परिरिक्त होता ।
चौबीस तीर्थकर के स्तुति गान से भी-
होता विशुद्ध, परिदर्शन लाभकारी ।।८-९।।

(१०) वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ?
वंदणएणं णीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चा-गोयं कम्मं णिबंधइ, सोहग्गं च णं अपडिहयं आणाफलं णिव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ।

नीचादि गोत्र कृति का क्षयकार कारी-
उच्चादि गोत्र सुख से, शुभ बाँधता है ।
सौभाग्य लाभ करता, जन नेह पाता
दाक्षिण्य शासन लहे, जिन-वन्दना से ।।१०।।

(११) पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ?
पडिक्कमणेणं वयछिद्दाणि पिहेइ । पिहिय-वयछिद्दे पुण जीवे णिरुद्धासवे असबल-चरित्ते अट्ठसु-पवयण-मायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ।

प्राणी-प्रतिक्रमण से, व्रत छिद्र रोके
संरुद्ध-आश्रव करे, चरण क्रिया से-।
आराधना, समिति गुप्ति चयादि का ही-
सम्यक् समाधि युत सन्तत संयमी हो ।।११।।

(१२) काउस्सग्गेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
काउस्सग्गेणं तीय-पडुप्पण्णं पायच्छित्तं विसोहेइ। विसुद्ध- पायच्छित्ते य जीवे णिव्वुय-हियए ओहरिय-भरुव्व भारवहे पसत्थ-ज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ।

उत्सर्गशील परिपत्र अतीत काल-
दोषादि रूप-अतिचार विशोधता है ।
जैसे कि भार परिवाहक भारमुक्त-
हो स्वस्थ-सौख्य लहता सुसमाधिलीन ।।१२।।

(१३) पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ?
पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं णिरुम्भइ। पच्चक्खाणेणं इच्छा-णिरोहं जणयइ। इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्व-दव्वेसु विणीय-तण्हे सीइभूए विहरइ ।

दोषादि छोड़कर के, भव मध्य जीव-
रागादि कर्म परिबन्धन हेतुओं का-।
साधे निरोध, भव आश्रव रूपता का
वाही तटाक नलिका-अवरोध तुल्य ।।१३।।

(१४) थव-थुइ मंगलेणं भंते जीवे किं जणयइ ?
थव-थुइ मंगलेणं णाण-दंसण -चरित्त-बोहिलाभं जणयइ । णाण-दंसण-चरित्त बोहिलाभसंपण्णे य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ ।

संबुद्ध दर्शन चरित्र विबोध लाभ
होता, स्तुती सुपरिमंगल गान से है ।
अन्तक्रिया सतत लक्ष्य विशेष होती
वैमानिकादि सुर की उपलब्धियाँ भी ।।१४।।

(१५) काल-पडिलेहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काल-पडिलेहणयाए णं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।

स्वाध्याय धर्म करणादिक हेतु युक्त-
कालादि धेय परिपालन काल लेखा-।
से जीव शुद्ध करता क्षय सर्वदेव-
ज्ञानावृतीय कृति का करणीयकारी ।।१५।।

(१६) पायच्छित्तकरणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? पायच्छित्त-करणेणं पावकम्म-विसोहिं जणयइ । णिरइयारे यावि भवइ । सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयार-फलं च आराहेइ ।

सम्यक् विशुद्ध दुरितादिक दूरकारी-
धर्मादि को निरतिचार सदा बनाता ।
सम्यक्त्व बोध परिनिर्मलता विशिष्ट-
आचार-मुक्ति भजता अनुतप्त जीव ।।१६।।

(१७) खमावणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?

चित्त प्रसाद मिलता सु-खमापना से-
प्रह्लाद भाव करता सबसे सुमैत्री-।

खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ। पल्हायणभावमुवगए य सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्तेसु मित्तीभावमुप्पाएइ। मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण णिब्भए भवइ।

निवृत्त भाव लहके परिशुद्ध जीव-
भावादि शुद्ध बनके, भय-शून्य होता ।।१७।।

(१८) सज्झाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।

पूछा विनीत बनके, भगवान् बतावे-
स्वाध्याय में सतत जीव अपूर्व पाता ?
क्या ? देव ने तब कहा उससे समग्र
ज्ञानावृतात्म कृति का क्षय साधता हो ।।१८।।

(१९) वायणाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
वायणाए णं णिज्जरं जणयइ । सुयस्स य अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टए, सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टमाणे तित्थ-धम्मं अवलम्बइ । तित्थधम्मं अवलम्बमाणे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ।

श्रौतादि पाठ परिवाचन, निर्जरा है
आशातना सतत दूर करे मनस्वी ।
तीर्थादि धर्म अवलम्बन भूत होता
संसार तीर्ण करता, बहु निर्जरा से ।।१९।।

(२०) पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थ-तदुभयाइं विसोहेइ । कंखा-मोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ ।

शंका निवृत्ति करना परिपृच्छना है
प्राक् प्राप्त शास्त्र निगमागम के विषै में।
सूत्रार्थ औ उभय का, परिबोध होता
तद्बद्ध संशय निराकृति जीव पावे ।।२०।।

(२१) परियट्टणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? परियट्टणयाए णं वंजणाइं जणयइ । वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ।

आवर्तना पुनि करे निज पाठ की भी
शब्दादि रूप थिर भाव लहे अवश्य-।
एवम् पदानुसरता अनुरंजनाभृत्-
से व्यंजनादि परिलब्धि विशेष पाता ।।२१।।

(२२) अणुप्पेहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्म-प्पगडीओ धणियबंधण-बद्धाओ सिढिल-बंधण बद्धाओ पकेइ। दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ। तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहु-पएस-ग्गाओ अप्पपएस-ग्गाओ पकरेइ । आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिया णो बंधइ । असाया-वेयणिज्जं च णं कम्मं णो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ । अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तं संसारकंतारं खिप्पामेव वीइवयइ ।

छन्द-धनाक्षरी

अनुप्रेक्षा से जीव, चिन्तन मननानुरूप
आयु कर्म छोड़ ज्ञानावरणीय पारै है ।
करमों की प्रकृतियाँ शिथिल करण हेतु
दीर्घ काल प्रकृति ने, मन्दता प्रचारै है
तीव्र रस अनुभाव मन्दता में परिणामे
बहु कर्म परदेश अल्पता में धारै है ।
भंजना आयुष् कर्म सात में वेद उपचय
अनादि अनन्त मुक्ति सर्वसुख सारै है ।।२२।।

(२३) धम्म-कहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
धम्मकहाए णं णिज्जरं जणयइ । धम्म-कहाए णं पवयणं पभावेइ । पवयण-पभावेणं जीवे आगमेसस्स भद्दताए कम्मं णिबंधइ ।

छन्द-बसन्ततिलका

धर्मोपदेश करता कृति निर्जरा को-
सिद्धान्त शासन सदा परिभावना को-।
सम्प्राप्त जीव, निज आयति काल में भी-
सानन्द पुण्य करमादिक बाँधता है ।।२३।।

(२४) सुयस्स आराहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
सुयस्स-आराहणयाए णं अण्णाणं खवेइ, ण य संकिलिस्सइ ।

(२५) एगग्गमणसंणिवेसणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? एगग्गमणसंणिवेसणयाए णं चित्तणिरोहं करेइ ।

आराधना यदि करे, श्रुत की, विनाश-
अज्ञान का नित करे, परिताप शून्य-।
एकाग्र रूप मन की विनियोजना से-
होता निरोध, उसका विषयादिकों से ।।२४-२५।।

(२६) संजमेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ ।
(२७) तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ?
तवेणं वोदाणं जणयइ ।

संयाम आश्रव निरोध विशेषकारी-
नैर्मल्य युक्त तप से, बनता मनस्वी ।
पूर्वार्जित प्रबल कर्म विनाशकारी
पाता, विशुद्ध महिमा भृत भव्य जीव ॥२६-२७॥

(२८) वोदाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ?
वोदाणेणं अकिरियं जणयइ । अकिरियाए भवित्त तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वायइ सव्व-दुक्खाण-मंतं करेइ ।

होती विशुद्धपन से, नितनिष्क्रियत्व
योगत्रयादि परिवृत्ति, निवृत्ति रूपा ।
हो सिद्ध, बुद्ध, परिमुक्त, विशिष्ट कृत्य-
निर्वाण लाभ करता, कर दुःख शान्त ॥२८॥

(२९) सुह-साएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
सुह-साएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ । अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगय-सोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ।

सौख्यादि शान्त गुण से, विषयाऽऽविरक्ति
औत्सुक्यहीन बन के, करता दया है ।
शोकादिहीन परिशान्त चरित्र मोह-
नीयादि-कर्म सविशेष, निरा खपाता ॥२९॥

(३०) अप्पडिबद्धयाए णं भंते जीवे किं जणयइ ? अप्पडिबद्धयाए णं णिस्संगत्तं जणयइ । णिस्संगत्तेणं जीवे एगे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि विहरइ ।

आसक्तिहीन बन जीव रहे अकेला-
निस्संग एकपन से विचरे मनोज्ञ ।
एकाग्रचित अपनी कर साधना से-
सर्वत्र संयत रमे प्रतिवद्धहीन ॥३०॥

(३१) विवित्त-सयणासणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? विवित्त-सयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ । चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए

होती विविक्त शयनासन से चरित्र-
रक्षा, तथा विकृत भोजनहीनता से ।
एकान्तशील, दृढ मुक्ति, सुभाव युक्त
अष्टाक्त कर्मचय का क्षय [illegible] ॥३१॥

मोक्खभावपडिवण्णे अट्ठविह कम्मसंगंठिं णिज्जरेइ ।

(३२) विणियट्टणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? विणियट्टणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ । पुव्व-बद्धाणं य णिज्जरणयाए पावं णियत्तेइ । तओ पच्छा चाउरन्तं संसारकंतारं वीइवयइ ।

जो इन्द्रियादि मन का करता विजै है
वो जीव पाप कृति से रहता पृथक् है।
प्राग्बद्ध कर्मचय की, कर निर्जरा को
कान्तार पार करता, बनके वशीन्द्र ॥३२॥

(३३) संभोगपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? संभोगपच्चक्खाणेणं आलम्बणाइं खवेइ। णिरालम्बणस्स य आययट्ठिया जोगा भवंति । सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं णो आसाएइ, परलाभं णो तक्केइ, णो पीहेइ, णे पत्थेइ, णो अभिलसइ । परलाभं अणस्सायमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

धनाक्षरी

संभोग के प्रत्याख्यान से, तो परालम्ब जीव
निरालम्ब भावना में, मानस सुढ़ारै है।
पुरुषार्थरत्न सारे, होते पूरे मुक्ति हेतु
अपनी उपार्जना में, तोष धृति धारै है।
दूसरों के लाभादिक, उपयोग करे नाही
अभिलाष स्पृहा अरु, याचना न सारै है।
दोषों से विमुक्त जीव शुद्ध भव्य सर्वदैव
अन्य सुख शय्या पाके जीवन विहारै है ॥३३॥

(३४) उवहिपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? उवहिपच्चक्खाणेणं अपलिमन्थं जणयइ, णिरुवहिए णं जीवे णिक्कंखी उवहिमंतरेण य ण संकिलिस्सइ ।

बसन्ततिलका

वस्त्वादि मुक्त निज की परिसाधना में-
स्वाध्याय लीन बनता निरुपाय होके।
इच्छा निरोध करके उपधी विहीन-
संक्लेश भाव परिरिक्त विशेष पाता ॥३४॥

(३५) आहार-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आहार- पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ । जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदित्ता जीवे आहारमंतरेणं ण संकिलिस्सइ ।

आहार से रहित हो, परिकामनाएं
विच्छिन्न मात्र करता, जनि वासना में।
जीवातुकाम परिमुक्त, निरा निराशी-
संक्लेश भाव लहता, न कमी, मनस्वी ॥३५॥

(३६) कसाय-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कसाय-पच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ । वीयरागभावपडिवन्ने वि य णं जीवे सम-सुह-दुक्खे भवइ ।

कषायादि. क्रोध. परित्येन. मोह रूप-
सारे कषाय परिदूषण छोड़ते है-।
होता सुजीव बनके ध्रुववीतराग-
पश्चात् समान बनता. सुख दुःख में भी ।।३६।।

(३७) जोगपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ । अजोगी णं जीवे णवं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ।

योगत्रयी. परिनिरोध. विशेष पाके-
योगत्वहीन धन की उपलब्धि होती ।
बाँधे नहीं फिर अहीन नवीन कर्म-
पूर्व प्रबद्ध कृति का करता निरास ।।३७।।

(३८) सरीर-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सरीर-पच्चक्खाणेणं सिद्धाइ-सय-गुणत्तणं णिव्वत्तेइ । सिद्धाइ-सयगुण-संपण्णे य णं जीवे लोगग्गभावमुवगए परमसुही भवइ ।

काया विसर्जन विशेष समग्रकारी-
हो. जीव सिद्ध परिनिष्ठित भावना से-।
संसिद्ध रूप धन की परिलब्धि से ही-
लोकाग्र में पहुँच के परिसौख्य पाता ।।३८।।

(३९) सहायपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ। एगीभाव-भूए वि य णं जीवे एगत्तं भावेमाणे अप्पसद्दे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्प-तुमं-तुमे संजम-बहुले संवर-बहुले समाहिए यावि भवइ ।

जो है सहाय परिहीन ममत्व रिक्त-
एकत्व रूप परिलाभ विशेष पाता ।
एकाग्र भाव लहता, न कषाय दोष
होता, समाधि युत, संयम भावना से ।।३९।।

(४०) भत्तपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? भत्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं णिरुम्भइ ।

भक्तादि का कर सदा पचखान पूर्ण-
होता, अनेक भव से, परिमुक्त जीव-।
जन्मादि मृत्यु सबसे अधिकार पाके-
मुक्ति स्वरूप निज रूप समग्र पाता ।।४०।।

(४१) सब्भावपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सब्भावपच्चक्खाणेणं अणियट्टिं जणयइ । अणियट्टि-पडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तं जहा वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं। तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

शैलेशि भाव लह के, अनिवृत्ति पाता
कैवल्य रूप अवशेष रहे, चतुष्क-।
कर्मक्षयी वलित हो, वह सिद्ध बुद्ध-
निर्वाण लब्ध करता, कर दुःख दूर ।।४१।।

(४२) पडिरूवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूएणं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थ-लिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्व पाण-भूय-जीव-सत्तेसु वीसस- णिज्ज-रूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउल-तव-समिइ समण्णागए यावि भवइ ।

छन्द-धनाक्षरी
प्रतिरूपता से जो कि, जिनकल्प सदाचार-
जीव उपकरणों की लघुता ही लहै है ।
लघुभूत जीव, अप्रमत्त हो, प्रशस्त वेग-
विशुद्ध सम्यक्त्व से, सम्पन्नता ही गहै है-।
धैर्य और समिति से, परिपूर्ण सर्वप्राण-
भूत जीव सत्त्व विसवास भाव लहै है ।
अल्प प्रतिलेखन जितेन्द्रिय विपुल तप
समिति प्रयोग सब, भाँति परिपोहै है ।।४२।।

(४३) वेयावच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
वेयावच्चेणं तित्थयर-णाम-गोत्तं कम्मं णिबंधइ।
(४४) सव्व-गुण संपण्णयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
सव्व-गुण संपण्णयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ। अपुणरावित्तिं पत्तए य णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं णो भागी भवइ ।

सेवादि से विमल तीर्थकराभिधान
गोत्रादि का नियत अर्जक हो मनस्वी ।
मोक्षोपलब्धि गुण सम्भृत पालता है
मुक्ताक्त सर्वविध वेदन शून्य होता ।।४३-४४।।

(४५) वीयरागयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
वीयरागयाए-णं णेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि

तृष्णादि नेह अनुवन्धन से, विमुक्ति-
पाता सदेव वन, सर्वस वीतराग-।
आकर्षणादि युत शव्द रसादि रूप-

य वोच्छिंदइ मणुण्णामणुण्णेसु सद्द-फरिस-रूव-रस-गंधेसु सचित्ता-चित्त- मीसएसु चेव विरज्जइ ।

स्पर्शाक्ति गन्ध चय से, बनता विमुक्त ।।४५।।

(४६) खंतीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
खंतीएणं परीसहे जिणेइ ।

(४७) मुत्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ । अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ ।

शांति स्वरूप जिस मानस में समाया
होता वही, सकल दुःख दुराधिहीन ।
निर्लोभ जीव अपरिग्रह रूप होता
अप्रार्थनीय बनता, धन लोलुपों से ।।४६-४७।।

(४८) अज्जवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
अज्जवयाएणं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसम्वायणं जणयइ । अविसंवायण संपण्णयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ।

देहादि चित्त निज भाषण सौम्यता से-
पाता सदैव सुख को, ऋजुताप्तजीव ।
अल्पाल्प रूप इसमें शठता न होती-
धर्माभिराधन वही, करता नितान्त ।।४८।।

(४९) मद्दवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ। अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपण्णे अट्ठ-मयट्ठाणाइं णिट्ठावेइ।

है मार्दवी निज अनुद्धत-भावनाभृत्
होता विनीत सुफली, मृदु पूर्णता से ।
आठों मदस्थिति विशेष विनाशकारी-
सम्पूर्णता सतत लाभ करे, मनस्वी ।।४९।।

(५०) भावसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ । भावविसोहिए

पाता विशुद्धि निज की, नित भाव सत्य
अर्हन्त दिष्ट मत की, करता समर्चा ।
आराधना कर, समग्र, परत्रलोक

(४१) सब्भावपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सब्भावपच्चक्खाणेणं अणियट्टिं जणयइ । अणियट्टि-पडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तं जहा वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं। तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

शैलेशि भाव लह के, अनिवृत्ति पाता
कैवल्य रूप अवशेष रहे, चतुष्क-।
कर्मक्षयी वलित हो, वह सिद्ध बुद्ध-
निर्वाण लब्ध करता, कर दुःख दूर ।।४१।।

(४२) पडिरूवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूएणं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थ-लिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्व पाण-भूय-जीव-सत्तेसु वीसस- णिज्ज-रूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउल-तव-समिइ समण्णागए यावि भवइ ।

छन्द-धनाक्षरी

प्रतिरूपता से जो कि, जिनकल्प सदाचार-
जीव उपकरणों की लघुता ही लहै है ।
लघुभूत जीव, अप्रमत्त हो, प्रशस्त वेग-
विशुद्ध सम्यक्त्व से, सम्पन्नता ही गहै है-।
धैर्य और समिति से, परिपूर्ण सर्वप्राण-
भूत जीव सत्त्व विसवास भाव लहै है ।
अल्प प्रतिलेखन जितेन्द्रिय विपुल तप
समिति प्रयोग सब, भाँति परिपोहै है ।।४२।।

(४३) वेयावच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
वेयावच्चेणं तित्थयर-णाम-गोत्तं कम्मं णिबंधइ।
(४४) सव्व-गुण संपण्णयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
सव्व-गुण संपण्णयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ। अपुणरावित्तिं पत्तए य णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं णो भागी भवइ ।

सेवादि से विमल तीर्थकराभिधान
गोत्रादि का नियत अर्जक हो मनस्वी ।
मोक्षोपलब्धि गुण सम्भृत पालता है
मुक्तात्त सर्वविध वेदन शून्य होता ।।४३-४४।।

(४५) वीयरागयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
वीयरागयाए-णं णेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि

तृष्णादि नेह अनुबन्धन से, विमुक्ति-
पाता सदेव वन, सर्वस वीतराग-।
आकर्षणादि युत शब्द रसादि रूप-

य वोच्छिंदइ मणुण्णामणुण्णेसु सद्द-फरिस-रूव-रस-गंधेसु सचित्ता-चित्त- मीसएसु चेव विरज्जइ ।

स्पर्शाक्ति गन्ध चय से, बनता विमुक्त ।।४५।।

(४६) खंतीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
खंतीएणं परीसहे जिणेइ ।
(४७) मुत्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ । अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ ।

शांति स्वरूप जिस मानस में समाया
होता वही, सकल दुःख दुराधिहीन ।
निर्लोभ जीव अपरिग्रह रूप होता
अप्रार्थनीय बनता, धन लोलुपों से ।।४६-४७।।

(४८) अज्जवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ?
अज्जवयाएणं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसम्वायणं जणयइ । अविसंवायण संपण्णयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ।

देहादि चित्त निज भाषण सौम्यता से-
पाता सदैव सुख को, ऋजुताप्तजीव ।
अल्पाल्प रूप इसमें शठता न होती-
धर्माभिराधन वही, करता नितान्त ।।४८।।

(४९) मद्दवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ। अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपण्णे अट्ठ-मयट्ठाणाइं णिट्ठावेइ।

है मार्दवी निज अनुद्धत-भावनाभृत्
होता विनीत सुफली, मृदु पूर्णता से ।
आठों मदस्थिति विशेष विनाशकारी-
सम्पूर्णता सतत लाभ करे, मनस्वी ।।४९।।

(५०) भावसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ । भावविसोहिए

पाता विशुद्धि निज की, नित भाव सत्य
अर्हन्त दिष्ट मत की, करता समर्चा ।
आराधना कर, समग्र, परत्रलोक

वट्टमाणे जीवे अरहंत पण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ । अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग-धम्मस्स आराहए भवइ ।

संसेवना वह करे, जिन धर्म की ही ॥५०॥

(५१) करणसच्चे णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ । करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ ।
(५२) जोगसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ ।

कार्यादि सत्य कृति से शुभ शक्ति पाता
जो भी कहे, नियत वो करता वही है ।
योगत्रयी वलित साधक साधना से-
योग स्वरूप नित लीन, करे विशुद्ध ॥५१-५२॥

(५३) मणगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणयइ।
एगग्गचित्ते-णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ।

एकाग्रभाव लहता, मन गुप्तिधारी
रक्षा करे, सतत दोष समूह से भी ।
आराधना नियत संयम का, करे वो
सन्ताप रूप अटवी पर, पार जाता ॥५३॥

(५४) वय-गुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? वयगुत्तयाए णं णिव्वियारं जणयइ । णिव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहण-जुत्ते यावि हवइ ।

वाग्गुप्ति धार कर के नित निर्विकारी
पाता स्वरूप अपना अविलम्ब जीव ।
अध्यात्म साधन विशेष सरूप हेतु
ध्यानादि पूर्ण बनता परिशुद्ध बुद्ध ॥५४॥

(५५) कायगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ । संवरेणं काय-गुत्ते पुणो पावासवणिरोहं करेइ।

संकाय गुप्ति धन से, अशुभ प्रवृत्ति
होती निरुद्ध, नित संवर जीव पाता ।
आश्रव निरोध कर, काय सुगुप्त होके
पापाश्रवादि चय का, करता निरोध ॥५५॥

(५६) मणसमाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ। एगग्गं जणइत्ता णाण-पज्जवे जणयइ। णाण-पज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च णिज्जरेइ ।

आप्तागमोक्त-परिभावन चिन्तना से-
एकाग्रता नियत रूप, सुलब्ध होती ।
ज्ञानादि के विविध तत्त्व, विबोध से भी-
सम्यक्त्व युक्त जिनदर्शन, शुद्ध होता ।।५६।।

(५७) वयसमाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वयसमाहारणयाए णं वय-साहारण दंसणपज्जवे विसोहेइ । वयसाहारणदंसण-पज्जवे विसोहित्ता सुलहबोहियत्तं णिव्वत्तेइ, दुल्लहबोहियत्तं णिज्जरेइ।

स्वाध्याय में सततलीन सदा वचों से-
होते, विशुद्ध जिनदर्शन के प्रकार-।
बोधित्व लाभ उसको सविशेष युक्त-
अज्ञान भाव पल में परिनष्ट होता ।।५७।।

(५८) कायसमाहारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ, चरित्तपज्जवे विसोहित्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ। अहक्खायचरित्तं विसोहित्ता चत्तारिकेवलि-कम्मं से खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्व-दुक्खाणमंतं करेइ।

छन्द-धनाक्षरी

संयम प्रपालना से जीव निज चरित के
दर्शन के पर्यायों को परिशुद्ध करै है ।
उससे तो यथाख्यात चारित्र विशुद्ध होवे-
केवली के कर्म वेदनीय चरि छरै है ।
कृत्स्न कर्म नाशन से रत्नत्रय प्राप्तकरि
नव होके सिद्ध बुद्ध मुक्त परिसरै है ।
परिनिरवान पाके सत-चित-आनन्द हो
सकल-भवोदधि के दुख जरि जरै है ।।५८।।

(५९) णाण-संपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? णाण- संपण्णयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ । णाण- संपण्णे णं जीवे चाउरन्ते संसार-कंतारे ण विणस्सइ। जहा सूई ससुत्ता, पडिया विण विणस्सइ।

ज्ञान परिपूर्ण-जीव सब भाव जान लेत
चार गति रूप भव वन मों न नाशै है ।
यथा सूची सूत्र संग गिर के न नष्ट होत
श्रुत पूत जीव भी न कबहू विनाशै है ।
ज्ञान बिनै तप अरु चारित्र को पावे पूर

तहा जीवे ससुत्ते, संसारे ण विणस्सइ।।
णाण-विणय-तव-चरित्त-जोगे सम्पाउणइ ससमय-परसमय-विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ।

सूर सम बोध दुति सतत विभासै है ।
स्व पर सिद्धान्त पारंगत होके जग मांहि
प्रामाणिक रूप होके, संसद में भासै है ।।

(६०) दंसण-संपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? दंसण-संपण्णयाए णं भव-मिच्छत्त-छेयणं करेइ, परं ण विज्झायइ । परं-अविज्झायमाणे अणुत्तरेणं णाण-दंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ।

छन्द-बसन्ततिलका

मिथ्यात्व छिन्न बनता दृढ दर्शनों से-
सम्यक्त्व दीप जलता अविरामकारी ।
ज्ञानादि दर्शन सुयोजित रूप जीव-
आत्म स्वरूप पथ पै विचरे पुनीत ।।

(६१) चरित्त-संपण्णयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चरित्त-संपण्णयाए णं सेलेसीभावं जणयइ । सेलेसिं पडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

शैलेश भाव लहता चरण क्रिया से-
नाशै, प्रशस्ततम केवलि चार कर्म ।
हो शुद्ध बुद्ध गत, सिद्ध शिला समीप-
निर्वाण लब्ध कर, अन्त करे दुःखों का ।।

(६२) सोइंदिय-णिग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु राग-दोस- णिग्गहं जणयइ । तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ।

श्रौतेन्द्रियादि परिनिग्रह से मनोज्ञ
शब्दादि से वलित राग तथैव अन्य-।
द्वेषादि का शमन भी करता सदैव-
संपूर्वबद्ध कृति की नित निर्जरा हो ।।६

(६३) चक्खिदिय-णिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिदिय-णिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु राग-दोस-णिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ।

नेत्राक्ष निग्रह मनोज्ञ तथा अरम्य
रूपादि जन्य जयशील विशेष रूप ।
द्वेषादि राग परिनिग्रह भी करे वो-
कर्म प्रहीन, कृत कार्मण निर्जरा भी ।।६

किं जणयइ ? माया-विजए णं अज्जवं जणयइ। माया-वेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं य णिज्जरेइ।

(७०) लोह-विजए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? लोभ-विजएणं संतोसं जणयइ, लोह-वेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ, पुव्वबद्धं य णिज्जरेइ ।

लोभादि के विजय से, परितोष पाता
सन्तुष्ट जीव रहता, निज साधना में ।
है बाँधता न फिर, लालच वेद कर्म
प्राग्बद्ध का नित करे परिनिर्जरा भी ।।७०।।

(७१) पेज्ज-दोस- मिच्छादंसणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

पेज्ज - दोस मिच्छादंसणविजएणं णाण-दंसण चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठि-विमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणु । पुव्वीए अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं णाणावरणिज्जं, णव-विहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अंतराइयं, एए तिण्णिवि कम्मंसे जुगवं खवेइ। तओ पच्छा अणुत्तरं अणन्तं कसिणं-पडिपुण्णं णिरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगालोगप्पभावं केवलवर णाण-दंसणं समुप्पाडेइ जाव सजोगी भवइ, ताव इरियावहियं कम्मं णिबंधइ सुहफरिसं दुसमय ठिइयं । तंजहा पढमसमए बद्धं बिइयसमए वेइयं, तइयसमए णिज्जिण्णं, तं बद्धं पुट्ठं उदीरियं वेइयं णिज्जिण्णं सेयाले य अकम्मं या वि भवइ ।

छन्द-धनाक्षरी

प्रेय द्वेष मिथ्या दर्शन विजै से जीव नित
ज्ञान दर्श चरित्र आराधना सजावै है ।
अष्टविध कर्मण को कर्मग्रन्थि भेदिवे को
मोहनीय कर्म, सर्व प्रकृति छयावै है ।
ज्ञानावरणीय कर्म, पाँच दर्शनावरण-
गत नव अन्तराय, पाँच हू खयावै है ।
बाद में अनुत्तर अनन्त सर्व वस्तु विषै-
पूर्ण निरावरण केवल ज्ञान पावै है ।
केवल प्रबोध संग केवल दर्शन होत-
रहते सयोगी ऐर्यापथिक बँधावै है ।
साता वेदनीय पुण्य कर्म रूप बन्धवे तो
थिति दो समय की है, नियत सुहावै है ।
प्रथम में, बन्ध, दूजे उदय, तृतीय काल
बद्ध स्पृष्ट उदित को, भोग निर्जरावै है ।
कृत्स्न कर्म क्षय, मोक्ष पदवी को प्राप्त होत
अन्तकाल कर्म हूँ, अकर्म वनि जावै है ।।७१।।

(७२) अहआउयं पालइत्ता अंतो-मुहुत्तद्धावसेसाए जोग-णिरोहं करेमाणे सुहुम किरियं अप्पडिवाइं सुक्कज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोगं णिरुम्भइ, वयजोगं णिरुम्भइ, कायजोगं णिरुम्भइ, आणपाणणिरोहं करेइ, ईसि पंचहस्सक्खरुच्चारणद्वाए य णं अणगारे समुच्छिण्णकिरियं अणियट्टि-सुक्कज्झणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं णामं गोत्तं य एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ ।

केवल सुज्ञान प्राप्त. होने के पश्चात् शेष
आयु भोगे, अन्तर मुहूर्त योग रोधै है ।
सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती शुक्ल. ध्यान ध्यवे मन्न
मनोयोग प्रथम प्रपंच से निरोधै है ।
बाद में वचन योग श्वासोच्छ्वास रोधकरि
समुछिन्न क्रिया अनवृत्ति शुक्ल सोधै है ।
स्वल्पकाल अनगार आत्मरूप ध्यान लीन
वेदनीय, नाम, गोत्र. आयुष विरोधै है ।।७२।।

(७३) तओ ओरालिय- तेय-कम्माइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जु-सेढिपत्ते अफुसमाण गई उड्ढं एग-समएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चई परिणिव्वायइ सव्व-दुक्खाणं अंतं करेइ।

अर्थपूर्ण औदारिक कार्मण शरीर त्याग
काम को विलीन करि ऋजुगति पावै है ।
अस्पृशत गति रूप उर्ध्वगति धार कर
बिना मोड़ लिये, सीधे लोकाग्र मेंजावै है ।
साकारोपयुक्त ज्ञान उपयोग सिद्ध होत
सकल प्रपंच-रिक्त विमल सुहावै है ।
शुद्ध बुद्ध सकल निरापद निरामय हो
सर्वदुख अन्त करि मुक्ति मध्य छावै है ।

एस खलु सम्मत्त- परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए पण्णविए परूविए दंसिए णिदंसिए उवदंसिए।। त्तिबेमि ।।

छन्द-बसन्ततिलका

सर्वज्ञ वीर विभु ने सुविवेचना की
सम्यक् पराक्रमण अध्ययन क्रिया की ।
आख्यात दिष्ट उपदिष्ट तथैव उक्त-
प्रज्ञापना अरु निरूपण है मनोज्ञ ।।७३।।

३० अध्ययन : तपोमार्गगति

अध्ययन–सूत्र संकेत

- अध्ययन का नाम तपोमार्गगति है। तपस्या के मार्ग की ओर गति पुरुषार्थ का निर्देशक यह अध्ययन है।
- तप मोक्षप्राप्ति का एक विशिष्ट साधन है। कर्मनिर्जरा और आत्मविशुद्धि का यह सर्वोत्कृष्ट साधन है। कोटि–कोटि साधकों ने तप·साधना को अपना कर ही अपनी आत्मशुद्धि की, आत्मा पर लगे हुए कर्मदलिको का क्षय किया और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।
- किन्तु तप को सम्यक्रूप से आराधना करने का उपाय न जाना जाए और तप के साथ माया, निदान, मिथ्यादर्शन, भोगाकांक्षा, लौकिक फलाकाक्षा आदि दूषणो को जोड दिया जाए तो वह तप, मोक्षप्राप्ति या कर्ममुक्ति का साधन नही होता। इसलिए तप के साथ उसका सम्यक्मार्ग जानना भी आवश्यक है और उस पर गति–पुरुषार्थ करना भी। अत यह सब प्रतिपादन करने वाला यह अध्ययन सार्थक है।
- तप के दो प्रकार कहे गए है–बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप के 6 प्रकार है–अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षाचर्या), कायक्लेश और प्रतिसलीनता।
- आभ्यन्तर तप के भी 6 प्रकार बताए गए है–प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।
- तप से पूर्वसंचित कर्मो का क्षय, आत्मविशुद्धि, मन–वचन–काया की प्रवृत्ति का निरोध, अक्रियता, सिद्धि, मुक्ति प्राप्त होती है।
- इसलिए प्रस्तुत अध्ययन तपश्चरण का विशुद्ध मार्ग निर्देशन करने वाला है। इसकी सम्यक् आराधना से जीव विशुद्धि की पूर्णता तक पहुँच जाता है।

३०. तपोमार्गगति

जहा उ पावगं कम्मं,
राग-दोस समज्जियं ।
खवेइ तवसा भिक्खू,
तमेगग्ग-मणो सुण।।१।।

द्वेषादि राग पथ से अघरूप कर्म-
सम्प्राप्ति को. सुतप से क्षय साधना से ।
जो पद्धती समुपयुक्त वहाँ विशेष-
एकाग्रचित्त करके, उसको सुनो तू ।।१।।

पाणिवह-मुसावाया,
अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ ।
राईभोयण-विरओ,
जीवो भवइ अणासवो।।२।।

हिंसा मृषादिक अदत्त परिग्रहादि-
है मैथुनादि विरती जिसमें नितान्त-।
रात्रि प्रभुक्ति वृति में न कभी ससक्त-
वो ही अनाश्रव विशेष सदा कहाता ।।२।।

पंच-समिओ तिगुत्तो,
अकसाओ जिइंदिओ ।
अगारवो य णिस्सल्लो,
जीवो होइ अणासवो।।३।।

जो पाँच रूप समिती अरु गुप्ति तीन-
से वो कषाय करता क्षय गो विजेता-।
गर्व प्रहीन वृति संवृत शल्यमुक्त-
होता, अनाश्रव विशेष तपी, मनस्वी ।।३।।

एएसिं तु विवच्चासे,
राग दोस-समज्जियं ।
खवेइ उ जहा भिक्खू,
तमेगग्ग-मणो सुण।।४।।

पूर्वोक्त धर्म परिसाधन से पृथक् हो
आचार से सयुत हो, वह राग युक्त-
द्वेषादि अर्जित कृती, करता विनष्ट
कैसे यती, नित करे सुनिये सहर्ष ।।४।।

जहा महा-तलायस्स,
सण्णिरुद्धे जलागमे ।
उस्सिंचणाए तवणाए,
कमेणं सोसणा भवे।।५।।

जैसे सरोवर अगाध जलौध शुष्क-
होता जलागमन मार्ग, निरोधना से ।
पूर्व प्रपूर्ण जल की परिसारणा से-
तिग्मांशुरश्मि चय की, परितापना से ।।५।।

एवं तु संजयस्सावि,
पावकम्म-णिरासवे ।
भव-कोडी संचियं कम्मं,
तवसा णिज्जरिज्जइ।।६।।

वैसे सहस्र भव संचित कर्म का भी-
सम्यक् प्रबुद्ध परिसंयम साधकों के-।
आश्रव निरोध कृति से परिनाश होता
सन्तप्त घोर तप से, क्रमशः सदैव ।।६।।

सो तवो दुविहो वुत्तो,
बाहि-रब्भन्तरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो,
एव-मब्भंतरो तवो।।७।।

दो दो प्रकार तप की परिदेशना है
आभ्यन्तरादिक बहिर् विध षट्करूप ।
आभ्यन्तरीय विध षट्क विशिष्टशाली-
सर्वज्ञदेव विभु की, यह देशना है ।।७।।

अणसण-मूणोयरिया,
भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
काय-किलेसो संलीणया,
य बज्झो तवो होइ।।८।।

भिक्षाचरी अनशनादि रसादि तीन
ऊनोदरीक अरु काय-किलेश योग्य ।
संलीनता छह गिने तप बाह्य रूप
उद्दिष्ट है, विभु विवेचन में मनोज्ञ ।।८।।

छन्द-धनाक्षरी

इत्तरिय मरण-काला य,
अणसणा दुविहा भवे ।
इत्तरिय सावकंखा,
णिरवकंखा उ बिइज्जिया।।९।।
जो सो इत्तरिय-तवो,
सो समासेण छव्विहो ।
सेढि तवो पयरतवो,
घणो य तह होइ वग्गो य।।१०।।

प्रथम है, अनशन, बाहरी तपस्या रूप
इसके भी दुइ भेद, कल कहियतु है ।
इत्वरिक सावकांक्ष, प्रथम प्रसिद्ध शास्त्र
नियत उवासवाद भोज्य लहियतु है ।
याको भेद छह श्रेणी प्रतर सुघन तप
वर्ग वर्गवर्ग, परकीर्ण सहियतु है ।
मनोरथ पूरन, हरन, दुःख द्वन्द्व द्वैत
इत्वरिक अनशन, तप जनियतु है ।।९-११।।

तत्तो य वग्ग-वग्गो,
पंचमो छट्ठओ पइण्ण तवो ।
मण-इच्छिय चित्तत्थो,
णायव्वो होइ इत्तरिओ।।११।।

जा सा अणसणा मरणे,
दुविहा सा वियाहिया ।
सवियार-मवियारा,
कायचिट्ठं पई भवे।।१२।।
अहवा सपरिकम्मा,
अपरिकम्मा य आहिया ।
णीहारि-मणीहारी,
आहारच्छेओ दोसु वि।।१३।।
ओमोयरणं पंचहा,
समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्त कालेणं,
भावेणं पज्जवेहि य।।१४।।

दूजा भेद मृत्युकाल अनशन दूइ भेद-
सविचार मध्यकाल परिवर्त होवै है ।
ताहि विपरीत अविचार होत अन्य भेद-
सपरि अपरिकर्म गुण मध्य पावै है ।
अविचार अनशन निरहारी (अनिर्हारी)
दोनों में आहार परित्याग ही संजोवै है ।
द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, अरु परजायापेक्ष
अनोदरिका के भेद पाँच परिजावै है ।।१२-१४।।

जो जस्स उ आहारो,
तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहण्णे-णेग सित्थाई,
एवं दव्वेण ऊ भवे।।१५।।
गामे णगरे तह रायहाणि,
णिगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कब्बड-दोणमुह,
पट्टण-मडम्ब-सम्बाहे।।१६।।
आसम-पए विहारे,
सण्णिवेसे समाय-घोसे य ।

परिमित भोजन सूं कण ग्रास कम करि
अल्प भोज्य करना भी द्रव्य से ऊनोदरी ।
ग्राम नग्र राजधानी निगम आकर पल्ली
नियत भिक्षाचरी है क्षेत्र से ऊणोदरी ।
दिवस के चार प्रहरों में भी नियतकाल
भिक्षा हेतु विचरण काल से ऊणोदरी ।
अमुक विशिष्ट वर्ण भाव से संयुक्त दाता-
से ही भिक्षा ग्रहण है, भाव से ऊणोदरी ।।१५-१८।।

थलिसेणा-खंधारे,
सत्थे संवट्ट-कोट्टे य।।१७।।
वाडेसु वा रत्थासु वा,
घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं ।
कप्पइ उ एवमाई,
एवं खेत्तेण उ भवे।।१८।।

पेडा य अद्धपेडा,
गोमुत्ति-पयंग-वीहिया चेव ।
सम्बुक्का वट्टाय य गंतुं,
पच्छागया छट्ठा।।१६।।
दिवसस्स पोरुसीणं,
चउण्हं-वि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एवं चरमाणो खलु,
कालोमाणं मुणेयव्वं।।२०।।
अहवा तइयाए पोरिसीए,
ऊणाइ घास-मेसन्तो ।
चऊभागूणाए वा,
एवं कालेण उ भवे।।२१।।
इत्थी वा पुरिसो वा,
अलंकिओ वा णालंकिओ वावि ।
अण्णयर-वयत्थो वा,
अण्णयरेणं व वत्थेणं।।२२।।
अण्णेण विसेसेणं,
वण्णेणं भाव मणु-मुयंते उ ।
एवं चरमाणो खलु,
भावोमाणं मुणेयव्वं।।२३।।

मध्य के गृहों का त्याग, चारों श्रेणियों में भिक्षा
पेटा, अर्धपेटा हुई श्रेणियों में चरै है ।
टेढ़े मेढ़े भ्रमण से भिक्षा को ग्रहण करे
गोमूत्रिका रूप यथाकाल विधि वरै है ।
मध्य-मध्य गृह त्याग, चमके पतंग सम
वा पतंगवीथिका सूं मुनि सार सारै है ।
बाहर से भीतर, भीतर से बाहर आवे
शम्बूक आवर्त प्रत्यागता माँहि चरै है ।।१६-२३।।

दव्वे खेत्ते काले,
भावम्मि य आहिया उ जे भावा ।
एएहिं ओमचरओ,
पज्जव-चरओ भवे भिक्खू।।२४।।
अट्ठविह-गोयरग्गं तु,
तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अण्णे,
भिक्खायरिय-माहिया।।२५।।
खीर-दहि-सप्पि-माई,
पणीयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु,
भणियं रसविवज्जणं।।२६।।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव में जो परिभाव व्यक्त
युक्त तपी पर्यवचरक कहलावै है ।
अष्टविध गोचराग्र, सप्त एषणा विशिष्ट
अन्य अभिग्रह भिक्षाचरी मन भावै है ।
संसृष्टा असंसृष्टा रु उद्धता अलपलेपा
अप्रगृहीत उज्झित चरम सुहावै है ।
सप्त एषणाए पान भोजन रसादि त्याग
रस परित्याग तप नित जय पावै है ।।२४-२६।।

ठाणा वीरासणाईया,
जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जंति,
काय-किलेसं तमाहियं।।२७।।

छन्द-बसन्ततिलका

आत्मार्थ सौख्य कर संस्थिति योग रूप
वीरासनादि दृढ आसन का अजस्र ।
अभ्यास पूत तप का बनता सहाय
वो काय दुःख विधि से श्रुत में कहा है ।।२७।।

एगंत-मणावाए,
इत्थी-पसु-विवज्जिए ।
सयणासण-सेवणया,
विवित्त सयणासणं।।२८।।

एकान्त मानव विहीन समाधिकारी
संचारयुक्त पशु और गृहांगना से ।
संस्थान में शयन आसन का प्रयोग
सम्यक् तपश्चरण तो प्रतिलीनता है ।।२८।।

एसो बाहिरगं तवो,
समासेण वियाहिओ ।
अब्भिन्तरं तवं एत्तो,
वुच्छामि अणुपुव्वसो।।२९।।

संक्षेप से कथन वाह्य तपस्थिती का-
पूरा हुआ, इतर की यह रूपणा है ।
प्रायश्चिती विनय सेवन धान धैर्य-
स्वाध्याय है अचल काम विशेष सर्ग ।।२९।।

पायच्छित्तं विणओ,
वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं य विउस्सग्गो,
एसो अब्भिन्तरो तवो।।३०।।
आलोयणा-रिहाईयं,
पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जं भिक्खू वहई सम्मं,
पायच्छित्तं तमाहियं।।३१।।
अब्भुट्ठाणं अंजलि-करणं,
तहेवासण-दायणं ।
गुरुभत्ति-भाव-सुस्सूसा,
विणओ एस वियाहिओ।।३२।।
आयरिय-माईए,
वेया-वच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहाथामं,
वेयावच्चं तमाहियं।।३३।।
वायणा पुच्छणा चेव,
तहेव परियट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा,
सज्झाओ पंचहा भवे।।३४।।

छन्द-धनाक्षरी

आलोचना योग्य दस विध प्रायश्चित्त होवे
भिक्षु जाहि सम्यक् प्रकार परिपालै है ।
गुरुजन आवे खड़ा होवे हाथ जोड़े भक्ति
विनय आसन देना भक्ति भाव झालै है ।
वैयावृत आचारज दसविध आसेवन
पंचविध स्वाध्याय को मन मांहि ढालै है ।
वाचना रु पृच्छनानुप्रेक्षा परिवर्तना तो
धर्म कथा संग विधि योग से निभालै है ।।३०

अट्ट-रुद्दाणि वज्जित्ता,
झाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्म-सुक्काइं झाणाइं,
झाणं तं तु बुहा वए।।३५।।
सयणासण ठाणे वा,
जे उ भिक्खू ण वावरे ।

आर्तरौद्र ध्यान त्याग, सावधान हो के मुनि
धर्म शुक्ल ध्यान धरि भावना सुध्यावै है ।
ध्यान तप वाको कहे धर्म की समाधि हेतु
विषय से दूर हो के चित्त वृत्ति चावें है ।
व्युत्सर्ग है षष्ठ तप सोने तथा बैठने में
स्थिती में न व्यर्थ चेष्टा भूलकर आवें है ।

कायस्स विउस्सग्गो,
छट्ठो सो परिकित्तिओ।।३६।।
एवं तवं तु दुविहं,
जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्पं सव्व संसारा,
विप्पमुच्चइ पंडिओ।।३७।।

बोधी मुनी उभय प्रकार की तपस्या करि
शीघ्र सर्व संसार से मुक्ति निधि पावै है ।।३५-३७।।

३१ अध्ययन : चरणविधि

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम चरणविधि (चरणविही) है। चारित्रविधि का अर्थ है– चारित्र में विवेकपूर्वक प्रवृत्ति। चारित्र का प्रारम्भ संयम से होता है। अतः असंयम से निवृत्ति और विवेक–पूर्वक संयम में प्रवृत्ति ही चारित्रविधि है।
- चारित्रविधि का प्रारम्भ संयम से होता है, इसलिए उसकी आराधना– साधना करते हुए जिन विषयो को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए, उन्हीं का इस अध्ययन में संकेत है। एक बोल से लेकर 33 वें बोल तक का इसमें चारित्र का विविध पहलुओ से निरूपण है। उदाहरणार्थ–साधु असंयम से दूर रहे, क्योंकि राग और द्वेष, ये चारित्र मे स्खलना पैदा करते है, त्रिविध दण्ड, शल्य और गौरव से निवृत्त हो, तीन प्रकार के उपसर्गों को सहन करने से चारित्र उज्ज्वल होता है। विकथा, कषाय, सज्ञा और अशुभ ध्यान, ये त्याज्य हैं।
- निष्कर्ष यह है कि साधक को दुष्प्रवृत्तियों से, असंयमजनक आचरणों से दूर रहकर सत्प्रवृत्तियों और संयमजनक आचरणों में प्रवृत्त होना चाहिए। इसका परिणाम संसारचक्र के परिभ्रमण से मुक्ति के रूप में प्राप्त होता है।
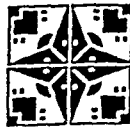
३१. चरणविधि

चरण-विहिं पवक्खामि,
जीवस्स उ सुहावहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा,
तिण्णा संसार-सागरं।।१।।

जीवादि को सुखद लाभ विशेष हेतु
चारित्र रूप-विधि को कहता विशिष्ट ।
सम्यक् समाचरण की परिपालना से-
संसार तीर्ण करता, भव मध्यचारी ।।१।।

एगओ विरइं कुज्जा,
एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे णियत्तिं य,
संजमे य पवत्तणं।।२।।

संसाधना परक का, यह लक्ष्य होवे
हो एक ओर गति, अन्य दिशा निवृत्ति ।
संयाम में रत रहे, व् असंयमी की-
दुर्भावना विरत हो, विचरे तपस्वी ।।२।।

रागे दोसे य दो पावे,
पावकम्म-पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।३।।

पापादि मूल गति रूप सरागता है
द्वेष स्वरूप, जिनकी गति रोधता है ।
ऐसा पवित्र, शुभ संयम यान रोही
संसार मुक्ति लहता, रुकता नहीं है ।।३।।

दंडाणं गारवाणं च,
सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।४।।

संदण्ड तीन अरु गौरव शल्य तीन
छोड़े सदैव मनसे परिहेय भिक्षु ।
दोषादि की विरति, पाप निवृत्ति होती
होके, विमुक्त सृति में, रुकता नहीं है ।।४।।

दिव्वे य जे उवसग्गे,
तहा तेरिच्छ-माणुसे ।
जे भिक्खू सहइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।५।।

तिर्यग् मनुष्य अमरादिक जन्य तीव्र
सर्वोपसर्ग अनगार सहे सहर्ष ।
निर्लेपभाव परिभूषित शुद्ध चित्त
संसार को वह सदा करता परीत्त ।।५।।

विगहा-कसाय-सण्णाणं,
झाणाणं च दुयं तहा ।
जे भिक्खू वज्जइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।६।।

जो संयती विकथनादि विवर्जनी हो
संज्ञादि का त्यजन भी करता सदैव ।
ध्यानार्त रौद्र तजता, परिहेय मान
संसार में, न रुकता, निज साधना से ।।६।।

वएसु इंदियत्थेसु,
समिईसु किरियासु य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।७।।

जो पाँच रूप यम पै अधिकार युक्त
गो रूप का दमन ही, जिसको सुहाता ।
जो है क्रिया-विरस, इन्द्रिय का विजेता
संसार तीर्ण करता, भवभीति शून्य ।
सम्यक्त्व चार, विधि की व्रतती विशेष-
संपालनार्थ तजता, विषयादिकों को-।
लग्न क्रियादि, परिहार सदा करे जो-
संसार में न बँधता, नर संयमी हो ।।७।।

लेसासु छसु काएसु,
छक्के आहार-कारणे ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।८।।

लेश्यादि षट्क पृथिवी छह काय में भी
आहार के नियत, निश्चल कारणों में ।
पूर्णोपयोग रखता, मन से सदैव
संसार में न रुकता, नर साधनार्थी ।।८।।

पिंडोग्गह पडिमासु,
भय-ट्ठाणेसु सत्तसु ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।९।।

आहार के ग्रहण की, प्रतिमादिकों में
स्थानादि सप्त भय में, सविशेष युक्त ।
भिक्षू सदैव रखता उपयोग पूर्ण
संसार में न रुकता, वह भूल के भी ।।९।।

मएसु बम्भ-गुत्तीसु,
भिक्खु-धम्मम्मि दसविहे ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१०।।

होता प्रमत्त जग में न, कभी विनम्र
सद्ब्रह्मचर्य विधि में निगृहीत चित्त ।
पूर्णोपयोग रखता, मुनि धर्म में जो
संसार में न रुकता, वह साधुजीव ।।१०।।

उवासगाणं पडिमासु,
भिक्खूणं पडिमासु य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।११।।

होता उपासक विशेष, समग्र भिक्षु
दोनों प्रकार पतिमा वह धारता है ।
जो सावधान बन के उपयोग पाले
संसार पार करता, ध्रुव लोक गामी ।।११।।

किरियासु भूय-गामेसु,
परमा-हम्मिएसु य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१२।।

सम्यक् क्रियादि भव जीव-कदम्बकों में
देवादि में, परम धर्म विवर्जितात्म ।
पूर्णोपयोग रखता नित सावधान
संसार में न भटके वह भव्यजीव ।।१२।।

गाहा-सोलसएहिं,
तहा असंजमम्मि य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१३।।

जो सूत्रकृत्प्रथम खन्ध विभाग बद्ध-
ध्यानावसक्त रखता नित षोडशों में-।
वैसे असंयम विषै सततोपयोग-
संसार रूप अटवी वह पार जाता ।।१३।।

बम्भम्मि णाय-ज्झयणेसु,
ठाणेसु य असमाहिए ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१४।।

ज्ञानादि पाठ असमाधि पदादिकों में
वीर्यादि रक्षण विधान सुपालना में ।
पूर्णोपयोग रखता, मन से तपस्वी
वो नाव पार भव से करता अवश्य ।।१४।।

एगवीसाए सबले,
बावीसाए परीसहे ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१५।।

इक्कीस दोष शवलीय परीषहों में-
भिक्षूपयोग बनता सतत क्रिया में ।
आत्मा समुन्नत गती लहरा सदैव
संसार मध्य वह तो, रहता नहीं है ।।१५।।

तेवीसाए सूयगडेसु,
रूवाहिएसु सुरेसु य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१६।।

तेईस अध्ययन सूत्रकृत प्रयुक्त
रूपाधिकीय चउविंशति देवता में ।
पूर्णोपयोग रखता, विनिवृत्त काम
संसार में न रुकता, परलोकयामी ।।१६।।

पणवीस-भावणासु,
उद्देसेसु दसाइणं ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१७।।

जो पंचविंश विध संस्कृत भावनाओं
उद्देश्य में, सतत पूर्ण दशादिकों में-।
पूर्णोपयोग रखता, विनियोगशाली
संसार मध्य रुकता, न निज क्रिया में ।।१७।।

अणगार-गुणेहिं च,
पगप्पम्मि तहेव य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१८।।

जो संयतीय गुण में अरु कल्प युक्त
आचार सूत्र विधि में, मनसा मनस्वी ।
पूर्णोपयोग करता, विनिपातरोधी
संसार तीर्ण करता, वह चारु चित्त ।।१८।।

पावसुय-प्पसंगेसु,
मोह-ठाणेसु चेव य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।१६।।

पापश्रुतादि विधि में विधिवत् विधिज्ञ
मोहादि में न मन को, करता कदापि ।
पूर्णोपयोग रखता वह संयती जो-
संसार में न रहता, अनिकेतचारी ।।१६।।

सिद्धाइ गुण जोगेसु,
तेत्तीसासायणासु य ।
जे भिक्खू जयइ णिच्चं,
से ण अच्छइ मंडले।।२०।।

इक्तीस सिद्ध गुण संग, तथैव योग
तैंतीस आशतन में, वह सावधान ।
पूर्णोपयोग रखता यदि संयती हो
संसारतीर्ण करता, विनिमुक्त पाप ।।२०।।

इय एएसु ठाणेसु,
जे भिक्खू जयई सया ।
खिप्पं सो सव्व-संसारा,
विप्प मुच्चइ पंडिओ।।२१।।

जो बुद्ध शुद्ध हित साधक भव्य भिक्षु
स्थानादि में, सतत लक्ष्य निरूढ होके ।
पूर्णोपयोग रखके निज साधना से-
उत्तीर्ण नाव करता, भव सिन्धु से है ।।२१।।

३२ अध्ययन : प्रमादस्थान

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम प्रमादस्थान (पमायट्ठाणं) है। इसमें प्रमाद के स्थलों का विवरण प्रस्तुत करके उनसे दूर रहने का निर्देश है।
- मोक्ष की यात्रा में प्रमाद सबसे बड़ा विघ्न है। वह एक प्रकार से साधना को समाप्त कर देने वाला है। अत प्रस्तुत अध्ययन मे प्रमाद के सहायकों–राग, द्वेष, कषाय, विषयासक्ति आदि से दूर रहने का स्थान–स्थान पर संकेत किया गया है।
- दुःखो के मूल अज्ञान, मोह, रागद्वेष, आसक्ति आदि है, इनसे व्यक्ति दूर रहे तो ज्ञान का प्रकाश होकर अज्ञान, रागद्वेषमोहादि का क्षय हो जाने पर एकान्त आत्मसुखरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।
- मोक्षप्राप्ति के उपायों मे सर्वप्रथम सम्यग्ज्ञान का प्रकाश होना आवश्यक है।
- तत्पश्चात् चारित्रपालन में जागृति की दृष्टि से परिमित एषणीय आहार, निपुण तत्त्वज्ञ साधक का सहयोग, विविक्त स्थान का सेवन प्रतिपादित किया गया है।
- तत्पश्चात् एकान्तवास, अल्पभोजन, विषयो में अनासक्ति, दृष्टिसंयम, मन–वचन–काया का सयम, चिन्तन की पवित्रता आदि साधन चारित्रपालन में जागृति के लिए बताए है।
- तत्पश्चात् राग, द्वेष, मोह, तृष्णा, लोभ आदि प्रमाद की शृंखलाओं को सुदृढ करने वाले विचारो से दूर रहने का संकेत किया है।
- अन्त मे बताया है–इनसे विरक्त होकर रागद्वेषविजयी साधक वीतराग बन कर चार घातिकर्मों का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और सर्वदुःखो से रहित हो जाता है।

३२. प्रमादस्थान

अच्चंत-कालस्स समूलगस्स,
सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ।
तं भासओ मे पडिपुण्ण-चित्ता,
सुणेह एगंत-हियं हियत्थं।।१।।

अत्यन्त काल परिजात दुखादिकों के-
सम्यक् निदान परिमुक्ति उपाय रूप-।
आह्लाद पूर्ण हितकारि विधानयुक्त-
व्याख्या सुने, भविक भावुक भावना से ।।१।।

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं।।२।।

सम्पूर्ण बोध विधु की अवभासना से-
अज्ञान मोह मदिरा परिवर्जना से-।
द्वेषादि राग विष की विनिवर्तना से
एकान्त सौख्य निधि मोक्ष अवश्य पाता ।।२।।

तस्सेस मग्गो गुरु विद्धसेवा,
विवज्जणा बाल-जणस्स दूरा ।
सज्झाय-एगंत-णिसेवणा य,
सुत्तत्थ संचिंतणया धिई य।।३।।

आचार्य वृद्ध परिसेवन से, अबोध-
सम्पर्क दूर रहना, पढना सदैव ।
एकान्तवास, परिचिन्तन सूत्र अर्थ-
का धैर्य भाव करता दुख से विमुक्ति ।।३।।

आहार-मिच्छे मिय-मेसणिज्जं,
सहाय-मिच्छे णिउणत्थ बुद्धिं ।
णिकेय-मिच्छेज्ज विवेग-जोगं,
समाहि-कामे समणे तवस्सी।।४।।

संसाधनारत समाधि विशेष चाहे-
तो एषणीय मित भोज्य पदार्थ चाहे ।
तत्त्वार्थ विद् निपुण संगतिवान होके
योषित् विविक्त गृह का सविवेकवासी ।।४।।

ण वा लभेज्जा णिउणं सहायं,
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एगो-वि पावाइं विवज्जयंतो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो।।५।।

न प्राप्त हो अगर मित्र गुणज्ञ कोई-
या आत्म तुल्य अथवा परम प्रकृष्ट-।
तो पाप वर्जन परायण हो, तपस्वी
आसक्तहीन बनके, विचरे अकेला ।।५।।

जहा य अंड-प्पभवा बलागा,
अंडं बलाग-प्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा,
मोहं य तण्हाययणं वयंति।।६।।

अण्डा यथा निकलता बक से सदैव
भोले बकादि उससे बनते समग्र-।
तृष्णा तथा जनमती नित मोह से है
मोहाभिभूत बनता नर लोभ से है ।।६।।

रागो य दोसोवि य कम्मबीयं,
कम्मं च मोह-प्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाइ-मरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाइ-मरणं वयंति।।७।।

कर्मादि बीज भव राग विरागपूर्ण-
उत्पत्ति नित्य उसका ध्रुव मोह से है ।
जन्मावसान जड़ कर्म विशेष जानो
उत्पत्ति मृत्यु जग में दुःख रूप ही है ।।७।।

दुक्खं हयं जस्स ण होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स ण होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स ण होइ लोहो,
लोहो हओ जस्स ण किंचणाइं।।८।।

दुःखादि नष्ट यदि मोह रहे न किंचित्
मोहादि नाश तृष भाव विनाश से है ।
निर्लोभ से विगत है तृष भावना भी-
लोभी नहीं, नर, परिग्रह वर्जना से ।।८।।

रागं च दोसं च तहेव मोहं,
उद्धत्तु-कामेण समूल-जालं ।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा,
ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं।।९।।

द्वेषादि राग परिमोह समूल नाश-
के ही स्वरूप समुपाय विशेषता को-।
जो मैं अनुक्रम विशेष कहूँ यथार्थ
दत्तावधान सुनना हित लाभकारी ।।९।।

रसा-पगामं ण णिसेवियव्वा,
पायं रसा दित्तिकरा णराणं ।
दित्तं य कामा सम-भिद्दवंति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी।।१०।।

पूर्णप्रकाम रस सेवन भी करे न
उन्माद के प्रचय को करते रसादि ।
कामादिसक्त नर पीडित है विशेष-
जैसे फलाक्त-नग मर्दित हैं खगों से ।।१०।।

जहा दवग्गी पउ-रिंधणे वणे,
समारुओ णोवसमं उवेइ ।
एविन्दियग्गी वि पगाम-भोइणो,
ण बंभयारिस्स हियाय कस्सई।।११।।

जैसे प्रचण्डकर वायु सहायता से-
दावानल प्रचुर भी बनता, न शान्त ।
वैसे प्रकाम अशनादि करे सुभिक्षु-
तो इन्द्रियाग्नि न कभी परिशान्त होती ।।११।।

विवित्त सेज्जासण जंतियाणं,
ओमासणाणं दमि-इंदियाणं ।
ण रागसत्तू धरिसेइ चित्तं,
पराइओ वाहि-रिवोसहेहिं।।१२।।

एकान्त आसन करे अपना सदैव
जो अल्पभोज करना करता पसन्द ।
है जो जितेन्द्र अपनी चल इन्द्रियों से-
वो द्वेष रोग अरि से जित है तथैव ।।१२।।

जहा बिराला-वसहस्स मूले,
ण मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थी-णिलयस्स मज्झे,
ण बम्भयारिस्स खमो णिवासो।।१३।।

जैसे विडाल परिपार्श्व न मूषकादि-
होता, निवास, न कभी पल भी प्रशस्त ।
वैसे समीप महिलादिक के न जावे
सद्ब्रह्मचर्य परिपालक भव्य साधु ।।१३।।

ण रूव-लावण्ण-विलास-हासं,
ण जं पियं-इंगिय-पेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि णिवेसइत्ता,
दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी।।१४।।

लावण्य, रूप, परिहास्य, कटाक्ष, चेष्टा-
आलाप, इंगित, विलास, छबि स्पृहा को-।
श्रामण्य ताप तप में तपता समग्र-
योषित् प्रसंग परिहार करे तपस्वी ।।१४।।

अदंसणं चेव अपत्थणं य,
अचिंतणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थी जणस्सारिय झाण जुग्गं,
हियं सया बम्भ-वए रयाणं।।१५।।

सद्ब्रह्मचर्य परिलीन समाधिवन्त-
योषित् विलोकन अभीप्सित हो कभी न ।
संचिन्तनादि परिवर्णन मुक्त काम-
सम्यक्त्व बोधहित, वर्ज करे सदैव ।।१५।।

कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं,
ण चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।
तहावि एगंत-हियं ति णच्चा,
विवित्त-वासो मुणिणं पसत्थो।।१६।।

सतूतीन गुप्ति परिगुप्त तपस्विरूप-
को कौन है पतन गर्त निपातकारी ? ।
है अप्सरादि जन के वहुधा अजेय-
तो भी निवास हित है, मुनि का पृथक् ही ।।१६।।

मोक्खाभि-कंखिस्स उ माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे । णेयारिसं दुत्तर-मत्थि-लोए, जहि-त्थिओ बाल मणोहराओ।।१७।।	संसार भीरु परिनिर्वृति चाह वाले, धर्मी, विमुक्त जन को न कहीं अगम्य । अज्ञानि मानव मनोहर कामिनी भ्रू- जैसे दुरुत्तर सदा भव वासना से ।।१७।।
एए य संगे समइक्क-मित्ता, सुहुंत्तरा चेव भवंति सेसा । जहा महासागर-मुत्तरित्ता, णई भवे अवि गंगासमाणा।।१८।।	पूर्वोक्त से अलग जो रहता मनस्वी- अन्य प्रसंग अनुरंजित भी न होता । जैसे महोदधि सुपार सुबोध को ही- गंगा नदी सरल है, फिर पार पाना ।।१८।।
कामाणुगिद्धि-प्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स । जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्सन्तगं गच्छइ वीयरागो।।१६।।	शारीर वाचिक तथा मनसा निबद्ध- सम्पूर्ण लोक सुरदेव दुखादि लाभ-। कामाभिसक्त दृढ हेतु विशेष से है । तीव्र-प्रबुद्ध मुनि दुःख विहीन होते ।।१७।।
जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा । ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे।।२०।।	सौन्दर्यपूर्ण लगता फल भी विशिष्ट- किंपाक नाम पर है, परिणाम दुष्ट । वैसे विकार नर को, नयनाभिराम- है किन्तु नारक गती अभिकर्षकारी ।।२०।।
जे इंदियाणं विसया मणुण्णा, ण तेसु भावं णिसिरे कयाइ । ण यामणुण्णेसु मणंपि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी।।२१।।	सम्यक् समाधिभृत उन्नत भावशाली- रम्या मनोज्ञ विषयों पर राग रंग । न द्वेष भाव भजता भव भीतिहीन- होता, समत्व रखता, सब जन्तुओं पै ।।२१।।
चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति, तं राग हेउं तु मणुण्ण-माहु । तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु, समो य जो तेसु स वीयरागो।।२२।।	चक्षू गृहीत ननु रूप मनोज्ञ राग- का हेतु है, निखिल वैर निदान अन्य-। विद्वेष, राग जिनमें, न कभी, सुहाता है वीतराग मुनि सर्वजनाभिवन्द्य ।।२२।।

रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति । रागस्स हेउं समणुण्ण-माहु, दोसस्स-हेउं अमणुण्ण-माहु।।२३।।	रूपादि का ग्रहण सम्भव नेत्र से है है ग्राह्य रूप समयादिक-मान्यता से । रागादि कारण मनोज्ञ तथा अरम्य- द्वेषादि हेतु, जग में, यह बोधवार्त्ता ।।२३।।
रूवेसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं । रागाउरे से जह वा पयंगे, आलोय-लोले समुवेइ मच्चुं।।२४।।	है विप्रकृष्ट रत रूप विशेष में जो- वो जीव आतुर अकाल विनाश पाता । जैसे पतंग परिलोलुप रूप में हो- ज्वाला प्रदीप्त शिखि में जलता सहर्ष ।।२४।।
जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं । दुद्दंत-दोसेण सएण जंतू, ण किंचि रूवं अवरज्झइ से।।२५।।	जो है अरम्य परतीव्रतर प्रबैरी वो दाव दुःख लहता अविवेकचारी । तत्काल दुर्दमन बैर विपन्न होता ना दोष रूप चय का इसमें कदाचित् ।।२५।।
एगंत रत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणइ पओसं । दुक्खस्स सम्पील-मुवेइ बाले, ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।२६।।	जो रम्य रूप मद में रहता ससक्त एवम् कुरूप विष में करता जुगुप्सा । वो अज्ञ दुःख परिपीडित सर्वथा है संयाम पूर्ण यति लिप्त, वहाँ न होता ।।२६।।
रूवाणु गासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेग-रूवे । चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ-गुरू किलिट्ठे।।२७।।	राग प्रसक्त नर हिंसक है विशेष स्वार्थादिलीन जड़ चेतन का समग्र-। अज्ञान से नित, सदा परिताप देता उद्युक्त पूर्ण रहता हित साधना में ।।२७।।
रूवाणु-वाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-संणिओगे । वए वियोगे य कहं सुहं से, सम्भोग-काले य अतित्तलाभे।।२८।।	रूपानुराग ममता परिहेतुता की- उत्पत्ति और परिरक्षण धर्मिता में । है सौख्य कौन विरह व्यय वर्जना में- होती न तृप्ति उपभोगिक काल में भी ।।२८।।

रूवे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स,
लोहाविले आययई अदत्तं।।२६।।

जो रूप में अपरितुष्ट रहे सदैव-
होता परिग्रह ममत्व विशिष्ट धारी ।
वो दोष दुःख परिलोभ समाकुली हो
चौर्यादि-कर्म करता अविवेक जीव ।।२६।।

तण्हाभि-भूयस्स अदत्त-हारिणो,
रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभ-दोसा,
तत्था वि दुक्खा ण विमुच्चइ से।।३०।।

जो रूप और धन में रखता ममत्व
तृष्णाभिभूत व अदत्त विशेषहारी ।
वो लोभ से कपट झूठ सदा बढ़ाता
ना दुःख मुक्त पल भी, रहता कदापि ।।३०।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो।।३१।।

मिथ्या-प्रभाष दुखदायक है सदैव
कष्टानुभूतिमय ही अवसान होता ।
रूपाभिशप्त करता नित चौर्यकार्य
वासादिहीन विधुरावलि लिप्त होता ।।३१।।

रूवाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं।।३२।।

रूपानुरक्त मनुजादिक को सदैव-
होगा, कहाँ सुख कहो ? किस रूप में भी ।
शंप्राप्ति हेतु वह तो, दुख है उठाना
तद्भोग में विधुर दर्शन लब्धि होती ।।३२।।

एमेव रूवम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।
पदुट्ठ-चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।३३।।

जो रूप के प्रति सदैव रखे जुगुप्सा-
तो उत्तरोत्तर अनेक परम्परा से ।
दुःखादि लब्ध करता वह बैर से है
कर्मोपलिप्त बनता, परिणाम काल ।।३३।।

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह-परम्परेण ।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।३४।।

रूपादि से विरत, मानव शोक मुक्त
संसार में निवसता रहता पृथक् ही ।
जैसे जलाशय विषे, रहता सरोज-
पत्ता न लिप्त रहता, जल से कदापि ।।३४।।

सोयस्स सद्दं गहणं वयंति,
तं राग-हेउं तु मणुण्ण-माहु ।
तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो।।३५।।

श्रौत्रादि का विषय, शब्द कहा गया है
जो राग का सबब रम्य सरूपशाली ।
जो भूरि बैर-कर है, अमनोज्ञ होता
दोनों स्वरूप परिबोध, हितानुबन्धी ।।३५।।

सद्दस्स सोयं गहणं वयंति,
सोयस्स सद्दं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्ण-माहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्ण-माहु।।३६।।

श्रौत्रादि गाहक सदा ध्वनि रूप का है
शब्दादि गाह्य बनता अभिधानपूर्ण ।
जो राग का विषय है, वह है मनोज्ञ
द्वेषादि हेतु अमनोज्ञ कहा गया है ।।३६।।

सद्देसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे हरिण-मिगेव मुद्धे,
सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं।।३७।।

जो है सुरम्य पद के प्रति तीव्र रागी
आसक्तिमान मन से सविशेष रक्त ।
होता विनष्ट बिन काल विपन्न जाल
शब्द प्रमुग्ध मृग-सा मृगया प्रसंग ।।३७।।

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंत दोसेण सएण जंतू,
ण किंचि सद्दं अवरज्झइ से।।३८।।

जो है अरम्य पद के प्रति तीव्र बैरी
तद्दोष से दुखित वो रहता सदैव ।
द्वेषादि की परिणती इस रूप में है
ना दोष शब्द चय का कहते मनीषी ।।३८।।

एगंत-रत्ते रुइरंसि सद्दे,
अतालिसे से कुणइ पओसं ।
दुक्खस्स सम्पील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।३९।।

रम्यादि में सतत रक्त रहे मनुष्य
रम्यादिहीन पद पै रखता विरक्ति ।
वो अज्ञ दुःख नद में पड़ता अवश्य
संसाधनापरक दूर रहे सदैव ।।३९।।

सद्दाणु-गासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अतट्ठ-गुरू किलिट्ठे।।४०।।

शब्दांश के प्रति सलग्न अनेक रूप
होती चराचर विघातकता विशेष ।
नैज प्रयोजन ससक्त रहा हुआ वो
वैविध्यपूर्ण परिताप सदा विधायी ।।४०।।

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण संणिओगे ।
वए वियोगे य कहं सुहं से,
संभोग-काले य अतित्तलाभे।।४१।।

शब्दानुराग ममता परितो विधायी
उत्पादनादिक करे परिभोग रक्त ।
रक्षा वियोग अथवा व्यय सौख्य मे भी
संतृप्ति भी न मिलती भटके हुए को ।।४१।।

सद्दे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययइ अदत्तं।।४२।।

है शब्द मे, न परितृप्त परिग्रहो मे
आसक्ति सक्त नर तोष न पा सका है।
होता अतोष दुख से परिपीडनाक्त
प्रध्वान्त मग्न करता फिर चौर्य कार्य ।।४२।।

तण्हाभि-भूयस्स अदत्त हारिणो,
सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोह-दोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चइ से।।४३।।

तृष्णाभिभूत रुचि शब्द परिग्रही हो
होता पराजित मनुष्य धनापहारी ।
संलोभ दोष परिवर्धित रूप माया-
से दु.ख मुक्त वह तो फिर हो सके न ।।४३।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
सद्दे अइओ दुहीओ अणिस्सो।।४४।।

मिथ्या प्रभाषण सदा कटु दुःखदायी
होता तदन्त परिवेदन का निदान ।
आकृष्ट शब्द चय में कर चौर्य पाप
आस्था विहीन बनता परिवेदना से ।।४४।।

सद्दाणु-रत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोव-भोगेवि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं।।४५।।

शब्दानुरक्त जन है कब और कैसे ?
पाता सुखादि फल को कितना विशिष्ट।
सर्वोपयोग दुख दाह विलिप्त ही है
पाता कभी न सुख है, ध्वनिरक्तता से ।।४५।।

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।
पदुट्ठ-चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।४६।।

जो है असौम्य रव का वहु वैर भागी-
वो उत्तरोत्तर अनेक विपत्ति पाता ।
हो द्वेष युक्त मन से वह कर्मशील-
है दुःख पक्व फल का परिणाम सारा ।।४६।।

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परम्परेण ।
ण लिप्पइ भव मज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।४७।।

शब्दादि से विरत शोक विहीन होके
संसार में निवसता नहि लिप्त होता ।
जैसे सरोवर सुमध्य सरोज राजी
वारि-प्रसिक्त बनती न, तथैव साधु ।।४७।।

घाणस्स गंधं गहणं वयंति,
तं राग-हेउं तु मणुण्ण माहु ।
तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो।।४८।।

घ्राणादि का विषय गन्ध कहा गया है
जो राग का प्रभव है बनता मनोज्ञ ।
जो हेतु बैरचय का अमनोज्ञ वो है
द्वैविध्य रूप सुरभी कुल का विबोध ।।४८।।

गंधस्स घाणं गहणं वयंति,
घाणस्स गन्धं गहणं वयंति ।
रागस्स-हेउं समणुण्ण-माहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्ण-माहु।।४९।।

है घ्राण गन्ध परिगाहक अद्वितीय-
वो गन्ध गाह्य करणादिक का कहा है ।
जो राग का प्रभव है वह है मनोज्ञ
जो द्वेष रूप वह है, अमनोज्ञ पूर्ण ।।४९।।

गंधेसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे ओसहि गंध-गिद्धे,
सप्पे बिलाओ विव णिक्खमंते।।५०।।

जो रम्य गन्ध अनुरक्त विशेष होता
वो तो अकाल पल मध्य विनाश पाता ।
जैसे महौषधि सुगन्धि विलुब्ध सर्प-
स्वावास से निकल के खुद नष्ट होता ।।५०।।

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंत दोसेण सएण जंतू,
ण किंचि गंधं अवरुज्झइ से।।५१।।

जो तीव्र बैर करता अमनोज्ञ गन्ध-
से सौख्य लब्धि लहता गगनारविन्द ।
वो द्वेष से सतत दुःख सदा उठाता
है गन्ध का न उसमें, अपराध कोई ।।५१।।

एगंत रत्ते रुइरंसि गंधे,
अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स सम्पील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।५२।।

एकान्त रक्त रहता यदि सौम्य गन्ध
दुर्गन्ध में सतत वैर, विवृद्धि पाता ।
देता निमंत्रण विपत्ति विशेष को है
होता न लिप्त उसमें, सुविरक्त साधु ।।५२।।

गंधाणुगासाणुगए य जीवे, | गन्ध [illegible] करता है
चराचरे हिंसइ णेगरूवे । | [illegible] चराचर जन्तुओं को
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, | [illegible]
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥५३॥ | [illegible] ॥५३॥

गंधाणु-वाएण परिग्गहेण, | गन्धानुराग व परिग्रह में [illegible]
उप्पायणे रक्खण सन्निओगे । | उत्पादन रक्षण [illegible]
वए वियोगे य कहं सुहं से, | में है, कहाँ सुख कहे, उपभोग काल
संभोगकाले य अईय लाभे॥५४॥ | संतुष्टि भी न, मिलती अविवेक योग ॥५४॥

गंधे अतित्ते य परिग्गहम्मि, | है गन्ध में अपरितृप्त परिग्रह में
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं । | [illegible] है।
अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, | हो तोषहीन वह मनुज, लोभ युक्त
लोहाविले आययई अदत्तं॥५५॥ | अन्यान्य वस्तु अपहार करे, विशेष ॥५५॥

तण्हाभि-भूयस्स अदत्त-हारिणो, | गन्धादि संयुत परिग्रह में अतृप्त
गंधे अतित्तस्स परिग्गहे य । | तृष्णाभिभूत जन अन्य पदार्थहारी ।
मायामुसं वड्ढइ लोह दोसा, | संलोभ से, कपट झूठ बढ़े विशेष
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से॥५६॥ | तो भी, न दुःख परिमुक्त बने, विलोभी ॥५६॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, | है झूठ भाषण सदा कटु दुःखदायी
पओगकाले य दही दुरन्ते । | है अन्त दुःखमय जन्म विनाशकारी ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, | वो गन्ध से, अपरितृप्त विवेकहीन
गंधे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥५७॥ | चौर्यादि कार्य कर, आश्रय हीन होता ॥५७॥

गंधाणुरत्तस्स णरस्स एवं, | गंधानुरक्त जन है, कब और कैसे
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि । | पाता सुखादि कितना उपभोगशाली ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं, | होता प्रयोग तब भी दुख रूप में ही
णिव्वत्तइ जस्स कएण दुक्खं॥५८॥ | संक्लेश पूर्ण जिसकी गतिशीलता है

एमेव गंधम्मि गओ पओसं,	जो गन्ध के प्रति करे, नित बैरता को
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।	वो उत्तरोत्तर सनातन दुःख पाता ।
पुदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,	विद्वेष रूप भव कर्म उपार्जना से-
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।५६।।	संदुःख कारण बने परिणाम काल ।।५६।।
गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो,	गन्धादि में विरत मानव, शोकमुक्त
एएण दुक्खोह-परम्परेण ।	संसार में निवसते, रहता न लिप्त ।
ण लिप्पइ भव मज्झे वि संतो,	जैसे जलाशय रहे, न सरोज पत्र
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।६०।।	सलिप्त वारिचय से विनिमुक्त संग ।।६०।।
जिब्भाए रसं गहणं वयंति,	जिह्वाक्ष का विषय है, रस चर्बमाण
तं रागहेउं तु मणुण्ण-माहु ।	जो राग हेतु रस है, वह तो मनोज्ञ ।
तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु,	जो द्वेष रूप रस है, अमनोज्ञकारी
समो य जो तेसु स वीयरागो।।६१।।	होते न विज्ञ जन तो, रसनाभिभूत ।।६१।।
रसस्स जिब्भं गहणं वयन्ति,	जिह्वादि गाहक कहा, रस रूप गाह्य
जिब्भाए रसं गहणं वयन्ति ।	जो राग हेतु रस है, वह तो मनोज्ञ ।
रागस्स हेउं समणुण्ण-माहु,	जो द्वेष सत्त्व रस है, अमनोज्ञरूप
दोसस्स हेउं अमणुण्ण-माहु।।६२।।	होते प्रबुद्ध विजयी, रसनादिकों के ।।६२।।
रसेसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं,	जो है, मनोज्ञ रस में, अतिगृद्धकारी-
अकालियं पावइ से विणासं ।	पाता, अकाल निज निर्मम हो, विनाश ।
रागाउरे बडिस विभिण्ण काए,	जैसे पलाश अनुरंजित मत्स्य बींधे
मच्छे जहा आमिस भोग-गिद्धे।।६३।।	रागी बना विवश, कंटक विद्ध आस्य ।।६३।।
जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,	होती; अरम्य पर तीव्र घृणा विशिष्ट
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।	तो द्वेष भाव लहता अविवेकचारी ।
दुद्दंत दोसेण सएण जंतू,	दुर्दान्त वैर विष से, बहु दुःख पाता
ण किंचि रसं अवरुज्झइ से।।६४।।	होता, भला न, रस का, अपराध कोई ।।६४।।

एगंत रत्ते रुइरे रसम्मि,
अतालिसे से कुणइ पओसं ।
दुक्खस्स संपील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।६५।।

जो भी मनोज्ञ रस है, उसमें ससक्त
होता अरम्य पर बैर, यदा कदापि ।
वो अज्ञ दुःख, परिपीडन कष्ट पाता
होता न लिप्त, विरती परिपूर्ण साधु ।।६५।।

रसाणु-गासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परियावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठ-गुरु किलिट्ठे।।६६।।

आशा प्रपूर्ण रस की परिकामना से
हिंसादि में रत चराचर नाशता है ।
नैज प्रयोजन विशेष कृति प्रधान-
देता, अनेक विध कष्ट विवेकहीन ।।६६।।

रसाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण सण्णिओगे ।
वए वियोगे य कहं सुहं से,
संभोगकाले य अतित्तलाभे।।६७।।

होती रसादि अनुरक्ति, ममत्व हेतु
उत्पादनादि परिरक्षण सन्नियोग ।
होता वियोग, अथवा व्यय में न सौख्य
होती न, तृप्ति उसको उपभोग काल ।।६७।।

रसे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोव-सत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स,
लोहाविले आययइ अदत्तं।६८।।

जो है, अतृप्त रस में, ग्रहणाभिभूत
आसक्ति सक्त उपसक्त विशेष रूप ।
वो लोभ लब्ध धन का, सतताभिलाषी
होता, अतोष दुख से, पर वस्तुहारी ।।६८।।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
रसे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभ-दोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चइ से।।६९।।

होता रसादि रु परिग्रह में अतृप्त
तृष्णाभिभूत जन है, पर वस्तुहारी ।
संलोभ से कपट, झूठ बढ़े विशेष
होती न, मुक्ति इन से, वहु दुःख पाता ।।६९।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
रसे अइओ दुहिओ अणिस्सो।।७०।।

जो भी रसादि पर वैर, विशेष बाँधे-
तो उत्तरोत्तर सनातन, दु:ख पाता ।
विद्वेष युक्त मन से, यदि अर्जता है
होता विपाक, दुखदायक सर्वथा ही ।।७०।।

रसाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तइ जस्स कएण दुक्खं।।७१।।

होता रसादि रत को, कब और कैसे
आनन्द सौख्य यतना, करणीयता में।
प्राप्तव्य के विषय में, वह दुःख पाता
संक्लेश पूर्ण बनता, उपभोग काल ।।७१।।

एमेव रसम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।
पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।७२।।

जो भी रसादि पर बैर, विशेष बाँधे
तो उत्तरोत्तर सनातन, दुःख पाता ।
विद्वेष युक्त मन से, यदि अर्जता है
होता विपाक दुखदायक सर्वथा ही ।।७२।।

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परम्परेण ।
ण लिप्पइ भव-मज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।७३।।

जो है रसादि रस से, विनिमुक्त काम
कर्माभिशप्त कम से, रखता हुआ भी।
वो शोक मुक्त रहता, इस संसृती में
जैसे अलिप्त रहता, जल में सरोज ।।७३।।

कायस्स फासं गहणं वयंति,
तं राग-हेउं तु मणुण्ण-माहु ।
तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो।।७४।।

संकाय का विषय फर्श, कहा गया है
है स्पर्श रागिजन हेतु मनोज्ञकारी ।
विद्वेष का विषय, रूप मनोज्ञहीन
होता न साधक कभी, इनमें विलुब्ध ।।७४।।

फासस्स कायं गहणं वयंति,
कायस्स फासं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्ण-माहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्ण-माहु।।७५।।

संस्पर्श गाहक सदा यह भूत देह
है ग्राह्य रूप परिपर्शन काय का भी ।
जो राग कारण कहा, वह तो मनोज्ञ
जो द्वेष रूप वह है, अमनोज्ञपूर्ण ।।७५।।

फासेसु जो गिद्धि-मुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे सीय जलाव-सण्णे,
गाहग्गहीए महिसेव रण्णे।।७६।।

होता मनोज्ञ पर, रक्त विशेष रूप
तो वो अकाल लहता, निज नाश नित्य।
जैसे सरोवर निमग्न सुखाभिलाषी
पाता, वहाँ मगर से, महिषा विनाश ।।७६।।

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंत दोसेण सएण जंतू,
ण किंचि फासं अवरुज्झइ से।।७७।।

संस्पर्श के प्रति करे, अति बैर तीव्र
वो जीव तत्क्षण विपात दशा बनाता ।
दुर्दान्त बैर जिससे बढ़ता अवश्य
संस्पर्श का न अपराध, वहाँ रहा है ।।७७।।

एगंत रत्ते रुइरंसि फासे,
अयालिसे से कुणइ पओसं ।
दुक्खस्स संपील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।७८।।

जो सौम्य रूप परिपर्शन से ससक्त
होता उसे अपरिसौम्य विशेष बैर ।
वो अज्ञ दुःख परिपीडित कर्मशील
होता, विरक्त मुनि साधक नैवलिप्त ।।७८।।

फासाणु गासाणु गए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परियावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे।।७९।।

संस्पर्श भाव अनुगामि अनेक रूप
सारे चराचर समाहित जीव की वे ।
हिंसा करे, निज परायण भावना से
वो अज्ञ, सर्व विध से, परिताप देता ।।७९।।

फासाणु-वाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण सण्णिओगे ।
वए विओगे य कहं सुहं से,
संभोग-काले य अइयलाभे।।८०।।

संस्पर्श में सतत रक्त ममत्व हेतु
तत्स्पर्श के प्रभव में परिरक्षणों में ।
है सन्नियोग विरह व्यय में न सौख्य
संतृप्ति भी न मिलती, उपभोग काल ।।८०।।

फासे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स,
लोहाविले आययइ अदत्तं।।८१।।

संस्पर्श में अपरितुष्ट, परिग्रहों में
आसक्ति सक्त उपसक्त, तोष पाता ।
निस्तोष दोष परिवृत्त विपन्नकारी-
संलोभ पूर्ण परवस्तु सदापहारी ।।८१।।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभ दोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चइ से।।८२।।

संस्पर्श में अरु परिग्रह में अतृप्त
तृष्णाभिभूत वह मानव, चौर्य कर्म- ।
संलोभ से, कपट, झूठ बढ़े अवश्य
तो भी न, दु:ख नद का लहता किनारा ।।८२।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओग काले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो।।८३।।

मिथ्या प्रभाषण पुरा अरु बाद में भी
संभाष के समय में, वह दुःख पाता ।
है अन्त दुःख परिलक्षित रूप सारा
रूपाद्य तृप्त करता नित चौर्य कर्म ।।८३।।

फासाणु-रत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तइ जस्स कएण दुक्खं।।८४।।

संस्पर्श रक्त नर को कब और कैसे ?
होता कहाँ, सुख कहो, किस रूप में है ।
प्राप्तव्य में दुख, सदा उपभोग काल
संक्लेश पूर्ण बनके, वह दुःख पाता ।।८४।।

एमेव फासम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।
पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।८५।।

संस्पर्श के प्रति करे वह बैर नित्य
तो उत्तरोत्तर अनेक परम्परा से ।
वो दुःख मग्न बन बैर सदा बढ़ाता
होता विपाक उसका, दुख रूप सारा ।।८५।।

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परम्परेण ।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।८६।।

संस्पर्श से विरत, मानव शोकमुक्त
संसार में निवसता, रहता पृथक् ही ।
जैसे सरोज दल अम्बु, अलिप्त होता
वैसे समाधिरत साधक की अवस्था ।।८६।।

मणस्स भावं गहणं वयंति,
तं राग-हेउं तु मणुण्ण-माहु ।
तं दोस-हेउं अमणुण्ण-माहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो।।८७।।

है स्वान्त का विषय भाव कहा गया है
जो भाव रागमय है, वह रम्यशील ।
विद्वेष कारण कहा अमनोज्ञकारी
जो भी रहे सम, सदा वह वीतराग ।।८७।।

भावस्स मणं गहणं वयंति,
मणस्स भावं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुण्ण-माहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्ण-माहु।।८८।।

सुस्वान्त गाहक सरूप कहा गया है
है भाव गाह्य मन का, कहते मनीषी ।
जो राग कारण सदा, वह तो मनोज्ञ
जो द्वेष पूर्ण वह है, अमनोज्ञ रूप ।।८८।।

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे,
करेणु मग्गावहिए व नागे।।८९।।

जो भी मनोज्ञ पर, तीव्र रहे सशक्त
पाए, अकाल निज की इस. स्वल्प जो :
जैसे द्विरद रत हो करेणु सहर्ष
कामाभिभूत मरता. करता विनाश ।।८९।।

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंत दोसेण सएण जंतू,
ण किंचि भावं अवरुज्झइ से।।९०।।

है जो अरम्य पद के प्रति तीव्र बैरी
दुर्दान्त बैर वश से बहु दुःख पाता ।
कामाभिभूत लहता फल भी. स्वयं ही
है भाव का. न इसमें अपराध कोई ।।९०।।

एगंत रत्ते रुइरंसि भावे,
अतालिसे से कुणइ पओसं ।
दुक्खस्स संपील-मुवेइ बाले,
ण लिप्पइ तेण मुणी विरागो।।९१।।

एकान्त रम्य पद में रहता प्रसक्त
जो रम्यहीन चय का बनता विपक्ष ।
वो अज्ञ दुःख परिपीडित है विशेष
होता न लिप्त विरती. परिपूर्ण साधु ।।९१।।

भावाणु-गासाणु-गए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठ-गुरू किलिट्ठे।।९२।।

जो भव्य भाव चय का, अनुगामि जीव
पूरा अनेक विध जन्तु, चराचरों की ।
हिंसा करे. निज परायण भावना से
संक्लिष्ट भाव धर ताड़न यन्त्रणा दे ।।९२।।

भावाणु-वाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खण सण्णिओगे ।
वए वियोगे य कहं सुहं से,
संभोगकाले य अइएलाभे।।९३।।

भावानुरक्ति ममता युत को तदीय-
उत्पाद रक्षण तथा व्यय सन्नियोग-।
में भी सदा सुख कहाँ, न वियोग में भी
होती न तृप्ति, उसको उपभोग काल ।।९३।।

भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठि-दोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययइ अदत्तं।।९४।।

है भाव में अपरितुष्ट, परिग्रहों में,
आसक्ति, सक्त जन को, न तोष होता ।
निरतोष दोष दुख, आकुल लोभ से हो
संचौर्य कर्म करता, परवस्तु [illegible] ।।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
भावे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोहदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चइ से।।९५।।

जो भाव संयुत, परिग्रह में अतृप्त-
तृष्णाभिभूत परवस्तु सदापहारी ।
संलोभ, दोष, दुख से छल छद्म वृद्धि-
तो भी न दुःख, परिमोचन की अवस्था ।।९५।।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो,
भावे अइओ दुहिओ अणिस्सो।।९६।।

मिथ्या प्रभाषण पुरा अरु बाद में भी
संभाष के समय दुःख सदैव पाता ।
वो भाव में अपरितृप्त, हरे धनादि
आलम्बना रहित हो, वह कष्ट पाता ।।९६।।

भावाणुरत्तस्स णरस्स एवं,
कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेस-दुक्खं,
णिव्वत्तइ जस्स कएण दुक्खं।।९७।।

जो भाव में पुरुष है, रहता प्रसक्त
वांको कहाँ कब कहो किस रूप सौख्य ।
प्राप्तव्य में दुख उसे रहता सदैव
संक्लेश पूर्ण बनता उपभोग में है ।।९७।।

एमेव भावम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परम्पराओ ।
पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे।।९८।।

जो भाव के प्रति करे नित बैर भाव
वो उत्तरोत्तर अनेक परंपरा से ।
द्वेष प्रयुक्त मन से, कृतकर्म ही तो
पूरे विपाक विधि से, दुख हेतु होते ।।९८।।

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परम्परेण ।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।९९।।

संभाव में विरत मानव शोक मुक्त
संसार में निवसता, न कदापि लिप्त ।
जैसे नहीं कमलिनी, दल लिप्त होता
वैसी समाधिरत साधक की दशा है ।।९९।।

एविन्दियत्था य मणस्स अत्था,
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो ।
ते चेव थोवंपि कयाइ दुक्खं,
ण वीयरागस्स करेंति किंचि।।१००।।

रागी मनुष्य हित कृन्मन इन्द्रियादि-
के दुःख रूप विषयादिक दीखते जो-।
वे वीतराग जन के नहि दुःख रूप
न स्वल्प मात्र इनसे, परिवेदना है ।।१००।।

ण कामभोगा समयं उवेंति,
ण यावि भोगा विगइं उवेन्ति ।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।।१०१।।

है कामभोग समभाव विभाविहीन-
होता स्वयं विकृत ना यह है सुभाव ।
जो द्वेष राग रखता प्रकृति प्रधान
वो मोह हेतुक विकार समृद्ध होता ।।१०१।।

कोहं य माणं य तहेव मायं,
लोहं दुगुच्छं अरइं रइं य ।
हासं भयं सोग-पुमित्थि वेयं,
णपुंस वेयं विविहे य भावे।।१०२।।

घनाक्षरी

क्रोध मान माया लोभ घाती है जुगुप्सा घोर
हास्य रति अरति भयादि शोक छावै है ।
पापकारी नरवेद जाया तथा क्लीव वेद-
हरष विषाद बहुभाव उपजावै है ।।१०२।।

आवज्जई एव-मणेगरूवे,
एवं विहे कामगुणेसु सत्तो ।
अण्णे य एयप्पभवे विसेसे,
कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से।।१०३।।

कामभोगी मोही तो विकारिपरिणामन को
पावे विषमय विति नियत समावै है ।
क्रम वासना में लिप्त दीप्ति हीन होके नित्य
दीन हीन करुण लज्जित दुःख पावै है ।।१०३।।

कप्पं ण इच्छिज्ज सहाय-लिच्छू,
पच्छाणुतावे ण तवप्पभावं ।
एवं वियारे अमियप्पयारे,
आवज्जइ इंदिय-चोर-वस्से।।१०४।।

वसन्ततिलका

कायादि सेवन सहायक की न लिप्सा
इच्छा न हो, कलित कल्पित शिष्य की भी ।
दीक्षानुतप्त तप की न विचार चाहे
अलाभिभूत लहता, बहुधा विकार ।।१०४।।

१०४ गाथा-उत्तरा. बत्तीसवां अध्ययन

इस गाथा के अर्थ का सन्दर्भ पूर्व की गाथाओं के साथ जोड़कर ही [illegible] किया जा सकता है। पूर्व की गाथा (१०३) में [illegible] पंच इन्द्रियों के विषयों में [illegible] पुरुष क्या करता है ?

इस [illegible] १०३ [illegible]

गया है जैसे- पांच इन्द्रियों में आसक्त बना हुआ व्यक्ति विषय का लिप्स होता है वह उसकी संपूर्ति के लिए उसके योग्य सहायक की इच्छा करता है। जब वह विषयेच्छा के सहायक की कामना करता है तब वह कल्प-मर्यादा की इच्छा नहीं करता है। साथ ही मेरे तप का प्रभाव नष्ट हो जायेगा या हो रहा है इस बात की परवाह भी नहीं करता। इस प्रकार अनेक विध विकारों के गर्त में गिरकर वह इन्द्रिय रूपी चोरों के वश में हो जाता है। इसी बात की पुष्टि अगली १०५वीं गाथा में हो रही है। जहां बताया गया है कि वह मोह के सागर में गिरकर हिंसा आदि करने लग जाता है।

इस तरह इस १०८ की गाथा का अर्थ करना सुसंगत लगता है परन्तु प्रचलित उत्तराध्ययन की व्याख्याओं में जो अर्थ किया गया है उनमें आगे पीछे के सन्दर्भ को छोड़कर भिन्न-भिन्न कल्पनाओं से किये है वह संगत नहीं है।

तओ से जायंति पओ-यणाइं,
णिमज्जिउं मोह-महण्णवम्मि ।
सुहेसिणो दुक्ख विणोय-णट्ठा,
तप्पच्चयं उज्जमए य रागी।।१०५।।

मोहादि सागर निमज्जन हेतु हिंसा
कामादि सेवन अनेक सुहेतु आते ।
पश्चाद् विकार जनि के तब सौख्यकारी
रागी विमुक्ति हित है, करता प्रयत्न ।।१०५।।

विरज्ज-माणस्स य इंदियत्था,
सद्दाइया तावइय-प्पगारा ।
ण तस्स सव्वे वि मणुण्णयं वा,
णिव्वत्तयंती अमणुण्ण यं वा।।१०६।।

शव्दादि जो विषय है, ध्रुव इन्द्रियों के
वे क्या, विरक्त जन को, करते प्रभावी?
ना ही मनोज्ञ, अथवा अमनोज्ञ रूप
उत्पन्न धीरमन को, वन के अशक्त ।।१०६।।

एवं ससंकप्प-विकप्पणासुं,
संजायई समय-मुवट्ठियस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से,
पहीयए कामगुणेसु तण्हा।।१०७।।

आत्म प्रकल्पित सहेतु समग्र दोष
अक्षादि के विषय का, उनमें न लेश ।
संकल्प शुद्ध मन में, समता सुहाती
तृष्णा विनष्ट उससे, रतिमद्गुणों की ।।१०७।।

स वीयरागो कय-सव्व-किच्चो,
खवेइ णाणावरणं खणेणं ।
तहेव जं दंसण-मावरेइ,
जं चन्तरायं पकरेइ कम्मं।।१०८।।

वो वीतराग कृतकृत्य विशिष्ट आत्मा
शीघ्रावबोध अवरोध करे अवश्य ।
संदर्शना वरण और तथान्तराय
सिद्ध स्वरूप, सुख की मिलती अवस्था ।।१०८।।

सव्वं तओ जाणइ पासइ य,
अमोहणे होइ णिरन्तराए ।
अणासवे झाण समाहि जुत्ते,
आउक्खए मोक्ख-मुवेइ सुद्धे।।१०९।।

ज्ञानानुदर्शन परिष्करणादि पूर्व-
मोहान्तराय लय को नित साधता है ।
होता निराश्रव विशुद्ध सदैव आत्मा
पाता समाधिरत, आयु विनाश, मोक्ष ।।१०९।।

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को,
जं बाहई सययं जंतु-मेयं ।
दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो,
तो होइ अच्चंत-सुही कयत्थो।।११०।।

जो जीव को सतत बाध्य करे विशेष
पीडा विधायि दुख से, कृति मुक्त होता ।
बाधा विहीन बन के निज रूप वेत्ता
होता प्रशस्त, सुख भू अथवा कृतार्थी ।।११०।।

अणाइ काल-प्पभवस्स एसो,
सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्ख-मग्गो ।
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता,
कमेण अच्चंत सुही भवंति।।१११।।

संसार दुःख चलते चल आ रहे हैं
सारे अनादि युग से सतत प्रहारी ।
तन्मुक्तिमार्ग उपदिष्ट यहाँ हुआ है
स्वीकार से नित अनन्त सुखाक्त जीव ।।१११।।

गया है जैसे- पांच इन्द्रियों में आसक्त बना हुआ व्यक्ति विषय का लिप्स होता है वह उसकी संपूर्ति के लिए उसके योग्य सहायक की इच्छा करता है। जब वह विषयेच्छा के सहायक की कामना करता है तब वह कल्प-मर्यादा की इच्छा नहीं करता है। साथ ही मेरे तप का प्रभाव नष्ट हो जायेगा या हो रहा है इस बात की परवाह भी नहीं करता। इस प्रकार अनेक विध विकारों के गर्त में गिरकर वह इन्द्रिय रूपी चोरों के वश में हो जाता है। इसी बात की पुष्टि अगली १०५वीं गाथा में हो रही है। जहां बताया गया है कि वह मोह के सागर में गिरकर हिंसा आदि करने लग जाता है।

इस तरह इस १०८ की गाथा का अर्थ करना सुसंगत लगता है परन्तु प्रचलित उत्तराध्ययन की व्याख्याओं में जो अर्थ किया गया है उनमें आगे पीछे के सन्दर्भ को छोड़कर भिन्न-भिन्न कल्पनाओं से किये है वह संगत नहीं है।

तओ से जायंति पओ-यणाइं,
णिमज्जिउं मोह-महण्णवम्मि ।
सुहेसिणो दुक्ख विणोय-णट्ठा,
तप्पच्चयं उज्जमए य रागी।।१०५।।

मोहादि सागर निमज्जन हेतु हिंसा
कामादि सेवन अनेक सुहेतु आते ।
पश्चाद् विकार जनि के तब सौख्यकारी
रागी विमुक्ति हित है, करता प्रयत्न ।।१०५।।

विरज्ज-माणस्स य इंदियत्था,
तावइय-प्पगारा ।
सव्वे वि मणुण्णयं वा,
यंती अमणुण्ण यं वा।।१०६।।

शव्दादि जो विषय है, ध्रुव इन्द्रियों के
वे क्या, विरक्त जन को, करते प्रमावी?
ना ही मनोज्ञ, अथवा अमनोज्ञ रूप
उत्पन्न धीरमन को, वन के अशक्त ।।१०६।।

एवं ससंकप्प-विकप्पणासुं, संजायई समय-मुवट्ठियस्स । अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा।।१०७।।	आत्म प्रकल्पित सहेतु समग्र दोष अक्षादि के विषय का, उनमें न लेश । संकल्प शुद्ध मन में, समता सुहाती तृष्णा विनष्ट उससे, रतिमद्गुणों की ।।१०७।।
स वीयरागो कय-सव्व-किच्चो, खवेइ णाणावरणं खणेणं । तहेव जं दंसण-मावरेइ, जं चन्तरायं पकरेइ कम्मं।।१०८।।	वो वीतराग कृतकृत्य विशिष्ट आत्मा शीघ्रावबोध अवरोध करे अवश्य । संदर्शना वरण और तथान्तराय सिद्ध स्वरूप, सुख की मिलती अवस्था ।।१०८।।
सव्वं तओ जाणइ पासइ य, अमोहणे होइ णिरन्तराए । अणासवे झाण समाहि जुत्ते, आउक्खए मोक्ख-मुवेइ सुद्धे।।१०६।।	ज्ञानानुदर्शन परिष्करणादि पूर्व- मोहान्तराय लय को नित साधता है । होता निराश्रव विशुद्ध सदैव आत्मा पाता समाधिरत, आयु विनाश, मोक्ष ।।१०६।।
सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जंतु-मेयं । दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चंत-सुही कयत्थो।।११०।।	जो जीव को सतत बाध्य करे विशेष पीडा विधायि दुख से, कृति मुक्त होता । बाधा विहीन बन के निज रूप वेत्ता होता प्रशस्त, सुख भू अथवा कृतार्थी ।।११०।।
अणाइ काल-प्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्ख-मग्गो । वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चंत सुही भवंति।।१११।।	संसार दुःख चलते चल आ रहे हैं सारे अनादि युग से सतत प्रहारी । तन्मुक्तिमार्ग उपदिष्ट यहाँ हुआ है स्वीकार से नित अनन्त सुखाक्त जीव ।।१११।।

३३ अध्ययन : कर्मप्रकृति

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम कर्मप्रकृति (कम्मपयडी) है।
- आत्मा के साथ राग–द्वेषादि के कारण कर्मपुद्गल क्षीर–नीर की तरह एकीभूत हो जाते है। वे जब तक रहते है तब तक जीव संसार मे विविध गतियो और योनियो मे विविध प्रकार के शरीर धारण करके भ्रमण करते रहते है, नाना दु.ख उठाते है। इसलिए साधक को इन कर्मो को आत्मा से पृथक् करना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है, जब कर्मो के स्वरूप को व्यक्ति जान ले, बन्ध कारणो को तथा उन्हे दूर करने का उपाय भी समझ ले। इसी उद्देश्य से कर्मो की मूल 8 प्रकृतियो के नाम तथा उनकी उत्तर प्रकृतियों एवं प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध का परिज्ञान प्रस्तुत अध्ययन में कराया गया है।
- कर्मप्रायोग्य पुद्गल जीव की शुभाशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट होकर आत्मा के प्रदेशो के साथ चिपक जाते है। कर्म अनन्तप्रदेशी पुद्गल स्कन्ध होते है, वे आत्मा के असख्य प्रदेशों के साथ एकीभूत हो जाते है। इस प्रकार प्रस्तुत 'अध्ययन' मे कर्मविज्ञान का संक्षेप मे निरूपण किया गया है।

३३. कर्मप्रकृति

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि,
आणुपुव्विं जहाक्कमं ।
जेहिं बद्धो अयं जीवो,
संसारे परिवट्टइ।।१।।

हैं आठ कर्म अनुपूर्वि दिशानुसार
मैं वर्णनादि उनका, विधि से करूँगा ।
कर्माभिबद्ध हत जीव विभिन्न रूप
संसार में, भटकना नित धारता है ।।१।।

णाणस्सावरणिज्जं,
दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं,
आउकम्मं तहेव य।।२।।
णामकम्मं च गोयं च,
अंतरायं तहेव य ।
एवमेयाइं कम्माइं,
अट्ठेव उ समासओ।।३।।

ज्ञानादि युक्त परिदर्शन वेदनीय
मोहायु कर्मदल नाम व अन्तराय ।
संक्षेप से कथन है, इनका अनूप
संसार में भ्रमण के ध्रुव हेतु हैं ये ।।२-३।।

णाणावरणं पंचविहं,
सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहिणाणं य तइयं,
मणणाणं य केवलं।।४।।
णिद्दा तहेव पयला,
णिद्दाणिद्दा पयल-पयला य ।
तत्तो य थीणगिद्धी उ,
पंचमा होइ णायव्वा।।५।।

छन्द-धनाक्षरी
मति श्रुतावधि मन, पर्यव केवल ज्ञान,
ज्ञानावृति पंच विध, सतत सुहावै है ।
निद्रा, प्रचला, निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला रु
स्त्यानगृद्धि चक्षुस् अचक्षुष कहावै है ।
अवधि, केवल संग, दर्शनावरण नव
सातासात, वेदनीय, विविध प्रभावै है ।
दर्शन चारित्र मोहनीय, विवि भेद जानो
दर्शन के तीन, दुई क्रिया गति पावै है ।।४-८।।

चक्खु-मचक्खू ओहिस्स,
दंसणे केवले य आवरणे ।
एवं तु णव-विगप्पं,
णायव्वं दंसणावरणं।।६।।
वेयणीयं वि य दुविहं,
साय-मसायं य आहियं ।
सायस्स उ बहू भेया,
एमेव असायस्स वि।।७।।
मोहणिज्जं वि दुविहं,
दंसणे चरणे तहा ।
दंसणे तिविहं वुत्तं,
चरणे दुविहं भवे।।८।।

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं,
सम्मा-मिच्छत्त-मेव य ।
एयाओ तिण्णि पयडीओ,
मोहणिज्जस्स दंसणे।।९।।
चरित्त-मोहणं कम्मं,
दुविहं तु वियाहियं ।
कसाय-मोहणिज्जं तु,
णोकसायं तहेव य।।१०।।
सोलसविह-भेएणं,
कम्मं तु कसायजं ।
सत्तविहं णवविहं वा,
कम्मं य णोकसायजं।।११।।
णेरइय-तिरिक्खाउं,
मणुस्साउं तहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु,
आउं कम्मं चउव्विहं।।१२।।

सम्यक्त्व मिथ्यात्व अरु, सम्यक् मिथ्या स्वरूप
मोहनीय दर्शन के, भेद तीन जानिये ।
मोहनीय चारित्र कषाय, मोहनीय नित्य
नोकषाय, मोहनीय, दुई रूप मानिये ।
अपर कषाय मोहनीय कर्म, कर्म षोडस
नोकषाय, मोहनीय, कर्म सात मानिये ।
आयु कर्म चार भेद, नारक तिर्यंच नर,
देव आयु, शास्त्र विधि, सतत, बखानिये ।।९-१२।।

णामकम्मं तु दुविहं,
सुह-मसुहं च आहियं ।
सुहस्स उ बहू भेया,
एमेव असुहस्सवि।।१३।।
गोयं कम्मं दुविहं,
उच्चं णीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होई,
एवं णीयं-वि आहियं।।१४।।
दाणे लाभे य भोगे य,
उवभोगे वीरिए तहा ।
पंचविह-मन्तरायं,
समासेण वियाहियं।।१५।।
एयाओ मूल पयडीओ,
उत्तराओ य आहिया ।
पएसग्गं खेत्तकाले य,
भावं य उत्तरं सुण।।१६।।

शुभ तथा अशुभाभिधान जग नाम कर्म
दोनों के, अनन्त भेद भाव पहचानिये ।
उच्च्व गोत्र, नीच गोत्र, गोत्र कर्म दुई भेद
उभय के आठ, आठ भेद हिय मानिये ।
अन्तराय के भी, पॉच भेद होत दान लाभ
भोग-उपभोग वीर्य, बाधा रूप मानिये ।
कर्मों की ये मूल तथा उत्तर प्रकृतियॉ हैं,
प्रदेशाग्र-द्रव्य क्षेत्र काल भाव जानिये ।।१३-१६।।

सव्वेसिं चेव कम्माणं,
पएसग्ग-मणन्तगं ।
गंठिय-सत्ताईयं,
अंतो सिद्धाण आहियं।।१७।।
सव्व जीवाण कम्मं तु,
संगहे छद्दिसागयं ।
सव्वेसु वि पएसेसु,
सव्वं सव्वेण बद्धगं।।१८।।
उदही-सरिस-णामाणं,
तीसई कोडिकोडीओ ।
उक्कोसिया ठिई होई,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।१९।।

एककाल ग्राह्यबद्ध होने वाले सभी कर्म
प्रदेशाग्र कर्म, पुद्गल, द्रव्य अनन्त हैं ।
प्रभूत अभव्य जीवों, से अनन्त गुणाधिक
सिद्धों के अनन्तवें, विभाग से गनन्त हैं ।
सर्वजीव संग्रही, वद्ध योग्य कर्म पुद्गल-
आत्म स्पृष्ट सर्व, नभतल से लसन्त हैं ।
वन्ध काल सभी ने, सुवद्ध आत्म देशन से
उच्च्व नीच स्थिती यथारूप, दीप्तिमन्त हैं ।।१७-१९।।

बसन्ततिलका

आवरणिज्जाण दुण्हं वि,
वेयणिज्जे तहेव य ।
अंतराए य कम्मम्मि,
ठिई एसा वियाहिया।।२०।।

ज्ञानावृतीय परिदर्शन युक्त की भी,
संवेदनीय थिति ऊपर ये कही हैं ।
औ अन्तराय कृति की सदृशी व्यवस्था,
जाने, मनुष्य निज के, परिबोध हेतु ।।२०।।

उदही सरिस-णामाणं,
सत्तरिं कोडि-कोडीओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णिया।।२१।।

संमोहनीय कृति की, स्थिति सप्ततीयुत्,
संकोटि कोटि युत सागर तुल्य की है ।
अन्तर्मुहूत थिति रूप जघन्य से है
शास्त्रीय दर्शन विधान अवश्य जाने ।।२१।।

तेत्तीस सागरोवमा,
उक्कोसेण वियाहिया ।
ठिई उ आउ-कम्मस्स,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णिया।।२२।।
उदही सरिस-णामाणं,
वीसई कोडि-कोडीओ ।
णाम-गोत्ताणं उक्कोसा,
अट्ठ-मुहुत्तं जहण्णिया।।२३।।

तैंतीस सागर कही स्थिति आयु की है
अन्तर्मुहूर्त निज रूप थिती जघन्य ।
है नाम गोत्र अति उच्च्व सरूप बीस
अष्टौ मुहूर्त्त निज रूप थिती जघन्य ।।२२-२३।।

सिद्धाण-णन्तभागो य,
अणुभागा हवंति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं,
सव्व-जीवेसु अइच्छियं।।२४।।
तम्हा एएसिं कम्माणं,
अणुभागा वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव,
खवणे य जए वुहो।।२५।।

सिद्धादि के अति विशेष अनन्त भाग
में है रसादि अनुभाग सदेश तुल्य ।
भव्येतरादि चय से अतिकान्त रूप
जाने, विवुद्ध लय संवर कामना से ।।२४-२५।।

३४ अध्ययन : लेश्याध्ययन

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम लेश्याध्ययन (लेसज्झयण) है। लेश्या का बोध कराने वाला अध्ययन होने से इसका सार्थक नाम रखा गया है।
- लेश्या की मुख्यतया चार परिभाषाएँ जैनशास्त्रो मे मिलती है– (1) मन आदि योगो से अनुरजित योगो की प्रवृत्ति (2) कषाय से अनुरजित आत्मपरिणाम (3) कर्मनिष्यन्द (4) कर्मवर्गणा से निष्पन्न कर्मद्रव्यो की विधायिका।
- परिणामो की अशुभतम, अशुभतर और अशुभ तथा शुभ, शुभतर और शुभतम धारा के अनुसार लेश्या भी छह प्रकार की बताई गई है–कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, (पीत), पद्म और शुक्ल। वस्तुत. लेश्या में बाह्य और आन्तरिक दोनो जगत् एक दूसरे से प्रभावित होते है।
- प्रस्तुत अध्ययन मे इन्ही छह लेश्याओं के लक्षण बताए है। ये लक्षण मुख्यतया मन के विविध अशुभ–शुभ परिणामो के आधार पर ही दिये गए है।
- निष्कर्ष यह है कि आत्मा के अध्यवसायो की विशुद्धि और अशुद्धि पर लेश्याओ की विशुद्धि और अशुद्धि निर्भर है। कषायो की मदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अन्त शुद्धि होने पर बाह्य शुद्धि भी होती है। बाह्य दोष भी छूट जाते हैं।

३४. लेश्याध्ययन

लेसज्झयणं पवक्खामि,
आणुपुव्विं जहक्कमं ।
छण्हं वि कम्म-लेसाणं,
अणुभावे सुणेह मे।।१।।

लेश्यास्वरूप कृति वर्णन का विशेष
ग्रन्थानुसार नय से अभिधान होगा ।
षट्लेश्य के रस-विशेष विधान का भी
आदर्श पूर्ण विधि से, सुनना यथार्थ ।।१।।

णामाइं वण्ण-रस-गंध,
-फास-परिणाम-लक्खणं ।
ठाणं ठिइं गइं चाउं,
लेसाणं तु सुणेह मे।।२।।

नामादि, वर्ण, रस, गन्ध, गति स्थिती को
संस्पर्श चिन्ह परिणाम व ठाण आयु ।
लेश्या विशिष्ट इनकी गुणगीतिका को
उत्कर्ष पूर्ण विधि से मुझ से सुनोगे ।।२।।

किण्हा णीला य काऊ य,
तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्क-लेस्सा य छट्ठा य,
णामाइं तु जहक्कमं।।३।।
जीमूय-णिद्ध संकासा,
गवल-रिट्ठग-सण्णिभा ।
खंजांजण-णयण-णिभा,
किण्ह-लेसा उ वण्णओ।।४।।
णीलासोग-संकासा,
चासपिच्छ-समप्पभा ।

धनाक्षरी
कृष्ण, नील, कापोत, सुतेज पद्म शुक्ल रूप
लेश्याओं का क्रमिक, स्ववर्ण दिखलावे है ।
वर्ण कृष्ण का सनिग्ध खंजन अंजन तुल्य
नेत्र तारिका के सम, सतत सुहावे है ।
नील लेश्या वर्ण, नील, कण्ठ चास पक्ष सम
अशोक वैडूर्य मणि, नील सरसावे है ।
कापोत लेश्या का, रूप अलसी समन पिक
पक्षति कापोत ग्रीवा, मिश्रित सुहावे है ।।३-६।।

वेरुलिय-णिद्ध संकासा,
णील-लेसा उ वण्णओ।।५।।
अयसी-पुप्फ संकासा,
कोइलच्छद-सण्णिभा ।
पारेवय गीव णिभा,
काऊलेसा उ वण्णओ।।६।।

हिंगुलय-धाउ संकासा,
तरुणाइच्च-सण्णिभा ।
सुयतुंड-पईव-णिभा,
तेऊलेसा उ वण्णओ।।७।।
हरियाल-भेय संकासा,
हलिद्दा-भेय समप्पभा ।
सणासण-कुसुम-णिभा,
पम्ह-लेसा उ वण्णओ।।८।।
संखंक कुन्द संकासा,
खीरपूर-समप्पभा ।
रयय-हार-संकासा,
सुक्क-लेस्सा उ वण्णओ।।६।।

तेजोलेश्या वर्ण गेरु, हिंगुल तरुण सूर्य
शुक चंचु, दीप ज्वाला, सम मन भावै है ।
पद्म लेश्या रंग ताल, हरिताल हरिद्रा सा
सण व आसन, पुष्प, पीत द्युति छावै है ।
शुक्ल लेश्या रूप शंख, अंकरत्न कुन्द पुष्प
दुग्ध धारा हारश्वेत रुचि, सरसावै है ।
नाम द्वार पूरव में सकल दिखाय दीन्हों
वर्ण-द्वार, दाशर्निक पुंगव, गिनावै है ।।७-६।।

जह कडुय-तुम्बग रसो,
णिम्बरसो कडुय रोहिणि-रसो वा ।
एत्तोवि अणंतगुणो,
रसो य किण्हाए णायव्वो।।१०।।
जह तिगडुयस्स य रसो,
तिक्खो जह हत्थि-पिप्पलीए वा ।
एत्तोवि अणंतगुणो,
रसो उ णीलाए णायव्वो।।११।।

कृष्ण लेश्या रस कटु तुम्बा निम्ब रोहिणी व
रस के अधिक कटु अनन्त सुहावै है ।
नील लेश्या रस गज पीपल त्रिकटु सम
पूर्णानन्त गुण तीक्ष्ण वितल समावै है ।
कपोत लेश्या का रस अपक्क रसाल तुल्य
कपित्थ कसैला जिमि, जन मन छावै है ।
तेजो लेश्या रस पक्क, आम्रफल स्वादु सम
कैंतके समान, खट, मीठा, मन भावै है ।।१०-१३।।

जह तरुण-अम्बग रसो,
तुवर-कविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणंतगुणो,
रसो उ काऊए णायव्वो।।१२।।
जह परिणयम्बग-रसो,
पक्क-कविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणतगुणो,
रसो उ तेऊए णायव्वो।।१३।।

वर-वारुणीए व रसो,
विविहाण व आसवाण जारिसओ ।
महु मेरयस्स व रसो,
एत्तो पम्हाए परएणं।।१४।।
खज्जूर-मुद्दिय रसो,
खीर-रसो खंड-सक्कर रसो वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो,
रसो उ सुक्काए णायव्वो।।१५।।
जह गो-मडस्स गंधो,
सुणग-मडस्स व जहा अहि-मडस्स ।
एत्तो वि अणंतगुणो,
लेसाणं अप्पसत्थाणं।।१६।।
जह सुरहि-कुसुम-गंधो,
गंध-वासाणं पिस्समाणाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो,
पसत्थ लेसाण तिण्हं वि।।१७।।

पद्म लेश्या रस, सुरा, आसव मैरेय मधु
अधिक अनन्त गुण आमल कसावै है ।
शुक्ल लेश्या रस क्षीर शर्करा खजूर सम
मद्वीक अनन्त गुण मधुर सुहावै है ।
धेनु श्वान सर्प मृत के भी दुरगन्ध से भी
अप्रशस्त लेश्याओं की अधिक रमावै है ।
सुरभित सुमन कस्तूरी केशरादिक से
प्रशस्त लेश्याओं की सुगन्ध मन भावै है ।।१४-१७।।

जह करगयस्स फासो,
गो-जिब्भाए य सागपत्ताणं ।

वसन्ततिलका
जैसे कि आरि, गउ जीम व शाक वृक्ष
छूना कठोर, अनुभूत सरूप में है ।

एत्तोवि अणंतगुणो,
लेसाणं अप्पसत्थाणं।।१८।।

वैसे अनन्त गुण, कर्कश पर्श तीन,
लेश्या स्वरूप, विभु ने, सविशिष्ट माना ।।१८।।

जह बूरस्स व फासो,
णवणीयस्स व सिरीस-कुसुमाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो,
पसत्थ-लेसाण तिण्हं वि।।१९।।

जो बूर वृक्ष, नवनीत, शिरीष पुष्प-
का स्पर्श है, मृदु विशेष, मनोज्ञकारी ।
वैसे सुकोमल सरूप, सुभद्र लेश्य
तीन प्रभूत गुण है शुभ लेशना के ।।१९।।

तिविहो व णवविहो वा,
सत्तावीसइ विहेक्कसीओ वा ।
दुसओ तेयालो वा,
लेसाणं होइ परिणामो।।२०।।

उत्कृष्ट मध्यम जघन्य कहे प्रकार-
के तीन तीन विधि से नव भेद भव्य ।
है सप्तविंशति विवृद्ध शतद्वियुक्त,
चालीस तीन परिणाम दुआर जाने ।।२०।।

पंचासव-प्पवत्तो,
तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य ।
तिव्वारम्भ-परिणओ,
खुद्दो साहसिओ णरो।।२१।।

जो पंच आश्रव सलीन अगुप्त पूर्ण,
षट्काय में निरत जीव विहिंसना में ।
आशातना विषय में नित पापकारी,
वो क्षुद्र साहस तथा अविवेकशाली ।।२१।।

णिद्धंस-परिणामो,
णिस्संसो अजिइंदिओ ।
एयजोग-समाउत्तो,
'किण्हलेसं' तु परिणमे।।२२।।

नि.शंक भाव रु नृशंस विलासलास
संसक्त है विषय भोग विवृद्ध राग-।
जो सर्वथा विषम घातक योग युक्त-
कृष्णादि लेश्य परिणाम लहे अनन्त ।।२२।।

इस्सा अमरिस अतवो,
अविज्जमाया अहीरिया ।
गेही पओसे य सढे,
पमत्ते रसलोलुए साय-गवेसए य ।।२३।।

घनाक्षरी
ईर्ष्यालु कदाग्रही तपस्या हीन दिन ज्ञानी
मायावी, निर्लज्ज, विष-विषय आसक्त है ।
जीवमात्र द्वेषी छल कपट विरोधी धूर्त
सावधान हीन परमादी रस [illegible] है ।

आरम्भाओ अविरओ,
खुद्दो-साहस्सिओ णरो ।
एयजोग-समाउत्तो,
'णीललेसं' तु परिणमे।।२४।।

सुख की गवेषणा में, आरम्भ से अविरत
क्षुद्रता दुःसाहस में, सतत प्रसक्त है ।
पाप योगयुक्त नित्य, मत्त कर कर्म रत,
नील लेश्या परिणत, मनुज अशक्त है ।।२३-२४।।

वंके वंक-समायारे,
णियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउंचग ओवहिए,
मिच्छदिट्ठी अणारिए।।२५।।
उप्फालग-दुट्ठवाई य,
तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोग समाउत्तो,
'काऊलेसं' तु परिणमे।।२६।।

वक्र वक्राकर रूप, कपट करे है क्रूर
ऋजु भाव मुक्त, प्रतिकुंचन ने धारै है ।
छद्म का करत कार्य, मिथ्या दृष्टि है अनार्य
उत्प्रासक दुर्वचन स्तेय न निवारै है ।
मत्सरी भावों के पूर योगों में रहत चूर
प्राणातिपात न कार्य, निश दिन सारै है ।
परि के संसार चक्र, भ्रमत रहत नित
कापोत लेश्या की, परिणति में उजारै है ।।२५-२६।।

णीयावित्ती अचवले,
अमाई अकुऊहले ।
विणीय-विणए दंते,
जोगवं उवहाणवं।।२७।।
पियधम्मे दढधम्मे,
अवज्ज-भीरु हिएसए ।
एयजोग-समाउत्तो,
'तेऊलेसं' तु परिणमे।।२८।।

रहे नम्रता को धार, अचपल माया मुक्त
अकुतूह हीन नय भाव अपनावे है ।
दान्त अरु योगवान सतत स्वाध्याय बद्ध
उपधान कारी तप, धर्म ध्यान ध्यावे है ।
प्रिय धर्म दृढ़ धर्म, पाप भीरु हितकारी
मुक्ति की गवेषणा को, नित प्रति चावै है ।
शुभ योग युक्त शक्त, विनियोग रागरिक्त
तेजो लेश्या परिणत सतत सुहावै है ।।२७-२८।।

पयणु-कोहमाणे य,
मायालोहे य पयणुए ।
पसंत-चित्ते दंतप्पा,
जोगवं उवहाणवं।।२९।।

बसन्ततिलका
क्रोधादि मान अरु लोभ व वक्रभाव
अत्यल्प रूप परिणाम विमूषणाक्त ।
है योगवान उपधान विशिष्ट शान्त
दान्तात्म दीप्त रखता निज भावना को ।।२९।।

तहा पयणुवाई य,
उवसंते जिइंदिए ।
एयजोग-समाउत्तो,
'पम्हलेसं' तु परिणमे।।३०।।

बोले ससीम, उपशान्त रहे सदैव
जेता विशिष्ट, अपनी, चल इन्द्रियों का ।
योगादि में सतत है, गतिशील भव्य
है पद्म की, परिणती उसमे पुनीत ।।३०।।

अट्ट-रुद्दाणि वज्जित्ता,
धम्म-सुक्काणि झायए ।
पसंत-चित्ते दंतप्पा,
समिए गुत्ते य गुत्तिसु।।३१।।
सरागे वीयरागे वा,
उवसंते जिइंदिए ।
एयजोग-समाउत्तो,
'सुक्क-लेसं' तु परिणमे।।३२।।

जो आर्त्त रौद्रमय चिन्तन छोड़ देता
धर्मादि शुक्ल जिसमें, परिचिन्तना है ।
है शान्त दान्त समिती अरु गुप्ति युक्त
है शुक्ल की परिणती उसमें यथार्थ ।।३१-३२।।

असंखिज्जा-णोसप्पिणीण,
उस्सप्पिणीण जे समया ।
संखाईया लोगा,
लेसाण हवंति ठाणाइं।।३३।।

धनाक्षरी

असंख्य अनन्त अवसर्पिणी समग्रकाल
उतसर्पिणी के तथा, जितने समय है ।
योजन असंख्य, परिणाम, सर्वलोक के भी-
जितने आकाश परदेश के निलय हैं ।
शुभाशुभ भावों की, आरोह अवरोह वाली
भूमिकाए भूमि भाव भावना सदय है ।
स्थान द्वार करते, निरूपण महर्षिवृन्द
उतनी ही, लेश्याओं के थिति थान चय है ।।३३।।

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
तेत्तीसा सागरा मुहुत्तऽहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई,
नायव्वा 'किण्ह-लेसाए'।।३४।।
मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
दसउदही पलिय-मसंखभाग-मब्भहिया ।

कृष्ण लेश्या संस्थिति जघन्य है मुहूर्त अर्ध
तैतीस सागरोपम अधिक मुहूर्त है ।
नील लेश्या थिति है, जघन्य से मुहूर्त अर्द
उत्कृष्ट पल्योपम सागर दस जाव है ।
कापोत लेश्या की स्थिति जघन्य तथैव जानो
उत्कृष्ट पल्योपम अधिक तीन गावै है ।

उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा 'णीललेसाए'।।३५।।
मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
तिण्णुदही पलिय-मसंखभाग-मब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा 'काउलेसाए'।।३६।।
मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
दोण्णुदही पलिय-मसंखभाग-मब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा 'तेउ लेसाए'।।३७।।

तेजो लेश्या, स्थिती है, जघन्य से, मुहूर्त अन्त-
उत्कृष्ट पल्योपम, दो, अधिक बतावै है ।।३४-३७।।

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
दस उदही होइ मुहुत्त-मब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा 'पम्हलेसाए'।।३८।।
मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई,
णायव्वा 'सुक्कलेसाए'।।३९।।
एसा खलु लेसाणं,
ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ ।
चउसु वि गईसु एत्तो,
लेसाण ठिइं तु वोच्छामि।।४०।।
दसवास-सहस्साइं,
काऊए ठिई जहण्णिया होइ ।
तिण्णुदही-पलिओवम,
असंखभागं च उक्कोसा।।४१।।

पद्म लेश्या की, जघन्य स्थिती है, मुहूर्त अर्ध
एकाधिक दस साग्र रूप दरसावै है ।
शुक्ल की जघन्य, स्थिति कहत मुहूर्त अर्ध
मुहूर्त अधिक श्रेष्ठ तेतीस कहावै है ।
गति की अपेक्षा बिन, स्थिति कही सामान्य है
चारों गति रूप, स्थिति प्रभु बतलावै है ।
कहत कापोत रूप, जघन्य स्थिती सरूप
दस वर्ष उत्कृष्टि, सागर तीन पावै है ।।३८-४१।।

तिण्णुदही पलिओवम,
असंखभागो जहण्णेण णीलठिई ।
दसउदही पलिओवम,
असंखभागं य उक्कोसा।।४२।।
दसउदही पलिओवम,
असंखभागं जहण्णिया होइ ।
तेत्तीस सागराइं,
उक्कोसा होइ किण्हाए।।४३।।
एसा णेरइयाणं,
लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि,
तिरिय मणुस्साण देवाणं।।४४।।
अंतोमुहुत्त-मद्धं,
लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ ।
तिरियाण णराणं वा,
वज्जित्ता केवलं लेसं।।४५।।

नील की स्थिति है न्यून पल्य है, असंख्य भाग
अधिक में तीन श्रेष्ठ दस ने उजारै है ।
कृष्ण का जघन्य पल्य, असंख्य है दस सिन्धु
तैतीस सागर भव्य, मुनि-गण धारै है ।
नैरयिक जीवों का तो, किया है वर्णन भव्य
तीन गति शिष्ट भाव, सम्प्रति विचारै है ।
लेश्या शुक्ल त्याग के मनुष्य रु तिर्यंच लेश्या
अन्तर मुहूर्त सर्वथिति ही संवारै है ।।४२-४५।।

मुहुत्तद्धं तु जहण्णा,
उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ।
णवहिं वरिसेहिं ऊणा,
णायव्वा सुक्कलेसाए।।४६।।

बसन्ततिलका
अन्तर्मुहूर्त कम से स्थिति शुक्ल लेश्या-
की सर्वमान्य, थिति भी, कहता विशिष्ट ।
नौ वर्ष, अल्प इक, कोटि विनिश्चिती है
तत्त्वार्थ बोध यह है, परमोपयोगी ।।४६।।

एसा तिरिय-णराणं,
लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि,
लेसाण ठिई उ देवाणं।।४७।।
दसवास-सहस्साइं,
किण्हाए ठिई जहण्णिया होइ ।

घनाक्षरी
किया है वर्णन सिर्फ, मानव तिर्यंच दिव्य
देवों की थिती को, जिनदेव दरसावे है ।
कृष्ण की जघन्य, थिति, कही है हजार दस
श्रेष्ठ पल्य असंख्य सरूप मन भावे है ।
समय अधिक एक, नील की जघन्य स्थिति
ऊंची पल्य, असंख्य, अधिक [illegible] है ।

पलिय-मसंखिज्ज इमो,
उक्कोसा होइ किण्हाए।।४८।।
जा किण्हाए ठिई खलु,
उक्कोसा सा उ समय-मब्भहिया ।
जहण्णेणं णीलाए,
पलिय-मसंखं य उक्कोसा।।४६।।
जा णीलाए ठिई खलु,
उक्कोसा सा उ समय-मब्भहिया ।
जहण्णेणं काऊए,
पलिय-मसंखं य उक्कोसा।।५०।।

नीलोत्कृष्ट स्थिति से, समय एकाधिक अन्य
असंख्यात भाग, पल्याधिक, स्थिति गावै है ।।४७-५०।।

तेण परं वोच्छामि,
तेऊ लेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइ वाणमंतर,
जोइस-वेमाणियाणं य।।५१।।

बसन्ततिलका

वैमानिदेव भवनादिक देव दिव्य
ज्योतिष्क वन्तर सरूप निरूपणा है ।
जो भी प्ररूपण किया, उसके अनन्त-
जानो, विशेष कहना अवशिष्ट रूप ।।५१।।

पलिओवमं जहण्णा,
उक्कोसा सागरा उ दुण्णहिया ।
पलिय-मसंखेज्जेणं,
होइ भागेण तेऊए।।५२।।
दस वास सहस्साइं,
तेऊए ठिई जहण्णिया होइ ।
दुण्णुदही पलिओवम,
असंखभागं य उक्कोसा।।५३।।
जा तेऊए ठिई खलु,
उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ।
जहण्णेणं पम्हाए,
दस उ मुहुत्ताहियाइ य उक्कोसा।।५४।।

धनाक्षरी

होती तेजोलेश्या स्थिति, जघन्य पल्य की एक
उत्कृष्ट असंख्याधिक सागर दो पावै है ।
तेजो की जघन्य स्थिति, हजार कहावै दस
उत्कृष्ट तो, पूर्व सम, सतत गिनावै है ।
तेजो के समान, एक समय अधिक पद्म
उत्कृष्ट मुहूर्तेक, दस, सागर आवै है ।
शुक्ल एकाधिक पद्म, सम है जघन्य स्थिति-
अथक मुहूर्त सिंधु, तैतीस कहावै है ।।५२-५५।।

जा पम्हाए ठिई खलु,
उक्कोसा सा उ समय-मब्भहिया ।
जहण्णेणं सुक्काए,
तेत्तीस मुहुत्त-मब्भहिया।।५५।।

किण्हा नीला काऊ,
तिण्णि वि एयाओ अहम्म लेस्साओ।
एयाहि तिहि वि जीवो,
दुग्गइं उववज्जई।।५६।।
तेऊ, पम्हा, सुक्का,
तिण्णि वि एयाओ धम्म-लेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो,
सुग्गइं उववज्जई।।५७।।

बसन्ततिलका

लेश्यात्रयी प्रथम की अपवित्र रूप
प्राणी अनेक गति में गिरता अवश्य ।
तेजस् व पद्म अरु शुक्ल विशेष लेश्या-
की है, गती सुगति रूप मनोज्ञकारी ।।५६-५७।।

लेस्साहिं सव्वाहिं,
पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
ण हु कस्सइ उववाओ,
परे भवे अत्थि जीवस्स।।५८।।
लेस्साहिं सव्वाहिं,
चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
ण हु कस्सइ उववाओ,
परे भवे अत्थि जीवस्स।।५९।।
अंत मुहुत्तम्मि गए,
अंत-मुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेस्साहिं परिणयाहिं,
जीवा गच्छंति परलोयं।।६०।।
तम्हा एयासिं लेस्साणं,
आणुभावे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता,
पसत्थाओ-ऽहिट्ठिए मुणी।।६१।।

धनाक्षरी

प्रथम समै में परिणत, सब लेश्याओं से
भवान्त में कोई जीव, जन्म नाही पावे है ।
चरम समै में, परिणत सब लेश्याओं से
भवान्त में कोई जीव, जनम न छावे है ।
अन्तर्मुहूर्त के व्यतीत, होय जाने पर भी
शेष अर्ध भाग में तो, पर भव जावे है ।
समझ स्वरूप भव्य, अप्रशस्त मार्ग त्याग
पंथ प्रशस्त पर अधिष्ठित सुहावे है ।।५८-६१।।

३५ अध्ययन : अणगारमार्गगति

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम अनगारमार्गगति (अणगारमग्गगई) है। इसमे घरबार, स्वजन–परिजन, तथा गृह–कार्य और व्यापार–धंधा आदि छोडकर अनगार बने हुए भिक्षाजीवी मुनि को विशिष्ट मार्ग में गति (पुरुषार्थ) करने का सकेत किया गया है।
- यद्यपि भगवान् महावीर ने अगारधर्म और अनगारधर्म दो प्रकार के धर्म बताए है, और इन दोनों की आराधना के लिए सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र रूप मोक्षमार्ग बताया है, किन्तु दोनों धर्मों की आराधना–साधना में काफी अन्तर है। उसी को स्पष्ट करने एवं अनगारधर्ममार्ग को विशेष रूप से प्रतिपादित करने हेतु अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।
- प्रस्तुत अध्ययन में कहा गया है कि अनगार मार्ग मे गति करने वाला धर्म का आराधक ऐसा वीतराग समतायोगी मुनि, केवलज्ञान एव शाश्वत मुक्ति प्राप्त कर समस्त दु.खों से मुक्त हो जाता है।
- निष्कर्ष यह है कि अनगारमार्ग, अगारमार्ग से भिन्न है। वह एक सुदीर्घ साधना है, जिसके लिए जीवनपर्यन्त सतत सतर्क एवं जागृत रहना होता है। अनगारधर्म का मार्ग आत्मनिष्ठ होकर पंचाचारो मे पराक्रम करने का मार्ग है।

३५. अणगारमार्गगति

सुणेह मे एगग्ग-मणा,
मग्गं बुद्धेहिं देसियं ।
जमायरंतो भिक्खू,
दुक्खाणन्त-करे भवे।।१।।

एकाग्र पूर्ण मन से, सुन के मनोज्ञ
बुद्ध प्रवेदित विशिष्ट सुमार्ग-भिक्षु ।
होके प्रविष्ट इसमें, शुचि साधना से
दुःखादि अन्त, करता, निज की क्रिया से ।।१।।

गिहवासं परिच्चवज्जा,
पव्वज्जा-मस्सिए मुणी ।
इमे संगे वियाणिज्जा,
जेहिं सज्जंति माणवा।।२।।

आवास राग परिमुक्त बने तपस्वी
दीक्षा-प्रकर्ष पथ पै चलता मनस्वी ।
संसर्ग से मुनि रहे न कभी सशक्त
आत्मार्थ ही, गमन हो, शिव शान्ति हेतु ।।२।।

तहेव हिंसं अलियं,
चोज्जं अबंभ-सेवणं ।
इच्छा-कामं य लोहं य,
संजओ परिवज्जए।।३।।

हिसा, असत्य अरु चौर्य व मैथुनादि-
अप्राप्त काम परिलोभ, विविक्त भावी ।
संसाधना परक साधक की प्रवृत्ति-
सन्मार्ग पै, निरत हो, विधि से प्रयुक्त ।।३।।

मणोहरं चित्तघरं,
मल्ल-धूवेण वासियं ।
सकवाडं पण्डु-रुल्लोयं,
मणसा वि ण पत्थए।।४।।

सच्चित्रयुक्त समनोज्ञ निवास माल्य
धूपादि सुन्दर, कपाट सचन्दवा की ।
इच्छा कदापि न करे, मुनि साधनार्थी
संसिद्धि के, वरण में, कुछ भी न [illegible] ।।४।।

३५ अध्ययन : अणगारमार्गगति

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम अनगारमार्गगति (अणगारमग्गगई) है। इसमे घरबार स्वजन–परिजन, तथा गृह–कार्य और व्यापार–धंधा आदि छोडकर अनगार बने हु भिक्षाजीवी मुनि को विशिष्ट मार्ग मे गति (पुरुषार्थ) करने का संकेत किया गया है
- यद्यपि भगवान् महावीर ने अगारधर्म और अनगारधर्म दो प्रकार के धर्म बताए है, औ इन दोनों की आराधना के लिए सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र रूप मोक्षमार्ग बताया है किन्तु दोनों धर्मों की आराधना–साधना में काफी अन्तर है। उसी को स्पष्ट करने ए अनगारधर्ममार्ग को विशेष रूप से प्रतिपादित करने हेतु अध्ययन प्रस्तुत किया गय है।
- प्रस्तुत अध्ययन में कहा गया है कि अनगार मार्ग मे गति करने वाला धर्म क आराधक ऐसा वीतराग समतायोगी मुनि, केवलज्ञान एवं शाश्वत मुक्ति प्राप्त क समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।
- निष्कर्ष यह है कि अनगारमार्ग, अगारमार्ग से भिन्न है। वह एक सुदीर्घ साधना है जिसके लिए जीवनपर्यन्त सतत सतर्क एवं जागृत रहना होता है। अनगारधर्म का मार्ग आत्मनिष्ठ होकर पंचाचारो में पराक्रम करने का मार्ग है।

३५. अणगारमार्गगति

सुणेह मे एगग्ग-मणा,
मग्गं बुद्धेहिं देसियं ।
जमायरंतो भिक्खू,
दुक्खाणन्त-करे भवे।।१।।

एकाग्र पूर्ण मन से, सुन के मनोज्ञ
बुद्ध प्रवेदित विशिष्ट सुमार्ग-भिक्षु ।
होके प्रविष्ट इसमें, शुचि साधना से
दुःखादि अन्त, करता, निज की क्रिया से ।।१।।

गिहवासं परिच्चज्जा,
पव्वज्जा-मस्सिए मुणी ।
इमे संगे वियाणिज्जा,
जेहिं सज्जंति माणवा।।२।।

आवास राग परिमुक्त बने तपस्वी
दीक्षा-प्रकर्ष पथ पै चलता मनस्वी ।
संसर्ग से मुनि रहे न कभी सशक्त
आत्मार्थ ही, गमन हो, शिव शान्ति हेतु ।।२।।

तहेव हिंसं अलियं,
चोज्जं अबंभ-सेवणं ।
इच्छा-कामं य लोहं य,
संजओ परिवज्जए।।३।।

हिसा, असत्य अरु चौर्य व मैथुनादि-
अप्राप्त काम परिलोभ, विविक्त भावी ।
संसाधना परक साधक की प्रवृत्ति-
सन्मार्ग पै, निरत हो, विधि से प्रयुक्त ।।३।।

मणोहरं चित्तघरं,
मल्ल-धूवेण वासियं ।
सकवाडं पण्डु-रुल्लोयं,
मणसा वि ण पत्थए।।४।।

सच्चित्रयुक्त समनोज्ञ निवास माल्य
धूपादि सुन्दर, कपाट सचन्दवा [illegible] ।
इच्छा कदापि न करे, मुनि साधनार्थी
संसिद्धि के, वरण में, कुछ भी न [illegible] ।।४।।

इंदियाणि उ भिक्खुस्स,
तारिसम्मि उवस्सए ।
दुक्कराइं णिवारेउं,
कामराग विवड्ढणे।।५।।

कामादि राग, परिवर्धक विघ्नकारी
पर्यंकयुक्त गृह में चल इन्द्रियों का ।
पूरा निरोध करना, यति भिक्षुओं के-
वास्ते सदैव, अतिदुष्कर है नितान्त ।।५।।

सुसाणे सुण्णगारे वा,
रुक्खमूलेव इक्कओ ।
पइरिक्के परकडे वा,
वासं तत्थाभि-रोयए।।६।।

सर्वार्थ शून्य गृह, या शव दाह भूमि-
वृक्षादि के तल, विशेष तथान्यदीय ।
संवास में यति वृती करणीयकारी
एकान्त शान्त बन के, विचरे अकेले ।।६।।

फासुयम्मि अणाबाहे,
इत्थीहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ संकप्पए वासं,
भिक्खू परम संजए।।७।।

निर्बाध्य सुस्थल सदा, महिला-विमुक्त
दोष प्रशून्य, अनपाय विविक्त शान्त ।
होवे सुवास मुनि का उसमें सहर्ष
संयाम में विचरते, हित साधना में ।।७।।

ण सयं गिहाइं कुव्विज्जा,
णेव अण्णेहिं कारए ।
गिहकम्म-समारम्भे,
भूयाणं दिस्सए वहो।।८।।

आरम्भ-कार्य गृह में, सविशेष होता
प्राणातिपात कृति में, न करे प्रवृत्ति ।
न प्रेरणा विधि करे, पर को तदर्थ
निर्लेप हो कर रहे, मुनि साधना में ।।८।।

तसाणं थावराणं य,
सुहुमाणं बायराण य ।
तम्हा गिह-समारम्भं,
संजओ परिवज्जए।।९।।

षट्काय के त्रस व थावर सूक्ष्म थूल-
संजीव का वध जहॉ, दिखता समक्ष-।
आरम्भ कार्य, गृह को वध रूप जान-
हिंसादि कर्म पथ से मुनि दूर जावे ।।९।।

तहेव भत्तपाणेसु,
पयणे पयावणेसु य ।
पाणभूय दयट्ठाए,
ण पए ण पयावए।।१०।।

भक्तादि पान परिपाचन संविधा में
हिंसादि जन्य पथ पै, न मुनीश जावे ।
भूतादि सत्त्व चय की, अनुकम्पनार्थ
साधू सदा सदन साधनाहीन होवे ।।१०।।

जल-धण्ण-णिस्सिया जीवा,
पुढवी-कट्ठ-णिस्सिया ।
हम्मंति भत्तपाणेसु,
तम्हा भिक्खू ण पयावए।।११।।

पाकादि कार्य न करे, स्वयमेव साधु
या प्रेरणा न उसमें, जल धान्य भूमि-।
काष्ठावलम्बि बहु जीव विघातना से-
होती, अतः परिविवर्जन ही यथार्थ ।।११।।

विसप्पे सव्वओ-धारे,
बहुपाणि विणासणे ।
णत्थि जोइसमे सत्थे,
तम्हा जोइं ण दीवए।।१२।।

है अग्नि के, न समकक्ष विशेष शस्त्र
तीक्ष्ण प्रकृष्ट जन, नाशक है प्रभाव-।
होता विनाश बहुधा, जन जिन्दगी का
अग्नि प्रदीप्त न करे, मुनि साधनार्थी ।।१२।।

हिरण्णं जायरूवं य,
मणसा वि ण पत्थए ।
समलेट्ठु कंचणे भिक्खू,
विरए कय-विक्कए।।१३।।

स्वर्णादि को समझ लोष्ट समान मान-
बेचे, न ले, विरत की, शुचि भावना से ।
होवे न चाह मन में, इनकी कदापि-
मिट्टी स्वरूप समझें, प्रति वस्तुओं को ।।१३।।

किणंतो कइओ होइ,
विक्किणंतो य वाणिओ ।
कय-विक्कयम्मि वट्टंतो,
भिक्खू ण भवइ तारिसो।।१४।।

क्रेता कहा विविध वस्तु खरीदने से-
बेचें, उसे वणिक् की अभिधा कही है ।
होता पृथक् उभय से, वह भिक्षु जीव-
साधुत्व की, विशदता जिसमें सुहाती ।।१४।।

भिक्खियव्वं ण केयव्वं,
भिक्खुणा भिक्ख-वत्तिणा ।
कय-विक्कओ महादोसो,
भिक्खवित्ती सुहावहा।।१५।।

भिक्षा क्रियान्वयन से, मुनि भोजनादि-
भिक्षाचरी सतत कल्प जिनेन्द्र दिष्ट-।
सावद्य वस्तु विनियोजन हीन होवे-
पूरी सुखावह सदा मुनि गोचरी है ।।१५।।

समुयाणं उंछ-मेसिज्जि,
जहासुत्त-मणिन्दियं ।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे,
पिण्डवायं चरे मुणी।।१६।।

सिद्धान्त के विमल पंथ विशेष से ही-
होवे, पदानुसरता रुचि से विशिष्ट ।
निन्दा विहीन अरु उच्च व सामुदानि-
की एषणा ग्रहण से, परितुष्ट होवे ।।१६।।

अलोले ण रसे गिद्धे,	होवे न गृद्ध, रस में, परिदान्त शान्त
जिब्भादंते अमुच्छिए ।	हो स्वाद पै, विजय, मूर्च्छित भी न होवे।
ण रसट्ठाए भुंजिज्जा,	संयाम यापन हितार्थ, सदा सुभिक्षा
जवणट्ठाए महामुणी।।१७।।	ना स्वाद के, विषय में, मुनि दृष्टि डाले ।।१७।।
अच्चणं रयणं चेव,	पूजा न पुष्प, चय से, रचना न वस्त्र
वंदणं पूयणं तहा ।	लाभादि ऋद्धि, सतकार सुकामना न।
इड्ढी सक्कार सम्माणं,	सम्मान की नमन में, कुछ भी समीहा-
मणसा वि ण पत्थए।।१८।।	पूरा विरक्त मुनि हो, जिन धर्मनिष्ठ ।।१८।।
सुक्कज्झाणं झियाएज्जा,	शुक्लादि धान लवलीन रहे तपस्वी
अणियाणे अकिंचणे ।	पूरा निदान विनिहीन धनादिरिक्त ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा,	आजन्म देह ममता, परिशून्य होके
जाव कालस्स पज्जओ।।१९।।	निर्द्वन्द्व हो, नियम से विचरे, सदैव ।।१९।।
णिज्जूहिऊण आहारं,	कालान्तिम क्षण विलोक विनीत साधु-
कालधम्मे उवट्ठिए ।	आहार का तब करे, परिवर्जनादि-।
चइऊण माणुसं बोन्दिं,	मानुष्य देह, तज के, विनिवृत्त काम-
पहू दुक्खा विमुच्चई।।२०।।	दुःखादि मुक्त बन के प्रभु सिद्ध होता ।।२०।।
णिमम्मे णिरहंकारे,	निर्मान निर्मम अहंकृति हीन वीत-
वीयरागो अणासवो ।	रागादि रूप शुभ संवर सेवनार्थी-।
संपत्तो केवलं णाणं,	पाके, प्रकृष्ट शुचि केवल बोध बुद्ध
सासयं परिणिव्वुए।।२१।।	हो, शुद्ध शाश्वत, विमुक्त पदाधिकारी ।।२१।।

३६ अध्ययन : जीवाजीवविभाग

अध्ययन–सूत्र संकेत

- प्रस्तुत अध्ययन का नाम है–जीवाजीव–विभक्ति (जीवाजीवविभत्ती)। इसमे जीव और अजीव के विभागों (भेद–प्रभेदो) का निरूपण किया गया है।
- जीव और अजीव, ये दो तत्त्व ही मूल है। शेष सब तत्त्व या द्रव्य इन्ही दो के संयोग या वियोग से माने जाते है। जीव और अजीव का संयोग प्रवाहरूप से अनादि है, विशेष रूप से सादि–सान्त है। यह सयोग ही ससारी जीवन है। क्योकि जब तक जीव के साथ कर्मपुद्गलो या अन्य सांसारिक पदार्थो का संयोग रहता है, तव तक उसे जन्म–मरण करना पडता है। जीव के देह, इन्द्रिय, मन, भाषा, सुख, दु.ख आदि सब इसी सयोग पर आधारित है। प्रवाह–रूप से अनादि यह संयोग, सान्त भी हो सकता है, क्योकि राग–द्वेष ही उक्त संयोग के कारण हैं। कारण को मिटा देने पर रागद्वेषजनित कर्मबन्धन और उससे प्राप्त यह ससार–भ्रमणरूप कार्य, स्वत· ही समाप्त हो जाता है।
- जीव और अजीव की इस संयुक्ति को मिटाना और विभक्ति (पृथक) करना अर्थात् साधक के लिए जीव और अजीव का भेदविज्ञान करना ही इस अध्ययन का उद्देश्य है। जीव और अजीव का भेदविज्ञान करना–विभक्ति करना ही तत्त्वज्ञान का फल है, यही सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, जिनवचन मे अनुराग हैं।
- इसी हेतु से सर्वप्रथम 'जीव' का निरूपण करने की अपेक्षा अजीव का निरूपण किया गया है।
- जीव शुद्धस्वरूप की दृष्टि से विभिन्न श्रेणी के नही हैं, किन्तु कर्मों से आवृत होने के कारण शरीर, इन्द्रिय, मन, गति, योनि, क्षेत्र आदि की अपेक्षा से उनके अनेक भेदों का निरूपण किया गया है।

- अन्त में जीव और अजीव के स्वरूप का श्रवण, ज्ञान, श्रद्धान करके तदनुरूप संयम मे रमण करने का विधान किया गया है।
- अन्तिम समय में संल्लेखना–संथारापूर्वक समाधिमरण प्राप्त करने हेतु सलेखना की विधि, कन्दर्पी आदि पांच अशुभ भावनाओं से आत्मरक्षा तथा मिथ्यादर्शन, निदान, हिंसा एवं कृष्णलेश्या से बचकर सम्यग्दर्शन, अनिदान और शुक्ललेश्या, जिन–वचन में अनुराग तथा उनका भाव–भक्ति पुरस्सर आचरण तथा योग्य सुदृढ़ संयमी गुरुजन के पास आलोचनादि से शुद्ध होकर परीतसंसारी बनने का निर्देश किया गया है।
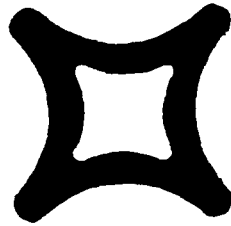
३६. जीवाजीवविभाग

जीवाजीव-विभत्तिं,
सुणेह मे एगमणा-इओ ।
जं जाणिऊण भिक्खू,
सम्मं जयइ संजमे।।१।।

सच्चे अजीव अरु जीव विभाग रूप-
को मैं कहूँ तुम सुनो, धर धीरता को-।
सम्यक् स्वरूप जिसको ध्रुव जानने से-
संयाम में स्थिर बने, कर यत्न भव्य ।।१।।

जीवा चेव अजीवा य,
एस लोए वियाहिए ।
अजीव-देस-मागासे,
अलोए से वियाहिए।।२।।

ये लोक जीव रु अजीव कहा गया है-
होता अजीव गत, देश विभाग एक-।
आकाश केवल, अलोक कहा गया है-
है शुद्ध बोध, जिन आगम का यथार्थ ।।२।।

दव्वओ खेत्तओ चेव,
कालओ भावओ तहा ।
परूवणा तेसिं भवे,
जीवाण-मजीवाण य।।३।।
रूविणो चेव अरूवी य,
अजीवा दुविहा भवे ।
अरूवी दसहा वुत्ता,
रूविणो य चउव्विहा।।४।।

द्रव्यादि भूमि, अरु काल व भावना से
निर्देशना जड व जीव विशेष की है ।
रूपी अरूप यह भेद अजीव के हैं
रूपीय चार, दश, भेद अरूप के हैं ।।३-४।।

धम्मत्थि-काए तद्देसे,
तप्पएसे य आहिए ।

धर्मास्तिकाय गत देश [illegible] प्रदेश
होता, अधर्म गत [illegible] ।

अहम्मे तस्स देसे य,
तप्पएसे य आहिए।।५।।
आगासे तस्स देसे य,
तप्पएसे य आहिए ।
अद्धा समए चेव,
अरूवी दसहा भवे।।६।।

आकाश का कथन भी, समझें समान
कालादि भेद दिग रूप अजीव के हैं ।।५-६।।

धम्माधम्मे य दो चेव,
लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे,
समए समय-खेत्तिए।।७।।
धम्माधम्मागासा,
तिण्णि वि एए अणाइया ।
अपज्जवसिया चेव,
सव्वद्धं तु वियाहिया।।८।।

धर्माधर्म तत लोक सरूप जानो
आकाश लोक व अलोक विमध्यलीन ।
है काल तो मनुज लोकल नान्यदीय
होते, अनादि व अनन्त व नित्य तीन ।।७-८।।

समए वि सन्तइं पप्प,
एवमेव वियाहिए ।
आएसं पप्प साईए,
सपज्जवसिए वि य।।९।।

सापेक्ष से, समय को, कहते अनादि
एवम् अनन्ततम भी, सुविवेचना है ।
है व्यक्ति से, क्षण अपेक्षित सादिसान्त
रूपी अजीव चय की, परिचर्चना है ।।९।।

खंधा य खंधदेसा य,
तप्पएसा तहेव य ।
परमाणुणो य बोद्धव्वा,
रूविणो य चउव्विहा।।१०।।

रूपी अजीव चय के सब चार भेद
स्कन्धाद्य है दुतम सन्ध विशिष्ट देश ।
स्कन्ध प्रदेश परमाणु कहे गये हैं
शास्त्र प्रदिष्ट इसकी, विनिदेशना है ।।१०।।

एगत्तेण पुहुत्तेण,
खंधा य परमाणु य ।
लोगेगदेसे लोए य,
भइयव्वा ते उ खेत्तओ।।११।।
सुहुमा सव्व लोगम्मि,
लोग-देसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु,
तेसिं वुच्छं चउव्विहं।।१२।।

धनाक्षरी
परमाणुओं की, एकता के, होने से है खन्ध
स्कन्ध से अलग होके, परमाणु होवै है ।
द्रव्य की अपेक्षा से, विवेचन नियोजित है
क्षेत्र की अपेक्षा, आदिपूर्ण लोक जोवै है ।
काल की अपेक्षा से, चार भेद निरदिष्ट
अनादि अनन्त परवाह, से संजोवै है ।
प्रतिनियत एक क्षेत्र, थिति की अपेक्षा से
सादी और शान्त, महागुणीजन टोहै है ।।११-१२।।

सन्तइं पप्प तेऽणाइ,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१३।।

बसन्ततिलका
रूपी अजीव परिवस्तु विशेष की भी
होती थिती समय एक जघन्य रूप ।
उत्कृष्ट में फिर असंख्य विवेचना है
है ये विधान जिन शास्त्र निदिष्ट भव्य ।।१३।।

असंखकाल-मुक्कोसं,
एक्को समयं जहण्णयं ।
अजीवाण य रूवीणं,
ठिई एसा वियाहिया।।१४।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
एक्कं समयं जहण्णयं ।
अजीवाण य रूवीणं,
अन्तरेयं वियाहियं।।१५।।

रूपी अजीव परिवस्तु जघन्य एक
अद्धीय ऊपर अनन्त कही गयी है ।
संस्थान वर्ण रस गन्ध व फर्श आदि-
की दृष्टि से परिणती गुण पंचधा है ।।१४-१५।।

वण्णओ गंधओ चेव,
रसओ फासओ तहा ।
संठाणओ य विण्णेओ,
परिणामो तेसिं पंचहा।।१६।।

जो स्कन्ध आदि परिपुद्गल वर्ण [illegible]
होती सदा परिणती नित पंचधा है ।
कृष्णादि नील अरु रक्त व पीत शुक्ल-
ये हैं विधा [illegible] जैन [illegible] की ।।१६।।

वण्णओ परिणया जे उ,
पंचहा ते पकित्तिया ।
किण्हा णीला य लोहिया,
हलिद्दा सुक्किला तहा।।१७।।
गंधओ परिणया जे उ,
दुविहा ते वियाहिया ।
सुब्भिगंध परिणामा,
दुब्भिगंधा तहेव य।।१८।।
रसओ परिणया जे उ,
पंचहा ते पकित्तिया ।
तित्त-कडुय-कसाया,
अम्बिला महुरा तहा।।१९।।

गंधादि से परिणती परिपुद्गलों की-
है दो प्रकार सुर भी, दुर भी, सरूप ।
जो वस्तु है, रस विशेष नत स्वरूप
वे पॉच तिक्त, कटु अम्ल कषाय मीठे ।।१७-१

फासओ परिणया जे उ,
अट्ठहा ते पकित्तिया ।
कक्खडा मउआ चेव,
गरुआ लहुया तहा।।२०।।

जो स्पर्श से, परिणती गत अष्ट भेद-
कार्कश्य युक्त, मृदु, गौरव, लाधवाक्त ।
शीतोष्ण, चिक्कण, व रुक्ष, तथैव जैन-
सिद्धान्त शास्त्र परिचर्चित सर्वथा से ।।२०

सीया उण्हा य णिद्धा य,
तहा लुक्खा य आहिया ।
इय फास परिणया एए,
पुग्गला समुदाहिया।।२१।।
संठाणओ परिणया जे उ,
पंचहा ते पकित्तिया ।
परिमंडला य वट्टा य,
तंसा चउरंस-मायया।।२२।।

संस्थान से, परिणती कथनीय पंच-
वृत्त त्रिकोण परिमण्ड चकोर दीर्घ ।
जो वर्ण से, असित है, रस गन्ध फर्श
संस्थान से, वह अनेक विकल्पशाली ।।२१-२२

वण्णओ जे भवे किण्हे,
भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२३।।
वण्णओ जे भवे णीले,
भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२४।।

जो वस्तु वर्ण गत नील व गन्ध फर्श
संस्थान और रस से, परिभाज्य भी है ।
जो वस्तु रक्त रस, गन्ध व फर्श रूप
संस्थान से, वह अनेक विकल्पयुक्त ।।२३-२४।।

वण्णओ लोहिए जे उ,
भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२५।।

जो वस्तु वर्ण परिपीत तथा सुगन्ध
वो ही रसादि अरु फर्श व संस्थितीय-।
होता अनेक परिकल्प, विकल्प वाला
जो है, जिनेन्द्र विभु से, अनुभूत भव्य ।।२५।।

वण्णओ पीयए जे उ,
भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२६।।
वण्णओ सुक्किले जे उ,
भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२७।।

जो वस्तु शुक्ल अरु गन्ध रसादि फर्श
संस्थान का कथन, भाज्य सरूप वाला ।
वैसे सुगन्ध, रस, वर्ण, सुफर्श युक्त
संस्थान से, कथन भाज्य निरूपणा भी ।।२६-२७।।

गंधओ जे भवे सुब्भी,
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२८।।

जो गन्ध से, दुरभि गन्ध तथैव वर्ण-
गन्धादि फर्श रस आकृति भाज्य रूप ।
जो पुद्गलादि रस से, [illegible] रूप
वर्णादि गन्ध अरु आकृति से [illegible] ।।२८-२९।।

फासओ कक्खडे जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३५।।

स्पर्शादि से अति कठोर सदैव वस्तु
गन्धादि वर्ण रस आकृति से विभाज्य ।
स्पर्शादि से मृदु सदैव रहे सुवस्तु
वर्णादि गन्ध रस आकृति से विभाज्य ।।३५।।

फासओ मउए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३६।।
फासओ गुरुए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३७।।
फासओ लहुए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३८।।

स्पर्शादि से गुरु सदैव रहे विवर्ण
गन्धादि और रस आकृति से विभाज्य ।
स्पर्शादि से लघु कहा प्रति वस्तुओं को
गन्धादि वर्ण रस आकृति से विभाज्य ।।३६-३८।।

फासओ सीयए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३९।।

जो वस्तु फर्श गुण शीत कहा गया है
वर्णादि गन्ध रस आकृति से विभाज्य ।
जो द्रव्य फर्श गुण उष्ण सरूपकारी
वर्णादि, गन्ध, रस, आकृति से विभाज्य ।।३९।।

फासओ उण्हए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।४०।।

जो वस्तु फर्श गुण मे [illegible] है
वर्णादि, गन्ध, रस, आकृति से [illegible] ।
जो द्रव्य फर्श गुण [illegible] है
वर्णाकृति [illegible] ।।[illegible]

गंधओ जे भवे दुब्भी,
भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।२६।।

रसओ तित्तए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३०।।
रसओ कडुए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३१।।

जो पुद्गलादि रस से, कटु है सुवर्ण-
गन्धादि फर्श अरु आकृति से विभाज्य-।
जो पुद्गलादि रस से, सुकषाय रूप-
वर्णादि, गन्ध अरु आकृति से, विभाज्य ।।३०-३१।।

रसओ कसाए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३२।।
रसओ अम्बिले जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३३।।
रसओ महुरए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३४।।

जो पुद्गलादि रस, अम्ल सरूपधारी
वर्णादि गन्ध अरु आकृति से विभाज्य ।
जो पुद्गलादि रस से मधु-वर्ण गन्ध
आकार से अरु रसादि विशेष भाज्य ।।३२-३४।।

फासओ कक्खडे जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३५।।

स्पर्शादि से अति कठोर सदैव वस्तु
गन्धादि वर्ण रस आकृति से विभाज्य ।
स्पर्शादि से मृदु सदैव रहे सुवस्तु
वर्णादि गन्ध रस आकृति से विभाज्य ।।३५।।

फासओ मउए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३६।।
फासओ गुरुए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३७।।
फासओ लहुए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३८।।

स्पर्शादि से गुरु सदैव रहे विवर्ण
गन्धादि और रस आकृति से विभाज्य ।
स्पर्शादि से लघु कहा प्रति वस्तुओं को
गन्धादि वर्ण रस आकृति से विभाज्य ।।३६-३८।।

फासओ सीयए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।३९।।

जो वस्तु फर्श गुण शीत कहा गया है
वर्णादि गन्ध रस आकृति से विभाज्य ।
जो द्रव्य फर्श गुण उष्ण [illegible]
वर्णादि, गन्ध, रस, आकृति से विभाज्य ।।३९।।

फासओ उण्हए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।४०।।

जो वस्तु फर्श गुण से [illegible]
वर्णादि, गन्ध, रस, आकृति से [illegible] ।
जो द्रव्य फर्श गुण [illegible] है
[illegible]

फासओ णिद्धए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।४१।।
फासओ लुक्खए जे उ,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए संठाणओ वि य।।४२।।

परिमण्डल संठाणे,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए फासओ वि य।।४३।।
संठाणओ भवे वट्टे,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए फासओ वि य।।४४।।

जो वस्तु आकृति कही परिमण्डलीय
वो वर्ण गन्ध रस फर्श विभाज्यधारी ।
जो द्रव्य आकृति सवृत्त तथा त्रिकोण
वो वर्ण गन्ध रस फर्श विभाज्यशील ।।४३-४

संठाणओ भवे तंसे,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए फासओ वि य।।४५।।
संठाणओ जे चउरंसे,
भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव,
भइए फासओ वि य।।४६।।
जे आयय संठाणे,
भइए से उ वण्णओ ।

आकार से चतुरकोण सरूप वस्तु
वो वर्ण गन्ध रस फर्श विभागकारी ।
संस्थान आयत सरूप कहा गया है
वो वर्ण, गन्ध, रस, फर्श विभाज्य युक्त ।।४५-४९

गंधओ रसओ चेव,
भइए फासओ वि य।।४७।।

एसा अजीव-विभत्ती,
समासेण वियाहिया ।
इत्तो जीव-विभत्तिं,
वुच्छामि अणुपुव्वसो।।४८।।

संक्षेप से जड विभाग सरूप का ही-
सम्पन्न है कथन भी क्रम से विशेष-।
है सम्प्रती विहित जीव विभाग भव्य-
श्रोता सुने, श्रुति निरूपण हो रहा है ।।४८।।

संसारत्था य सिद्धा य,
दुविहा जीवा वियाहिया ।
सिद्धा-णेगविहा वुत्ता,
तं मे कित्तयओ सुण।।४९।।

संसार सिद्ध यह भेद कहा सजीव-
होते अनेक विधयुक्त अकर्मकारी- ।
है पुण्य रूप गुण कीर्तन भी विशिष्ट
श्रोता सुने, कथन का विहिता विधान ।।४९।।

इत्थी पुरिस-सिद्धा य,
तहेव य णपुंसगा ।
सलिंगे अण्णलिंगे य,
गिहिलिंगे तहेव य।।५०।।

स्त्री लिंग, सिद्ध, नरलिंग, नपुंसलिंग
स्वंलिंग सिद्ध अरु अन्य गृहस्थ लिंग ।
उत्कृष्ट में अरु जघन्य व मध्यगाही
तिर्यक् तयोर्ध्व जल सागर सिद्ध होते ।।५०।।

उक्कोसोगाहणाए य,
जहण्ण मज्झिमाइ य ।
उड्ढं अहे य तिरियं च,
समुद्दम्मि जलम्मि य।।५१।।
दस य णपुंसएसु,
वीसं इत्थियासु य ।
पुरिसेसु य अट्ठसयं,
समए-णेगेण सिज्झई।।५२।।
चत्तारि य गिहलिंगे,
अन्नलिंगे दसेव य ।

होते समै दस नपुसक एक वीस
योषित् व एक शत अप्ट, कहे मनुष्य ।
होते गृहस्थ इककालिक चार अन्य
दिक् रूप युक्त निजलिग शतोत्तराप्ट ।।५१-५३।।

सलिंगेण अट्ठसयं,
समए-णेगेण सिज्झई।।५३।।

उक्कोसोगाहणाए य,
सिज्झंते जुगवं दुवे ।
चत्तारि जहण्णाए,
जव मज्झे अट्ठुत्तरं सयं।।५४।।

उत्कर्ष पूर्ण अवगाहन की स्थिती में
दो है जघन्य अवगाहन बीच चार ।
मध्यस्थ में शत विवृद्ध तथाष्ट जीव-
सिद्धत्व के गुण विशेष सदैव पाते ।।५४।।

चउ रुड्ढलोए य दुवे समुद्दे,
तओ जले वीसमहे तहेव य ।
सयं च अट्ठुत्तरं तिरियलोए,
समए-णेगेण सिज्झई धुवं।।५५।।

है उर्ध्वलोक पर चार, समुद्र में दो
होते जलाशय पदास्पद तीन नाम ।
नीचस्थ लोक मँह बीस विमुक्त जीव-
तिर्यक् धरा पर शताधिक अष्ट सिद्ध ।।५५।।

कहिं पडिहया सिद्धा,
कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदिं चइत्ताणं,
कत्थ गंतूण सिज्झई।।५६।।

होता कहाँ परिनिरोध ? कहॉ प्रतिष्ठा ?
त्याग प्रकृष्ट तनु को पद है कहॉ पै ।
त्यागी शरीर बिन से, गतिमान होके
जाके कहाँ पर, उपस्थित सिद्ध होते ? ।।५६।।

अलोए पडिहया सिद्धा,
लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ताणं,
तत्थ गंतूण सिज्झई।।५७।।

होते अलोक मुँह, रुद्ध तथा प्रतिष्ठा
लोकाग्र भाग विच मानव लोक हान ।
काया समाहित बने सततावबुद्ध
लोकाग्र भाग पद जाकर सिद्ध होते ।।५७।।

बारसहिं जोयणेहिं,
सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ।
ईसि-पब्भार-णामा उ,
पुढवी छत्त-संठिया।।५८।।

सर्वार्थ सिद्ध अमरादिविमान से भी
है द्वादशोच्च परियोजन छत्र रूप ।
प्राग्भार ईपत धरा पयतालि लक्ष
विष्कम्भ है, परिधि तो तिगुणी कही है ।।५८-५६।।

उस्सेहो जस्स जो होइ,
भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभाग-हीणो तत्तो य,
सिद्धाणोगाहणा भवे।।६५।।

एगत्तेण साईया,
अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाइया,
अपज्जवसिया वि य।।६६।।
अरूविणो जीवघणा,
णाणदंसण सण्णिया ।
अउलं सुहं संपत्ता,
उवमा जस्स णत्थि उ।।६७।।
लोगेगदेसे ते सव्वे,
णाणदंसण-सण्णिया ।
संसारपार णित्थिण्णा,
सिद्धिं वरगइं गया।।६८।।

वे तो अरूप सघनार्चित बोध दृष्टि-
से पूर्ण है अनुपमेय अपार सौख्य ।
संसार पार गत सिद्ध समग्र लब्धि
वे सिद्ध लोकगत एक पदावसीन ।।६६-६

संसारत्था उ जे जीवा,
दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव,
थावरा तिविहा तहिं।।६९।।

संसारि जीव चय के परिभेद दो हैं
संस्थावर त्रस विवेचित है विशिष्ट ।
पृथ्वी जलादि व वनस्पति थावरों का
भेद प्रभेद अधुना सुनना जिनोक्त ।।६६

पुढवी आउ जीवा य,
तहेव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा,
तेसिं भेए सुणेह मे।।७०।।

पृथ्वी निकाय गत भेद कहे गये दो
है सूक्ष्म वादर विभेद विभिन्न रूप ।
पर्याप्त दो, अपरिआप्त कहे गये हैं
दो दो विभेद उभयाश्रित आगमोक्त ।।७०

दुविहा पुढवी जीवा य,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
एवमेव दुहा पुणो।।७१।।
बायरा जे उ पज्जत्ता,
दुविहा ते वियाहिया ।
सण्हा खरा य बोधव्वा,
सण्हा सत्तविहा तहिं।।७२।।

पर्याप्त बादर धरा, तनु के विभेद
दो है, कठोर मृदु सात मृदुत्व के ये ।
श्यामासिताद्यरुण पीत सुपाण्डु सेत
अत्यन्त सूक्ष्म रज है, खर के छतीस ।।७१-७२।।

किण्हा णीला य रुहिरा य,
हालिद्दा सुक्किला तहा ।
पण्डु-पणग मट्टिया,
खरा छत्तीसई विहा।।७३।।
पुढवी य सक्करा वालुया य,
उवले सिला य लोणूसे ।
अय-तम्ब तउय-सीसग,
रुप्प-सुवण्णे य वइरे य।।७४।।
हरियाले हिंगुलुए,
मणोसिला सासगंजण-पवाले ।
अब्भ-पडलब्भ-वालुय,
बायरकाए मणिविहाणे।।७५।।

शुद्ध पृथ्वी शर्करा उपल वाल शिलाक्षार
नौनी मिट्टी लोहा, ताम्बा भपुक कहावे है ।
शीशा चॉदी सोना, वज्र हरिताल सग संग
हिंगुलादि मैनसिल, सस्यक सुहावे है ।
अञ्जन प्रवाल अभ्र पटल व अभ्रवाल
तथैव विविधमनि वादर विराजे है ।
गोभेद रुचक अंक फटिक रु. लोहिताक्ष
नीलम मसारगल्ल आदि ने गिनावे है ।।७३-७५।।

गोमेज्जए य रुयगे,
अंके फलिहे य लोहियक्खे य ।
मरगय-मसारगल्ले,
भुयमोयग-इंदणीले य।।७६।।
चंदण-गेरुय हंसगब्भे,
पुलए सोगंधिए य बोधव्वे ।

भुज मोच इन्द्र नील चन्दन [illegible]-
गर्भ, सोगन्धिक पुनि चन्द्रप्रभ [illegible] ।
जलकान्त सूर्यकान्त वैदूर्य कठोर [illegible]-
काय के छत्तीस [illegible] ।
[illegible]
[illegible]

चंदप्पह वेरुलिए,
जलकंते सूरकंते य।।७७।।
एए खर पुढवीए,
भेया छत्तीस-माहिया ।
एगविह-मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया।।७८।।

इतने निरूपण के, बाद शास्त्र सम्मती से
चार विध पृथ्वीकाय, काल भेद गावै है ।।७६-७८।।

सुहुमा सव्व लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु,
वुच्छं तेसिं चउव्विहं।।७६।।
सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।८०।।
बावीस-सहस्साइं,
वासा-णुक्कोसिया भवे ।
आउ-ठिई पुढवीणं,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णया।।८१।।

पृथ्वीकाय जीव तो, प्रवाह की अपेक्षाधारि
अनादि अनन्त जिन, शास्त्र में कहावै है ।
थिति की अपेक्षा से, तो सादी सान्त निरदिष्ट
बाईस हजार उतकृष्ट वर्ष गावै है ।
जघन्य संस्थिती वाकी, अन्तर मुहूरत की
असंख्यात काल की उत्कृष्ट थिती छावै है ।
अन्तर् मुहूर्त की जघन्य काय थिती होत
सदा पृथ्वी कायोत्पत्ति कायस्थिती भावै है ।।७६से८१।।

असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णया ।
कायठिई पुढवीणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।८२।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
पुढवी जीवाण अन्तरं।।८३।।

बसन्ततिलका

पृथ्वी शरीर इक बार विमुक्त होवे
उत्पत्ति में फिर जघन्य मुहूर्त अन्तर् ।
है वीचकाल अतिशायि अनन्त रूप
उत्कृष्ट से सुलभ वैध निरूपणा है ।।८२-८३।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।८४।।
दुविहा आऊ जीवा उ,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
एवमेए दुहा पुणो।।८५।।

वर्णादि गन्ध रस फर्श व आकृती के-
आदेश से, वह हजार विभेद वाला-।
अप्काय जीव दुइ भेद कहे गये हैं
पर्याप्ति से इतर से, निज रूपशाली ।।८४-८५।।

बायरा जे उ पज्जत्ता,
पंचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से य,
हरतणू महिया हिमे।।८६।।
एगविह-मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्व लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा।।८७।।

घनाक्षरी

बादर पर्याप्त अपकाय जीव पंच भेद
शुद्धोदक अवस्याय सतत सुहावे है ।
हर तनु-शबनम अपराभिधान जाको
कुहासा रु हिम रूप नभ बीच भावे है ।
सूक्ष्म अपकाय एकविध जाके भेद नाहीं
सम्पूरण लोक व्यापी नेत्र पथ आवे है ।
इतर स्वरूप जीव लोक एक देश मांही
परवाह दृष्टि से अपर रूप छावे है ।।८६-८७।।

सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।८८।।
सत्तेव सहस्साइं,
वासा-पुक्कोसिया भवे ।
आउठिई आऊणं,
अंतो मुहुत्तं जहन्निया।।८९।।

उत्कृष्ट आयु कुल वर्ष हजार सात
अन्तर्मुहूर्त जघन्य थिति गायी है ।
उत्कृष्ट है [illegible]
अन्तर्मुहूर्त जघन्य [illegible] ।।८८-८९।।

असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
कायठिई आऊणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।६०।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
आऊ जीवाण अन्तरं।।६१।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।६२।।

अप्काय छोड़कर जन्म पुनस्तथैव-
अन्तर्मुहूर्त कम से कम अन्तरादि ।
उत्कृष्ट काल फिर अन्तविहीन वर्ण-
संस्थान गन्ध रस फर्श सहस्त्र भेद ।।६०-६२।।

दुविहा वणस्सई जीवा,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जता,
एवमेए दुहा पुणो।।६३।।

होती वनस्पति निकाय विभेद दो दो-
है सूक्ष्म बादर तथा अपरिआप्त अन्य-।
पर्याप्त बादर वनस्पति भेद भी दो
सामान्य काय अरु शेष शरीर युक्त ।।६३।।

बायरा जे उ पज्जत्ता,
दुविहा ते वियाहिया ।
साहारण-सरीरा य,
पत्तेगा य तहेव य।।६४।।

प्रत्येक कायिक वनस्पतिकाय जीव-
वृक्षादि गुच्छ नव मालिक बैगनादि-।
बल्ली लतादि तृण रूप समस्त जानों
भिन्न प्रकार जनि जात, निदिष्ट हैं ये ।।६४।।

पत्तेग सरीरा उ,
ऽणेगहा ते पकित्तिया ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य,
लया वल्ली तणा तहा।।६५।।

केला तयेक्षु कुहणादि जलादि जात-
धान्यादि औषध तथा तृण अंकुरादि ।
कुक्कूरमुत्त हरितादि विशिष्ट काय
प्रत्येक काय जिन सम्मत मानना है ।।६५।।

वलया पव्वगा कुहुणा,
जलरुहा ओसही तिणा ।
हरिय-काया उ बोधव्वा,
पत्तेगाइ वियाहिया॥९६॥

साधारणादिक विभिन्न शरीर धारी-
के है अनेक विध आलुक मूल आदि-।
है शृंग वेर हिरिली तिरिली व कन्द-
सिस्सीरिली अरु पलाण्डु लशून रूप ॥९६-९८॥

साहारण सरीरा उ
ऽणेगहा ते पकित्तिया ।
आलुए मूलए चेव,
सिंगबेरे तहेव य॥९७॥

हरिली सिरिली सिस्सिरिली,
जावई-केय कंदली ।
पलण्डु लसण-कंदे य,
कंदली य कुहुव्वए॥९८॥

लोहिणी हूयथी हूय,
कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकंदे य,
कंदे सूरणए तहा॥९९॥

लोही, स्निहू कुहक कृष्ण तथैव वज्र
है सूरणादिक विशेष विशिष्ट रूप ॥९९॥

अस्स-कण्णी य बोधव्वा,
सीह-कण्णी तहेव य ।
मुसुण्ढी य हलिद्दा य,
णेगहा एवमायओ॥१००॥

है अश्व कर्ण हरि सुंढि हरिद्र कन्द
ये हैं अनेक जमिकन्द सरूप भेद ॥१००॥

एगविह - मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्व-लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा॥१०१॥

सूक्ष्मी वनस्पति निकायिक जीव का ने-
प्रकार एक कहते, न विभेद [illegible] ।
वे सर्व लोक परिलीन [illegible]
[illegible] बादरादिक [illegible] एक देश ॥१०१॥

असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
कायठिई आऊणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।६०।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
आऊ जीवाण अन्तरं।।६१।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस फासओं ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।६२।।

अप्काय छोड़कर जन्म पुनस्तथैव-
अन्तर्मुहूर्त कम से कम अन्तरादि ।
उत्कृष्ट काल फिर अन्तविहीन वर्ण-
संस्थान गन्ध रस फर्श सहस्त्र भेद ।।६०-६२।।

दुविहा वणस्सई जीवा,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जता,
एवमेए दुहा पुणो।।६३।।

होती वनस्पति निकाय विभेद दो दो-
है सूक्ष्म बादर तथा अपरिआप्त अन्य-।
पर्याप्त बादर वनस्पति भेद भी दो
सामान्य काय अरु शेष शरीर युक्त ।।६३।।

बायरा जे उ पज्जत्ता,
दुविहा ते वियाहिया ।
साहारण-सरीरा य,
पत्तेगा य तहेव य।।६४।।

प्रत्येक कायिक वनस्पतिकाय जीव-
वृक्षादि गुच्छ नव मालिक वैगनादि-।
बल्ली लतादि तृण रूप समस्त जानों
भिन्न प्रकार जनि जात, निदिष्ट हैं ये ।।६४।।

पत्तेग सरीरा उ,
ऽणेगहा ते पकित्तिया ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य,
लया वल्ली तणा तहा।।६५।।

केला तथेक्षु कुहणादि जलादि जात-
धान्यादि औषध तथा तृण अंकुरादि ।
कुक्कूरमुत्त हरितादि विशिष्ट काय
प्रत्येक काय जिन सम्मत मानना है ।।६५।।

वलया पव्वगा कुहुणा,
जलरुहा ओसही तिणा ।
हरिय-काया उ बोधव्वा,
पत्तेगाइ वियाहिया।।९६।।
साहारण सरीरा उ
ऽणेगहा ते पकित्तिया ।
आलुए मूलए चेव,
सिंगबेरे तहेव य।।९७।।
हरिली सिरिली सिस्सिरिली,
जावई-केय कंदली ।
पलण्डु लसण-कंदे य,
कंदली य कुहुव्वए।।९८।।

साधारणादिक विभिन्न शरीर धारी-
के है अनेक विध आलुक मूल आदि-।
है शृंग वेर हिरिली तिरिली व कन्द-
सिस्सीरिली अरु पलाण्डु लशून रूप ।।९६-९८।।

लोहिणी हूयथी हूय,
कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकंदे य,
कंदे सूरणए तहा।।९९।।

लोही, स्निहू कुहक कृष्ण तथैव वज्र
है सूरणादिक विशेष विशिष्ट रूप ।।९९।।

अस्स-कण्णी य बोधव्वा,
सीह-कण्णी तहेव य ।
मुसुण्ढी य हलिद्दा य,
णेगहा एवमायओ।।१००।।

है अश्व कर्ण हरि सुंढि हरिद्र कन्द
ये हैं अनेक जमिकन्द सरूपं भेद ।।१००।।

एगविह - मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्व-लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा।।१०१।।

सूक्ष्मी वनस्पति निकायिक जीव का तो-
प्राकार एक कहते, न विभेद होता ।
वे सर्व लोक परिलीन कहे गए है
है बादरादिक वनस्पति एक देश ।।१०१।।

सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जव-सिया वि य।।१०२।।

आदेश से वह, अनादि अनन्त रूप
संस्थान से नियत, सादिक सान्तशील ।
उत्कर्ष से दस, सहस्र समायु होती
अन्तर्मुहूर्त्तक जघन्य थिती कही है ।।१०२।।

दस चेव सहस्साइं,
वासा-णुक्कोसिया भवे ।
वणस्सईणं आउं तु,
अंतो मुहुत्तं जहण्णियं।।१०३।।

पूर्वोक्त काल उनका उतकृष्ट रूप
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य निकाय थान ।
होते वनस्पति निकाय, सदैव जन्म-
तद्कारणार्थ कहते कल काय-थान ।।१०३।।

अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णिया ।
कायठिई पणगाणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।१०४।।
असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
पणग जीवाण अन्तरं।।१०५।।

तद्काय छोड़कर जन्म पुनस्तथैव-
अन्तमुर्हूत कम से कम और ऊँची-।
संख्यात से रहित काल वनस्पती के
आदेश से कथन भेद सहस्र का है ।।१०४-१०५।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१०६।।
इच्चेए थावरा तिविहा,
समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे,
वुच्छामि अणुपुव्वसो।।१०७।।

संक्षेप से कथन थावर तीन का था-
श्रोता सुने, त्रस निरूपण भी तथैव-।
तेजस् व वायु रु उदार इकेन्द्रियों की-
बेइन्द्रिय त्रसक काय सुनो, कहूँ मैं ।।१०६-१०७।।

तेऊ वाऊ य बोधव्वा,
उराला य तसा तहा ।
इच्चेए तसा तिविहा,
तेसिं भेए सुणेह मे।।१०८।।
दुविहा तेऊ जीवा उ,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
एवमेए दुहा पुणो।।१०६।।
बायरा जे उ पज्जत्ता,
णेगहा ते वियाहिया ।
इंगाले मुम्मुरे अगणी,
अच्चिजाला तहेव य।।११०।।
उक्का विज्जू य बोधव्वा,
णेगहा एव-मायओ ।
एगविह-मणाणत्ता,
सुहुमा ते वियाहिया।।१११।।

धनाक्षरी

तेज त्रसकाय जीव, भेद द्वय जिनदिष्ट-
सूक्ष्म बादर काय के दो दो भेद गाये हैं ।
परिआप्त अपर्याप्त बादर पर्यप्ति काय
जीवों के अनेक भेद, अंगारादि छाये हैं ।
मुर्मु चिनगारी दीप, शिखा उल्का विद्युदादि
सूक्ष्म तेजस्काय जीव एक विध जाये है ।
ऐसे जीव सम्पूरण लोक में विआपि रहे
बाद्र तेजस्काय जीव, एक भाग भाये हैं ।।१०८-१११।।

सुहुमा सव्व-लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो काल-विभागं तु,
तेसिं वुच्छं चउव्विहं।।११२।।
सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जव-सिया वि य।।११३।।
तिण्णेव अहोरत्ता,
उक्कोसेण वियाहिया ।

चार विध तेजस्काय काल भाग कहियतु
वे प्रवाह की अपेक्षा आदि अन्तहीन है ।
स्थिति की अपेक्षा से तो सादि सान्त कहे जात
तेजस्काय आयु स्थिति तीन दिन पीन है ।
उत्कृष्ट जघन्य से तो, अन्तर मुहूरत की-
तेजस्काय काय स्थिति असंख्यकालीन है ।
उत्कृष्ट जघन्य से है अन्तर मुहूरत की
काय स्थिति तेजस में, पुनर्भूति लीन है ।।११२-११४।।

आउठिई तेऊणं,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णिया।।११४।।

बसन्ततिलका

असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णिया ।
कायठिई तेऊणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।११५।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
तेऊ जीवाण अन्तरं।।११६।।

तेजोनिकाय फिर छोड़ पुनस्तथैव-
उत्पत्ति अन्तर जघन्य धरार्धमान।[1]
उत्कृष्ट काल गणना जिसकी अनन्त
संस्थान वर्ण रस गन्ध सहस्र भेद ।।११५-११६।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।११७।।

है वायुकाय गत जीव विभेद भी दो
जो सूक्ष्म बादर पुनः परिचर्चना है ।
पर्याप्त से इतर से फिर भेद दो दो
ये भेद है, उभय के, जिन देव दिष्ट ।।११७।।

दुविहा वाउ जीवा उ,
सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
एवमेए दुहा पुणो।।११८।।
बायरा जे उ पज्जत्ता,
पंचहा ते पकित्तिया ।
उक्कलिया मण्डलिया,
घणगुंजा सुद्धवाया य।।११९।।

पर्याप्त बादरक वायु निकाय जीव-
के पांच उत्कलिक मण्डल गुंज वात ।
शुद्धादि संग घन वात निरूपणा है
संवर्तनादि बहु भेद दुतीय के हैं ।।११८-११९।।

संवट्टग-वाया य,
णेगहा एव-मायओ ।

सम्पूर्ण लोक पर सूक्ष्म विलीन जीव
है एक देशगत वादर वायुकाय ।।१२०।।

[1]अन्तर्मुहूर्त

एगविह-मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया।।१२०।।

चार प्रकार गत वायु निकाय जीव
के काल का कथन भी करता विशिष्ट ।।१२१।।

सुहुमा सव्व लोगम्मि,
लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो काल विभागं तु,
तेसिं वुच्छं चउव्विहं।।१२१।।
सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१२२।।

वे हैं प्रवाहक अनादि अनन्त रूप
संस्थान से कथन सार्थक शान्त का है ।
उत्कर्ष से त्रय सहस्र समायु भी है
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य स्थिती कही है ।।१२२-१२३।।

तिण्णेव-सहस्साइं,
वासा-णुक्कोसिया भवे ।
आउठिई वाऊणं,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णिया।।१२३।।

पूर्वोक्तकाय उतकृष्ट असंख्यकाल
अन्तर्मुहूतक जघन्य थिती कही है ।
तद्काय छोड़कर जन्म लहे तथैव
तद्कारणार्थ थिति काय कही गई है ।।१२४।।

असंखकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णया ।
कायठिई वाऊणं,
तं कायं तु अमुंचओ।।१२४।।

तद्वायु के तनु विशेष न छोड़ते हैं
जन्मादि का ग्रहण भी करते तथैव ।
जो अन्तरादिक समै रु जघन्य रूप
अन्तर्मुहूर्तक व उन्नत से अनन्त ।।१२५।।

अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
वाऊ-जीवाण अन्तरं।।१२५।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।

संवर्ण गन्ध रस फर्श व आकृति के-
आदेश से कथन वायु सहस्र का है ।
होते उदार तस चार विभेद से है
द्व्यारव्ध पंच अवसानिक इन्द्रियों के ।।१२६।।

संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१२६।।

उराला तसा जे उ,
चउहा ते पकित्तिया ।
बेइंदिया-तेइंदिया,
चउरो पंचिंदिया चेव।।१२७।।
बेइंदिया उ जे जीवा,
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
तेसिं भेए सुणेह मे।।१२८।।
किमिणो सोमंगला चेव,
अलसा माइ-वाहया ।
वासीमुहा य सिप्पिया,
संखा संखणगा तहा।।१२६।।
पल्लोयाणु-ल्लया चेव,
तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव,
चंदणा य तहेव य।।१३०।।

द्वीन्दी जीव भेद द्वय पर्याप्त इतर से है
भेदों का कथन सुनों दे के अवधानता ।
कृमि सौमंगल व अलस संग मातृ वाह
वासी मुख सीप शंख शंख नक मानता ।
पल्लोय अणुल्लक वराटक समेत जोंक
जालक चन्डनिया अनेक विध भानता ।
ये तो द्वीन्दी जीव लोक एक मधि व्यापि रहे
नाहीं फर्श लोक मांही विविध प्रमाणता ।।१२७-१३०।।

इइ बेइंदिया एए,
ऽणेगहा एव-मायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे,
ण सव्वत्थ वियाहिया।।१३१।।
सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जव-सिया वि य।।१३२।।

बसन्ततिलका

होते प्रवाह समपेक्षित ये अनादि
एवम् अनन्त, थिति से अरु सादि सान्त-।
उत्कृष्ट बारह समायु कही गई है
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य थिती निदिष्ट ।।१३१-१३३।।

वासाइं बारसा चेव,
उक्कोसेण वियाहिया ।
बेइंदिय आउठिई,
अंतो मुहुत्तं जहण्णिया।।१३३।।

उत्कृष्ट काय थिति संख्य विशेषकाल
अन्तर्मुहूतक जघन्य कही गई है ।
तद्काय है न परिहेय, तथैव जन्म
बेइन्द्रि काय थिति शास्त्र निरूपण है ।।१३४।।

संखिज्ज काल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णियं ।
बेइंदिय कायठिई,
तं कायं तु अमुंचओ।।१३४।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
बेइंदिय जीवाणं,
अन्तरं य वियाहियं।।१३५।।

बेइन्द्रि में तनु निषिक्त तथैव लब्धि-
का अन्तरादिक जघन्य मुर्हूत मान ।
उत्कृष्ट काल गणना कहते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१३५-१३६।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१३६।।
तेइंदिया उ जे जीवा,
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
तेसिं भेए सुणेह मे।।१३७।।
कुंथु पिवीलि उड्डंसा,
उक्कलु-द्देहिया तहा ।
तणहारा कट्ठहारा य,
मालूगा पत्तहारगा।।१३८।।

धनाक्षरी

तेइन्द्रिय जीवों के, दुई भेद शास्त्र निरदिष्ट-
पर्याप्त व अपर्याप्त कथन सुहावै है ।
कुन्थु चींटी खटमल मकड़ी दीमक रूप
तृणाहारा काष्ठाहार मालुक गिनावै है ।
पत्राहार कर्पासास्थि तिन्दुक त्रपुज आदि
गुम्मी शतावरि इन्द्र गोपक भी गावै है ।
तेन्द्रिय अनेक विध जीव जिनदिष्ट इन्द्र
लोक एक भाग व्यापी पूरन न छावै है ।।१३७-१३९।।

कप्पासट्ठिम्मि जाया,
तिंदुगा तउस-मिंजगा ।
सदावरी य गुम्मी य,
बोद्धव्वा इंदगाइया।।१३९।।

इंदगोवग-माईया,
णेगहा एव मायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे,
ण सव्वत्थ वियाहिया।।१४०।।
सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जव-सिया वि य।।१४१।।
एगूण-पण्णहोरत्ता,
उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइंदिय-आउठिई,
अंतो मुहुत्तं जहण्णिया।।१४२।।

प्रवाह अपेक्षा से अनादि व अनन्त वो है
स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त गनि पावै है ।
आयु स्थिति उतकृष्ट उनचास दिन कहे-
जघन्य से अन्तर्मुहूर्तक थिति गावे है ।
काया स्थिति उतकृष्ट संख्यात कालिक कहे
जघन्य से अन्तरमुहूरत गिनावे है ।
तेन्द्रियकाय जन्म लेवे तत्र निरन्तर जो
काय स्थिति जिनराज वाने बतलावै है ।।१४०-१४२।।

संखिज्ज-काल-मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।
तेइंदिय कायठिई,
तं कायं तु अमुंचओ।।१४३।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
तेइंदिय जीवाणं,
अंतरं तु वियाहियं।।१४४।।

बसन्ततिलका

तेन्द्रीय काय परिहेय तथैव जन्म-
का अन्तरादिक जघन्य मुहूर्तकाल ।
उत्कर्ष से कथन है करते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१४३-१४४।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१४५।।
चउरिंदिया उ जे जीवा,
दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्त-मपज्जत्ता,
तेसिं भेए सुणेह मे।।१४६।।
अंधिया पोत्तिया चेव,
मच्छिया मसगा तहा ।
भमरे कीड-पयंगे य,
ढिंकुणे कुंकणे तहा।।१४७।।
कुक्कुडे सिंगरीडी य,
णंदावत्ते य विच्छिए ।
डोले भिंगिरीडी य,
विरली अच्छि-वेहए।।१४८।।

धनाक्षरी

चतुरिन्द्रिय जीवगत भेद को कहे दो दो
पर्याप्त अपर्याप्त स्वरूप को गिनावै है ।
अन्धिका पोतिका अरु मक्षिका मशक रूप
भ्रमर पतंग कीट ढिंकुण जतावै है ।
कुंकुण कुक्कुड श्रृंगिरीटी नन्दावर्त बिच्छु
डोल भृंगरीटक विरलि ने दिखावै है ।
अक्षिवेधक अक्षिल मागध अक्षिरोडक
विचित्र ओहिं जलिया जलकारी थावै है ।।१४५-१४६।।

अच्छिले माहए अच्छि,
रोडए, विचित्ते चित्तपत्तए ।
ओहिंजलिया जलकारी य,
णीयया तंबगाइया।।१४९।।

इय चउरिंदिया एए,
णेग-विहा एव-मायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया
लोगस्स एगदेसम्मि- ते सव्वे
परिकिकितिआ।।१५०।।

बसन्ततिलका

पूर्वोक्त जीव चतुरिन्द्रिय के अनेक-
भेदादि लोकगत एक विभाग रूप ।
संपूर्ण में न परवाह अनाद्यनन्त
संस्थान से कथन सादि व सान्त दिष्ट ।।१५०।।

सन्तइं पप्प-णाईया,
अपज्जव-सिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१५१।।
छच्चेव य मासाउ,
उक्कोसण वियाहिया ।
चउरिंदिय आउठिई,
अंतो मुहुत्तं जहण्णिया।।१५२।।

उत्कृष्ट आयु छह मास जघन्य अन्त
मौहूर्त काय थिति जेठ सुगण्यकाल ।
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य थिती कही है
तद्काय थान उपदिष्ट तथैव जन्म ।।१५१-१५२।।

संखिज्ज काल-मुक्कोसं,
अंतो-मुहुत्तं जहण्णयं ।
चउरिंदिय कायठिई,
तं कायं तु अमुंचओ।।१५३।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
अंतरं च वियाहियं।।१५४।।

पूर्वोक्त काय परिहान तथैव जन्म-
के अन्तरादिक जघन्य मुहूर्त रूप ।
उत्कृष्ट काल जिसका कहते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१५३-१५५।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१५५।।
पंचिंदिया उ जे जीवा,
चउविहा ते वियाहिया ।
णेरइया तिरिक्खा य,
मणुया देवा य आहिया।।१५६।।

धनाक्षरी
पंचेन्द्रिय जीव भेद चार हैं कहे जिनेन्द्र
नैरयि तिर्यंच देव मनुज गिनावे है ।
नारकी प्रकार सात, रत्नप्रभा शर्कराभा
वालू पंक धूम तम, तमस्तमा आवे है ।
सप्तभूमि जन्मता से, नारकी विवेचना है
लोक एक भाग व्यापी कथन करावे है ।
चतुष्टय प्रकार रूप नारकी जीवों का मैं तो
कथन करूँगा काल विभाजन भावे है ।।१५६-१६०।।

णेरइया सत्तविहा,
पुढवीसु सत्तसु भवे ।
रयणाभा-सक्कराभा,
वालुयाभा य आहिया।।१५७।।
पंकाभा धूमाभा,
तमा-तमतमा तहा ।
इइ णेरइया एए,
सत्तहा परिकित्तिया।।१५८।।
धम्मा वंसगा सिला,
तहा अंजण-रिट्ठगा ।
मघा माघवइ चेव,
णारइया य वियाहिया।।१५६।।
रयणाई गोत्तओ चेव,
तहा घम्माइ णामओ ।
इइ णेरइया एए,
सत्तहा परिकित्तिया।।१६०।।

लोगस्स एगदेसम्मि,
ते सव्वे उ वियाहिया ।
इत्तो काल-विभागं तु,
तेसिं वोच्छं चउव्विहं।।१६१।।
संतइं पप्प-णाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१६२।।
सागरोव-ममेगं तु,
उक्कोसेण वियाहिया ।

बसन्ततिलका

वे है प्रवाह समपेक्षित हो अनादि
एवम् अनन्त थिति सादि व शान्त रूप ।
पृथ्वाद्य में दश सहस्र जघन्य आयु
उत्कृष्ट से कथन एक समुद्र का है ।।१६१-१६३।।

पढमाए जहण्णेणं,
दसवास-सहस्सिया।।१६३।।

तिण्णेव-सागरा ऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
दोच्चाए जहण्णेणं,
एगं तु सागरोवमं।।१६४।।
सत्तेव सागरा ऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
तइयाए जहण्णेणं,
तिण्णेव सागरोवमा।।१६५।।
दस सागरोवमाऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
चउत्थीए जहण्णेणं,
सत्तेव सागरोवमा।।१६६।।

पृथ्वी द्वितीय गत नारक जीव आयु-
उत्कृष्ट तीन उदधी व जघन्य एक ।
वैसे तृतीय पर सात व तीन निम्न
पृथ्वी चतुर्थ दस सागर सात ऊन ।।१६४-१६६।।

सत्तरस सागरा ऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
पंचमाए जहण्णेणं,
दस चेव सागरोवमा।।१६७।।
बावीस-सागरा ऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
छट्ठीए - जहण्णेणं,
सत्तरस-सागरोवमा।।१६८।।
तेत्तीस-सागरा ऊ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
सत्तमाए-जहण्णेणं,
बावीसं सागरोवमा।।१६९।।

धनाक्षरी

पंचम पृथ्वी में तो नारक जीव आयु थिति
उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम गिनावै है ।
दस सागरोपम जघन्य, षष्ठ पृथ्वी में तो
उत्कृष्ट बाईस सागरोपम सुहावै है ।
जघन्य सत्रह सागरोपम सप्तम पृथ्वी-
उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम कहावै है ।
जघन्य बाईस सागरोपम नारक आयु
स्थिति ही जघन्य, उच्च काय स्थिति गावै है ।।१६७-१६९।।

जा चेव उ आउठिई,
णेरइयाणं वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई,
जहण्णुक्कोसिया भवे।।१७०।।
अणंतकाल-मुक्कोसं,
अंतो मुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
णेरइयाणं तु अंतरं।।१७१।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१७२।।

है नारकी तनु विहाय तथैव जन्म-
का अन्तरादिक जघन्य मुहूर्त रूप ।
उत्कृष्ट काल गणना करते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१७०-१७२।।

पंचिंदिय तिरिक्खाओ,
दुविहा ते वियाहिया ।
समुच्छिम तिरिक्खाओ,
गब्भवक्कंतिया तहा।।१७३।।
दुविहा ते भवे तिविहा,
जलयरा थलयरा तहा ।
णहयरा य बोधव्वा,
तेसिं भेए सुणेह मे।।१७४।।
मच्छा य कच्छभा य,
गाहा य मगरा तहा ।
सुंसुमारा य बोधव्वा,
पंचहा जलयराहिया।।१७५।।

धनाक्षरी

पंचेन्द्रिय तिर्यण्चीय जीव भेद कहे दो दो-
सम्मूर्च्छिम गर्भज तिर्यंच दरसावे है ।
जल थल खेचरादि तीन-२ भेद जाके
पंच भेद जलचर मत्स्य कच्छ पावै है ।
ग्राह मकरादि सुंसुमार जीव छाई रहे
लोक एक भाग मांहि सतत सुहावै है ।
सम्पूरण है अभाव काल के विभाग का मैं-
करूँगा निरूपण, जो शास्त्र में दिखावै है ।।१७३-१७५।।

लोगेगदेसे ते सव्वे,
ण सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु,
तेसिं वोच्छं चउव्विहं।।१७६।।

बसन्ततिलका
है वे प्रवाह समपेक्षित हो अनादि
एवम् अनन्त थिति सादि व सान्त रूप ।
पूर्वोक्त आयु थिति उन्नत एक कोटि
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य थिति कही है ।।१७६।।

संतइं पप्पणाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१७७।।
एगा य पुव्वकोडीओ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउठिई जलयराणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।१७८।।

उत्कृष्ट है जलचरादि शरीर थान-
की एक कोटिगत पूर्व जिनेन्द्र दिष्ट ।
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य थिति सरूप
शास्त्रादि में कथन है, जिनका मनोज्ञ ।।१७७-१७८।।

पुव्वकोडिपुहुत्तं तु,
उक्कोसेण वियाहिया ।
कायठिई जलयराणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।१७९।।
अणंतकाल मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
जलयराणं तु अंतरं।।१८०।।
एससिं वण्णओं चेव
गंधओ रसओ फासओ ।
सठाणा देसओ वावि,
विहाणाइं सहस्सो।।१८१।।

है छोड़ के जलचरादि शरीर नैज
जन्मे तथैव तनुरूपक अन्तरादि ।
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य अनन्त ऊँचा
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१७९-१८१।।

पुव्वकोडि पुहुत्तेणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ।
कायठिई थलयराणं,
अंतरं तेसिमं भवे।।१८८।।
अणंतकाल मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
थलयराणं तु अंतरं।।१८६।।

बसन्ततिलका
उत्कृष्ट से पृथक कोटिक पूर्व तीन
पल्योपम स्थिति जिनेन्द्र निदिष्ट रूप ।
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य सरूप सिंह
काया स्थिती कथित भूमिचरादिकों की ।।१८८-१८६।।

एससिं वण्णओं चेव
गंधओ रसओ फासओ ।
सठाणा देसओ वावि,
विहाणाइं सहस्सो।।१६०।।

पूर्वोक्त संस्थलचरादिक काय थान-
का अन्तरादिक जघन्य मुहूर्त रूप ।
उत्कृष्ट से कथन है करते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।१६०।।

चम्मे उ लोमपक्खी य,
तइया समुग्ग-पक्खिया ।
विययपक्खी य बोधव्वा,
पक्खिणो य चउव्विहा।।१६१।।
लोगेगदेसे ते सव्वे,
ण सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु,
तेसिं वोच्छं चउव्विहं।।१६२।।
संतइं पप्प-णाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।१६३।।

धनाक्षरी
खेचर जीवों के भेद चार परकार रूप
चर्म रोम समुद्ग वितत पक्षी आवै है ।
लोक गत एक भाग व्यापि हैं विशेष रूप
सम्पूरण लोक मांहि नहीं जीव छावै है ।
काल के विभाग की निरूपणा है शास्त्र विधि
परवाह से अनादि अनन्त गिनावै है ।
संस्थिति की अपेक्षा से सादि अरुसान्त कहे
जिनदिष्ट शास्त्र भांति सही कहि पावै है ।।१६१-१६५।।

पलिओवमस्स भागो,
असंखेज्ज इमो भवे ।
आउठिई खहयराणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।१६४।।
असंखभागो पलियस्स,
उक्कोसेण उ साहिया ।
पुव्वकोडी पुहुत्तेणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।१६५।।

-: दोहा :-

कायठिई खहयराणं,
अंतरं तेसिमं भवे ।
अणंतकाल मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।।१६६।।

खेचर आयू थिति, विकट, असंख्यातवाँ भाग ।
पल्योपम के जघन से, अन्त मुहूरत राग ।।१६६।।

एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।१६७।।

धनाक्षरी

खेचर आयु स्थिति उतकृष्ट पल्योपम के
असंख्यात तम न्यून अन्तर मुहूर्त है ।
खेचर जीव काय स्थिति ऊँचा पृथकत्व कोटि
पूर्वाधिक पल्योपम बहु भाग रत है ।
जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अन्तर न्यूनतम
अन्तर्मूहुर्त्तोत्कृष्ट अनन्त निरत है ।
वर्ण गन्ध रस फर्श संस्थान अपेक्षा से तो-
जिनदिष्ट सहस्रों विभेद सत तत है ।।१६७।।

मणुया दुविह भेया उ,
ते मे कित्तयओ सुण ।
संमुच्छिमा य मणुया,
गब्भवक्कंतिया तहा।।१६८।।
गब्भवक्कंतिया जे उ,

मनुष्य सत्रस के है, भेद द्वय शास्त्रदिष्ट
समूर्च्छिम गर्भोत्पन्न नियत कहावै है ।
अकर्मक भूमि कर्म भूमिक अन्तर्दीपक
गर्भोत्पन्न नर के ये तीन भेद भावै है ।
कर्म भूमि पन्द्र भेद अकर्म भूमिक नर

तिविहा ते वियाहिया ।
कम्म-अकम्म-भूमा य,
अंतरद्दीवया तहा।।१९९।।
पण्णरस तीसविहा,
भेया दु अट्ठवीसइं ।
संखा उ कमसो तेसिं,
इइ एसा वियाहिया।।२००।।

तीस भेद आगम में सतत गिनावै है ।
अन्तर्दीपक मनुजादि के सकल भेद
छप्पन विधान से विहित कहियावै है ।।१९८-२००।।

संमुच्छिमाण एसेव,
भेओ होइ वियाहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि,
ते सव्वे वि वियाहिआ।।२०१।।
संतइं पप्प-णाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।२०२।।

समूर्च्छिम प्रकरणादिक भेद से है
संख्याप्त लोकगत एक विभाग शाली ।
धारा व्यपेक्षित अनादि, अनन्त रूप
संस्थान से सकल सादि व सान्त भी है ।।२०१-२०२।।

पलिओवमाइं तिण्णि उ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
आउठिई मणुयाणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।२०३।।
पलिओवमाइं तिण्णि उ,
उक्कोसेण वियाहिया ।
पुव्वकोडि पुहुत्तेणं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।।२०४।।

पल्योपम त्रितय आयु थिती विशिष्ट
अन्तर्मुहूर्तक जघन्य शरीर थान ।
उत्कृष्टतः पृथक कोटिक पूर्व युक्त
पल्योपम त्रितय अन्तमुहूर्त अन्य ।।२०३-२०४।।

कायठिई मणुयाणं,
अंतरं तेसिमं भवे ।

अन्तर्मुहूर्तक जघन्य तदन्तराल
उत्कृष्टतः अमित काल कहा गया है ।

अणंतकाल मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।।२०५।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।२०६।।

वर्णादि गन्ध रस फर्श व संस्थिती से
होते सहस्र परिभेद जिनागमों में ।।२०५-२०६।।

देवा चउव्विहा वुत्ता,
ते मे कित्तयओ सुण ।
भोमिज्ज-वाणमंतर-
जोइस-वेमाणिया तहा।।२०७।।
दसहा उ भवणवासी,
अट्ठहा वणचारिणो ।
पंचविहा जोइसिया,
दुविहा वेमाणिया तहा।।२०८।।

बसन्ततिलका
है देव चार भवनादिक वन्तरादि
ज्योतिष्क देव रु विमानिक भेद रूप ।
है सर्व भेद दस, आठ, व पाँच दो दो
वैमानिकादिक सरूप विपर्ययात्त ।।२०७-२०८।।

असुरा णाग सुवण्णा,
विज्जू अग्गी य वियाहिया ।
दीवोदहि दिसा वाया,
थणिया भवणवासिणो।।२०९।।
पिसायभूया जक्खा य,
रक्खसा किण्णरा किंपुरिसा ।
महोरगा य गंधव्वा,
अट्ठविहा वाणमंतरा।।२१०।।
चंदा सूरा य णक्खत्ता,
गहा तारागणा तहा ।
ठिया वि चारिणो चेव,
पंचहा जोइसालया।।२११।।

धनाक्षरी
असुर कुमार नाग सुवर्ण विद्युत अग्नि
दीपो-दधि दिशा वायुस्तनित सुनावै है ।
पिशाच व भूत यक्ष राक्षस व किन्नरादि
किंपुरुष महोरग गन्धर्व गिनावै है ।
चन्द्र रवि नखत ग्रह गण तारा पांच
ज्योतिष्क के भेद दिशाचारी द्रुति पावै है ।
कल्पोपन कल्पातीत वैमानिक देवों के भेद-
आदि के द्वादश भेद, आगम बतावै है ।।२०९-२१२।।

वेमाणिया उ जे देवा,
दुविहा ते वियाहिया ।
कप्पोवगा य बोधव्वा,
कप्पाईया तहेव य।।२१२।।

कप्पोवगा बारसहा,
सोम्मीसाणगा तहा ।
सणंकुमार माहिंदा,
बंभलोगा य लंतगा।।२१३।।
महासुक्का सहस्सारा,
आणया पाणया तहा ।
आरणा अच्चुया चेव,
इइ कप्पोवगा सुरा।।२१४।।
कप्पाईया उ जे देवा,
दुविहा ते वियाहिया ।
गेविज्जाणुत्तरा चेव,
गेविज्जा नवविहा तहिं।।२१५।।
हेट्ठिमा-हेट्ठिमा चेव,
हेट्ठिमा मज्झिमा तहा ।
हेट्ठिमा उवरिमा चेव,
मज्झिमाहेट्ठिमा तहा।।२१६।।
मज्झिमा-मज्झिमा चेव,
मज्झिमा-उवरिमा तहा ।
उवरिमा-हेट्ठिमा चेव,
उवरिमा-मज्झिमा तहा।।२१७।।

सौधर्म ईशानक सनत संग माहेन्द्रादि
ब्रह्म लोक लान्तक रु महाशुक्र छावै है ।
सहस्रार आनत प्राणत आरणाच्युत भी
कल्पातीत देव भेद दुई विध भावै है ।
गैवेयक अनुत्तर में प्रथम के नव भेद
अधस्तन अधस्तन मध्यमान्त आवे है ।
अधस्तनो परितन, मध्यम अधस्तनादि
मध्यम, मध्यम, मध्य उपरित नावै है ।।२१३-२

उवरिमा-उवरिमा चेव,
इय गेविज्जगा सुरा ।

उपरितनाधस्तन उपरि के संग मध्य
उपरि उपरितन नव, भेद भावै है ।

विजया वेजयंता य,
जयंता अपराजिया।।२१८।।
सव्वट्ठ सिद्धगा चेव,
पंचहाणुत्तरा सुरा ।
इय वेमाणिया एए,
णेगहा एवमायओ।।२१९।।
लोगस्स एगदेसम्मि,
ते सव्वेवि वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु,
तेसिं वोच्छं चउव्विहं।।२२०।।
संतइं पप्प णाईया,
अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया,
सपज्जवसिया वि य।।२२१।।

अनुत्तर देव भेद पुरस्तात निरदिष्ट
विजै वैजयन्त रु जयन्त कहि जावै है ।
अपराजित सर्वसिद्ध वैमानी देव नाना
सभी लोक एक भाग व्यापि परिभावै है ।
काल भाग तदीय चर्तुविध जिनदिष्ट
प्रवाह अनाद्यनन्त, सादि सान्त ध्यावै है ।।२१८-२२१।।

साहियं सागरं एक्कं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाणं जहण्णेणं,
दसवास सहस्सिया।।२२२।।
पलिओवममेगं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
वंतराणं जहण्णेणं,
दसवास सहस्सिया।।२२३।।
पलिओवममेगं तु,
वासलक्खेण साहियं ।
पलिओव मट्ठभागो,
जोइसेसु जहण्णिया।।२२४।।

उत्कृष्ट आयु स्थिति भवनवासी देवन की
किंचिदधिकैक सागरोपम कहावै है ।
जघन्य हजार दस बरस की आयु कही-
व्यन्तर उत्कृष्ट पल्योपम लहि पावै है ।
जघन्य सहस्र दस बरस की नियतायु
ज्योतिष्कों की लक्ष्याधिक पल्योपम छावै है ।
उत्कृष्ट जघन्य से, पल्योपम अष्टम भाग
सौधर्म दो अब्धि पर, पल्योपम गावै है ।।२२२-२२५।।

दो चेव सागराइं,
उक्कोसेण वियाहिया ।
सोहम्मम्मि जहण्णेणं,
एगं च पलिओवमं।।२२५।।

सागरा साहिया दुण्णि,
उक्कोसेण वियाहिया ।
ईसाणम्मि जहण्णेणं,
साहियं पलिओवमं।।२२६।।
सागराणि य सत्तेव,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणंकुमारे जहण्णेणं,
दुण्णि उ सागरोवमा।।२२७।।
साहिया सागरा सत्त,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिंदम्मि जहण्णेणं,
साहिया दुण्णि सागरा।।२२८।।
दस चेव सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बम्भलोए जहण्णेणं,
सत्त उ सागरोवमा।।२२९।।

ईशान देवों की आयु थिति उतकृष्ट कुछ
सागरोपमाधिक जघन्य पल्य पावै है ।
सनत कुमारों की, उत्कृष्ट आयु थिति सात
सागरोपम जघन्य सागर दो आवै है ।
माहेन्द्र देवों की उतकृष्ट आयु थिति कुछ
अधिक सागर सात ऊन दो बतावै है ।
ब्रह्मलोक आयु थिति उत्कृष्ट सागर दस
सप्त सागरोपम, जघन्य मुनि ध्यावै है ।।२२६-२२९।।

चउदस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
लंतगम्मि जहण्णेणं,
दस उ सागरोवमा।।२३०।।
सत्तरस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।

लान्तक देवों की उत्कृष्ट आयु स्थिति चौदह
जघन्य से थिति दस, सागर कहावै है ।
महाशुक्र उतकृष्ट आयु स्थिति सतरह
जघन्य चौदह सागरोपम सुहावै है ।
सहस्रार देवों की उत्कृष्ट आयु अठारह
सत्तरह सागर जघन्य से गिनावै है ।

महासुक्के जहण्णेणं,
चोद्दस सागरोवमा।।२३१।।
अट्ठारस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सहस्सारम्मि जहण्णेणं,
सत्तरस सागरोवमा।।२३२।।
सागरा अउणवीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहण्णेणं,
अट्ठारस सागरोवमा।।२३३।।

आनत की आयु थिति उत्कृष्ट उन्नीस की है
जघन्य से अट्ठारह सागर बतावै है ।।२३०-२३३।।

वीसं तु सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहण्णेणं,
सागरा अउणवीसई।।२३४।।
सागरा इक्कवीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहण्णेणं,
वीसई सागरोवमा।।२३५।।
बावीसं सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहण्णेणं,
सागरा इक्कवीसई।।२३६।।
तेवीस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पढमम्मि जहण्णेणं,
बावीसं सागरोवमा।।२३७।।

प्राणत देवों की उत्कृष्ट आयु स्थिति बीस
जघन्य उन्नीस सागरोपम कहावै है ।
आरण उतकृष्ट आयु स्थिति इक्कीस अब्धि
जघन्य से बीस सागरोपम सुहावै है ।
अच्युत देवायु थिति उत्कृष्ट बाईस अब्धि
जघन्य इक्कीस सागरोपम जनावै है ।
प्रथम ग्रैवेयक की उतकृष्ट तेईस की
जघन्य बाईस सागरोपम बतावै है ।।२३४-२३७।।

चउवीस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
बिइयम्मि जहण्णेणं,
तेवीसं सागरोवमा।।२३८।।
पणवीस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
तइयम्मि जहण्णेणं,
चउवीसं सागरोवमा।।२३९।।
छव्वीस सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहण्णेणं,
सागरा पणवीसई।।२४०।।
सागरा सत्तवीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
पंचमम्मि जहण्णेणं,
सागरा उ छवीसई।।२४१।।
सागरा अट्ठवीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहण्णेणं,
सागरा सत्तवीसई।।२४२।।

द्वितीय ग्रैवेयक देवों की उच्च आयु थिति
चौबीस सागर निम्न तेईस दिखावै है ।
तृतीय ग्रैवेयक की उच्च आयु पच्चीस की
जघन्य चौबीस सागरोपम सुहावै है ।
चतुर्थ ग्रैवेयक उच्च आयुष्य छब्बीस की
जघन्य पच्चीस सागरोपम कहावै है ।
पंचम ग्रैवेयक देवों की उच्च आयु थिति
सत्ताईस निम्न की छब्बीस कहियावै है ॥२३८-२४२॥

सागरा अउणतीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहण्णेणं,
सागरा अट्ठवीसई।।२४३।।
तीसं तु सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्ठमम्मि जहण्णेणं,
सागरा अउणतीसई।।२४४।।

षष्ठ ग्रैवेयक देव उतकृष्ट आयु स्थिति
अट्ठाईस सागरीय सविधि कहावै है ।
सत्ताईस सागरोपम जघन्य से जिनदिष्ट
सप्तम ग्रैवेयक की उत्कृष्ट गिनावै है ।
उन्नीस सागर की है, न्यून इक न्यून की है
अष्टम ग्रैवेयक उत्कृष्ट स्थिति भावै है ।
तीस सागरोपम जघन्य उनतीस की है
स्थिति सागरोपम की, सुखद सुहावै है ।।२४३-२४४।।

सागरा इक्कतीसं तु,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
णवमम्मि जहण्णेणं,
तीसई सागरोवमा।।२४५।।
तेत्तीसं सागराइं,
उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसुंवि विजयाईसु,
जहण्णे णेक्क तीसई।।२४६।।
अजहण्ण मणुक्कोसा,
तेत्तीसं सागरोवमा ।
महाविमाणे सव्वट्ठे,
ठिई एसा वियाहिया।।२४७।।

नवम ग्रैवेयक की उतकृष्ट आयु स्थिति
इकतीस सागर जघन्य, तीस पावै है ।
विजय वैजयन्त व जयन्त अपराजितों की
उत्कृष्ट तैतीस, सागरोपम गिनावै है ।
जघन्य से इकतीस सागर की कही आयु
महायान सर्वार्थक, तैतीस बतावै है ।
जघन्य अरु उतकृष्ट कथन समान रूप
कायस्थिति देव की तो पूर्ववत पावै है ।।२४५-२४७।।

जा चेव उ आउठिई,
देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई,
जहण्णमुक्कोसिया भवे।।२४८।।
अणंतकाल मुक्कोसं,
अंतोमुहुत्तं जहण्णयं ।
विजढम्मि सए काए,
देवाणं हुज्ज अंतरं।।२४९।।
अणंतकाल मुक्कोसं,
वासपुहुत्तं जहण्णयं ।
आणयाईण देवाणं (कप्पाणं),
गेविज्जाणं तु अंतरं।।२५०।।
संखिज्जसागरुक्कोसं,
वासपुहुत्तं जहण्णयं ।

बसन्ततिलका

है देव का तनु विहान तथैव जन्म-
का अन्तरादिक जघन्य मुहूर्त काल ।
उत्कृष्ट से कथन है, करते अनन्त
वर्णादि गन्ध रस फर्श सहस्र भेद ।।२४८-२५२।।

अणुत्तराणं य देवाणं,
अन्तरं तु वियाहियं।।२५१।।
एएसिं वण्णओ चेव,
गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि,
विहाणाइं सहस्ससो।।२५२।।

संसारत्था य सिद्धा य,
इय जीवा वियाहिया ।
रूविणो चेवऽरूवी य,
अजीवा दुविहा वि य।।२५३।।

व्याख्यान सिद्ध सृति का करके अजीव-
एवम् अरूप अरु रूपि कहा गया है ।
व्याख्यान के श्रवण से कर बोध शुद्ध
एवम् क्रियादि नभ में विचरे मुनीश ।।२५३।।

इय जीव मजीवे य,
सोच्चा सद्दहिऊण य ।
सव्व णयाण मणुमए,
रमेज्ज संजमे मुणी।।२५४।।
तओ बहूणि वासाणि,
सामण्ण मणुपालिया ।
इमेण कम्म जोगेण,
अप्पाणं संलिहे मुणी।।२५५।।
बारसेव उ वासाइं,
संलेहुक्कोसिया भवे ।
संवच्छरमज्झिमिया,
छम्मासा य जहण्णिया।।२५६।।
पढमे वासचउक्कम्मि,
विगइं णिज्जूहणं करे ।
बिइए वास चउक्कम्मि,
विचित्तं तु तवं चरे।।२५७।।

धनाक्षरी
पश्चात् अनेक वर्ष श्रामण्य पालनकारि
एतदनुक्रम से संलेखना को धारै है ।
उत्कृष्ट बारह वर्ष मध्यम बरस एक
जघन्य से षट मास, कल्प से विचारै है ।
प्रथम बरस चारि दुग्धादिक त्याग करे
दूजे वर्ष चारि ज्ञान तप ने सँवारै है ।
बरस दो एकान्तर तप में आयाम करे
जिनदिष्ट विधि सूं संलेखनादि सारै है ।।२५४-२५६।।

एगंतरमायामं,
कट्टु संवच्छरे दुवे ।
तओ संवच्छरद्धं तु,
णाइविगिट्ठं तवं चरे।।२५८।।
तओ संवच्छरद्धं तु,
विगिट्ठं तु तवं चरे ।
परिमियं चेव आयामं,
तम्मि संवच्छरे करे।।२५९।।

कोडीसहिय मायामं,
कट्टु संवच्छरे मुणी ।
मासद्ध मासिएणं तु,
आहारेणं तवं चरे।।२६०।।
कंदप्प माभिओगं य,
किव्विसियं मोह मासुरतं च ।
एयाओ दुग्गईओ,
मरणम्मि विराहिया होंति।।२६१।।

एकादश बरस में आदि छह मास तक
तप वेला चौला, को, निषेध से विचारै है ।
बाद छह मास तक, विकृष्ट तपों में तपे
पूरे वर्ष परिमित आयम्बिल पारै है ।
द्वादश बरस में, सतत आचाम्ल पाके
पक्ष या महीना भर अनशन धारै है ।
कामी, अभियोगी, पापी, मोही, आसुरीय भाव
मृत्यु के समै संयमादि ने विकारै है ।।२६०-२६१।।

मिच्छादंसण रत्ता,
सणियाणा उ हिंसगा ।
इय जे मरंति जीवा,
तेसिं पुण दुल्लहा बोही।।२६२।।
सम्मद्दंसणरत्ता,
अणियाणा सुक्कलेस मोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा,
तेसिं सुलहा भवे बोही।।२६३।।

बसन्ततिलका

नैघन्य के समय भाव रहे कुमिथ्या
वे है, निदान परियुक्त, विहिस्रकर्मा ।
संबोधि दुर्लभ कही, उनके लिये है
तत्भिन्न में सुलभ जैन सदागमों में ।।२६२-२६३।।

मिच्छादंसणरत्ता,
सणियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा,
तेसिं पुण दुल्लहा बोही।।२६४।।

मिथ्यात्व दर्शन सलीन निदानशाली
कृष्णादि लेश्य अवगाढ़ समग्र रूप ।
संबोधि दुर्लभ कही उनके लिये है
देहावसान मँह आप्त निदर्शनों में ।।२६४।।

जिणवयणे अणुरत्ता,
जिणवयणं जे करेंति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा,
ते होंति परित्तसंसारी।।२६५।।

जो जैन सद्वचन में अनुरक्त पूरे
तद्भाव आचरण में लहते सदैव ।
नैर्मल्यपूर्ण अरु रागविहीन भाव
ये ही परत्ति करते निज संसृती को ।।२६५।।

बाल मरणाणि बहुसो,
अकाम मरणाणि चेव य बहूयाणि ।
मरिहंति ते वराया,
जिणवयणं जे ण जाणंति।।२६६।।
बहुआगम विण्णाणा,
समाहि उप्पायगा य गुणगाही ।
एएणं कारणेणं,
अरिहा आलोयणं सोउं।।२६७।।

जो जीव जैन वच से परिहीन होते
पाते अकाम अरु बाल मृतत्व नाना ।
शास्त्रज्ञ शान्त पर मानस बोधकारी
आलोचना श्रवण में, श्रुतविद् समर्थ ।।२६६-२६७।।

कंदप्प कुक्कुयाइं तह,
सील सहाव-हास विगहाइं ।
विम्हावेंतो य परं,
कंदप्पं भावणं कुणइ।।२६८।।

कन्दर्प की परिकथा करता सदैव
हास्यादि हेतु अनभीष्ट करे कुचेष्टा ।
हास्य स्वभाव विकथा परिचारणा से
संसार में भ्रमण का पद है बढाता ।।२६८।।

मंता जोगं काउं,
भूइकम्मं च जे पउंजंति ।
साय-रस-इड्ढिहेउं,
अभिओगं भावणं कुणइ।।२६९।।

जो सौख्य ऋद्धि रस हेतु घृतादि लाभ
मन्त्रादि भूति चय का करता प्रयोग ।
वो अभियोग पथ पै, चलते हुए ही
संसार में भ्रमण का, पद है बढाता ।।२६९।।

णाणस्स केवलीणं,
धम्मायरियस्स संघसाहूणं ।
माई अवण्णवाई,
किव्विसियं भावणं कुणइ।।२७०।।

जो ज्ञान केवलि सुधर्म सुनायकादि
संसाधनापरक साधु, अवर्णवादी ।
मायादि आचरण से, वह किल्विषी से
संगर्त में पतन का, निज भाव लाला ।।२७०।।

अणुबद्ध रोसपसरो,
तह य णिमित्तम्मि होइ पडिसेवी ।
एएहिं कारणेहिं,
आसुरियं भावणं कुणइ।।२७१।।

जो क्रोध वर्धित करे रु निमित्त विद्या-
का संप्रयोग करता वह आसुरीय ।
भावाक्त हो चरण को करता अजस्र
संसार मध्य पचता निज की कृती से ।।२७१।।

सत्थगहणं विसभक्खणं च,
जलणं च जलपवेसो य ।
अणायार भंडसेवी,
जम्मण मरणाणि बंधंति।।२७२।।

जो शस्त्र और विष भक्षण, अग्नि, वारि-
से आत्मपात करता, निज साधनों से ।
वो साधु आचरण से, बहुदूर होके
संसार-बन्धन विशेष सदा बढ़ाता ।।२७२।।

इय पाउकरे बुद्धे,
णायए परिणिव्वुए ।
छत्तीसं उत्तरज्झाए,
भवसिद्धीय संमए।।२७३।।

भव्यातिभव्य जन बोधक आप्त रूप
छत्तीस अध्ययन में, कह जैन वाणी ।
संबुद्ध सिद्ध जितराग महस्वभाव
निर्वाण लब्ध भगवान् जिन वर्धमान ।।२७३।।

इति काव्यमय उत्तराध्ययन सूत्रम्

।।प्रशस्तिपाठः।।

नानेश आर्य पद पंकज में विनम्र
श्री राम, इन्द्र विभु का सहकार पाके ।
श्री उत्तराध्ययन सूत्र सुपद्य रूप
स्वीकार हो, अनुदिता कृति मामकीना ।।१।।

२ ४ ० २

राशी समेत गति शून्य व बन्ध वर्ष-
में की गई कृति कवित्व विशेष पूर्ण ।
हो नित्य ही गुरु कृपाकर दिव्य दृष्टि
वीर प्रकाशक बने रचना अमोघ ।।२।।